सस्ती प्रकीर्ण-माला   [पुस्तक ९

यूरोप का इतिहास

(प्रथम भाग)

लेखक
'इतिहास का एक विद्यार्थी'

प्रकाशक—
सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल,
अजमेर

१९२६   [मूल्य ॥=)

प्रकाशक—
जीतमल लूणिया, मन्त्री
सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल, अजमेर

हिन्दी प्रेमियों से अनुरोध

इस सस्ता-मंडल की पुस्तकों का विषय, उनकी पृष्ठ-संख्या और मूल्य पर जरा विचार कीजिये। कितनी उत्तम और साथ ही कितनी सस्ती हैं। मण्डल से निकली हुई पुस्तकों के नाम तथा स्थायी ग्राहक होने के नियम, पुस्तक के अंत में दिये हुए हैं, उन्हें एक बार आप अवश्य पढ़ लीजिये।

मुद्रक—
गणपति कृष्ण
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस

भूमिका

तथा

ग्रन्थ-परिचय

किसी भी भाषा के साहित्य में इतिहास का स्थान कितना उच्च है, यह किसी से छिपा नहीं है। इतिहास साहित्य का एक प्रधान अङ्ग है और बिना उस अंग की पुष्टि के, साहित्य कभी पुष्ट तथा पूर्ण नहीं कहा जा सकता। इतिहास का सम्बन्ध तो प्रत्यक्ष मनुष्य जीवन से है। किसी भी देश अथवा जाति के राष्ट्रीय जीवन के ढालने में इतिहास का बड़ा हाथ है। आज जो जातियाँ उन्नति के शिखर पर चढ़ी हुई हैं, उनकी उन्नति का एक प्रधान कारण उनका प्राचीन इतिहास ही है, और जिन जातियों ने अपने प्राचीन इतिहास की अवहेलना की, वे अवनति को प्राप्त होती गईं, और हम देखते हैं कि धीरे २ उनका अस्तित्व ही मिट गया है। अमेरिका में जिस समय यूरोपवासियों ने पदार्पण किया था, उस समय वहाँ पर एक सभ्य, शिक्षित और कलानिपुण जाति का राज्य था। इस जाति के लोग नगरों में रहते थे, जिनमें अच्छे २ मकान तथा सड़कें थीं, राजा के लिये सुन्दर महल बने हुए थे तथा उद्योग [illegible] था। वे अपना राजवंश बहुत पुराना बताते थे परन्तु आज उनका इतिहास कोई नहीं जानता, और यही कारण है कि आज अमेरिका के आदिम निवा-

सियों की संख्या नाममात्र रह गई है और जो बची है, उसके भी धीरे २ मिट जाने की संभावना है। इसीलिये कि उसे अपने प्राचीन इतिहास तथा गौरव का परिचय नहीं। बेबीलोनिया, फारस और मिश्र आदि देशों की भी अपने प्राचीन इतिहास की रक्षा न कर सकने के कारण बहुत अवनति हुई है। अतएव यह सिद्ध है कि किसी भी जाति को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिये, और भविष्य में उन्नति करने के लिये अपने इतिहास की रक्षा की बड़ी आवश्यकता है। हम भारतीयों की मातृ-भाषा हिन्दी के साहित्य तथा इतिहास की दशा भी पूर्ण सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती। यद्यपि गत कई वर्षों में हजारों पुस्तकें छप चुकी हैं, परन्तु उनमें ऐतिहासिक पुस्तकों की संख्या बहुत ही थोड़ी है। हिन्दी-साहित्य वैसे तो कई अंगों में निर्बल है परन्तु इतिहास के स्थान में अभी उसमें भारी गड्ढा पड़ा हुआ है जो उपेक्षणीय नहीं है। अभी तक हमें विदेशियों के संशय दूर करने योग्य भारत का प्राचीन प्रामाणिक इतिहास नहीं मिला है। भारत के अनेक प्रतिभाशाली सम्राटों को हम अब तक भूले हुए हैं। भारत-भक्त ऐंड्रूज ने हाल में एक ऐसे ही सम्राट् (जयवर्मन् अष्टम) का हाल बताया है जिसका राज्य ब्रह्मदेश तथा कम्बोडिया तक फैला हुआ था।

ज्ञानमण्डल, इंडियन प्रेस आदि ग्रन्थमालाओं ने प्राचीन भारत के सम्बन्ध में कुछ पुस्तकें निकाली हैं, और भारतीय इतिहास के भी कई संस्करण हाल में निकले हैं जिन पर कुछ सन्तोष किया जा सकता है, परन्तु कई पुस्तकमालाओं ने इतिहास को बिलकुल उपेक्षणीय समझ रखा है। केवल एक या दो पुस्तकमालाएँ इतिहास के रिक्त स्थान को नहीं भर सकतीं। इसमें सब

पुस्तकमालाओं तथा विद्वानों को योग देना आवश्यक है। अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, मराठी, बंगला आदि अनेक भाषाओं से इसके लिये सहायता ली जा सकती है।

अपने जातीय इतिहास की रक्षा करने के अतिरिक्त समय की प्रगति के अनुसार चलने के लिये हमें विदेशी इतिहासों की भी बड़ी आवश्यकता है। इसके बिना हमारा ऐतिहासिक ज्ञान कभी पूरा नहीं हो सकता। दूसरे देशों के इतिहासों से शिक्षा तथा सहायता लिये बिना कोई जाति उन्नति नहीं कर सकती। हिन्दी-साहित्य में अभी तक विदेशी इतिहासों की संख्या १५-२० से अधिक न होगी तथा उनमें भी कई पुस्तकें ऐसी निकलेंगी जिनसे भारत के राष्ट्रीय-जीवन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। हिन्दी-साहित्य की ऐसी ही दशा देखकर मिश्र बन्धुओं ने अपने भारतवर्ष के इतिहास के आरम्भ में लिखा है—"हिन्दी में पृथ्वी के अनेक देशों के इतिहास के अभाव के कारण हमारे यहाँ के लोग जानते ही नहीं कि किन २ कारणों से देशों एवं राष्ट्रों का अभ्युदय एवं अधःपतन होता है, किस प्रकार के आचार-विचार से देश और जाति को लाभ पहुँच सकता है और किस से हानि ही हानि संभव है। किन २ कारणों से किन २ देशों का जन्म हुआ और उन कारणों को यथातथ्य अथवा समुचित परिवर्तनों के साथ हम अपने देश एवं जाति में कैसे उपस्थित कर सकते हैं, किस चाल-ढाल पर चलने से किन २ देशों एवं जातियों को क्या हानि पहुँची, अथवा कैसे उनका ह्रास व सर्वनाश हो गया और हम में वे अथवा वैसी ही चाल-ढाल हैं या नहीं, और यदि हैं तो हम उनको कैसे हटा सकते हैं, आदि। ऐसे ही

अनेक महत्व के प्रश्न हैं, जिन पर ध्यान देने से हमारा हित होगा, एवं जिन्हें छोड़ देने से हमारी न जाने क्या २ दुर्गति या सर्वनाश तक हो सकता है। ऐसे प्रश्नों पर ध्यान देने की पात्रता हमें तभी आ सकती है, जब हम संसार के सभी ऐसे देशों के इतिहास जान लें कि जो आज दिन उच्च दशा में हैं, अथवा पूर्व-काल में रह चुके हैं, एवं जो अपनी असावधानी से मिट्टी में मिल गये हैं। ऐसी जातियों का वृत्तान्त जानना, उनकी त्रुटियों को समझना, उनका मनन करना और अपनी जाति से उन्हें हटाने का प्रयत्न करना प्रत्येक समझदार मनुष्य का आवश्यक कर्त्तव्य है।"

इस दृष्टि से यदि हम विचार करें तो हमें यूरोप का इतिहास अति महत्त्व-पूर्ण दिखलाई पड़ता है। संसार का ऐसा कोई भाग नहीं जहाँ किसी न किसी यूरोपीय देश का प्रभुत्व न हो। अतः यूरोप का इतिहास समस्त संसार का इतिहास है।

समाचार-पत्रों में हम प्रतिदिन यूरोपीय देशों के समाचार तथा झगड़े पढ़ते हैं, जो उन देशों का पूर्ण इतिहास जाने बिना भली भाँति समझ में नहीं आ सकते। यूरोप के इतिहास से उन समाचारों तथा अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों के समझने में भारी सहायता मिलती है। अतः प्रत्येक समाचार-पत्र पढ़ने वाले तथा हिन्दी-पत्रों के ऐसे सम्पादकों को, जो अँग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ हैं, हिन्दी में यूरोप के इतिहास की बड़ी आवश्यकता है।

यूरोप का इतिहास, राजनीति, कूटनीति की चालों तथा राष्ट्रीयता और स्वतन्त्रता के विचारों से भरा पड़ा है, जिन्हें जानना इस समय प्रत्येक भारतवासी का कर्त्तव्य है। भारत एक राष्ट्र बनने की ओर तीव्र-गति से अग्रसर हो रहा है। अतएव

भारतवासियों को यह जानना चाहिये कि राष्ट्र क्या है और वह कैसे बनता है। कुछ लोग राष्ट्र के लिये एक जाति का होना आवश्यक समझते हैं परन्तु एक जाति के ही होने से राष्ट्र नहीं बन सकता, क्योंकि एक ही जाति किसी भी देश में नहीं हो सकती। अनेक जातियों का रहना प्रत्येक देश में अनिवार्य है और उनके रहते हुए भी राष्ट्र बन सकता है। एक भाषा अथवा एक धर्म का होना भी राष्ट्र के लिये अनिवार्य नहीं है, इनमें से किसी एक या दोनों की अनुपस्थिति में भी राष्ट्र बन सकता है। राष्ट्र वही है जहाँ राष्ट्रीय जीवन हो अर्थात् लोगों में राष्ट्रीयता के भाव हों। भारत में राष्ट्रीय भाव इस समय जागृत हो गये हैं, अतः भारत राष्ट्र है।

हाँ, इतना अवश्य है कि कई शताब्दियों की निरन्तर गुलामी के कारण आज अनेक भारतवासियों की आत्माएँ इतनी पतित हो गई हैं कि उन्हें स्वतंत्र तथा राष्ट्रीय-जीवन की इच्छा ही नहीं रही है। वे दासता ही में प्रसन्न हैं और इसी में पड़ी रहना चाहती हैं। अब भी अनेक मनुष्य वर्तमान राष्ट्रीय आन्दोलन को गालियाँ देते हैं और वर्तमान निरंकुश राज्य की प्रशंसा करते हैं। वर्षों की गुलामी का ऐसा प्रभाव होना स्वाभाविक ही है! फ्रान्स के सोलहवें लुई ने अनेक राजनैतिक क़ैदियों को ज़रा २ से अपराध के लिये एक बिलकुल अँधेरे कारागार में डाल रखा था। उन्हें उसी अन्धकार में बीस-बीस पच्चीस-पच्चीस वर्ष बीत गये थे। अतः वे उसी जीवन के आदी हो गये थे। क्रान्ति के समय जब उन क़ैदियों के छुटकारे के लिये उक्त कारागृह तोड़ा गया और वे बाहर प्रकाश में लाये गये तो अनेक क़ैदी चकाचौंध से

व्याकुल होकर कहने लगे—"भाई, हमें कहाँ लिये जाते हो, हमें तो उसी अँधेरी कोठरी में बन्द रहने दो ?" वैसी ही दशा अनेक भारतवासियों की भी है।

भारतीय किसान तो राष्ट्रीयता का नाम भी नहीं जानते, न ये जानते हैं कि विदेशी शासन से उन्हें क्या हानि हुई है। प्रवासी देशवासियों के अपमान से वे अवगत नहीं, जो कुछ कष्ट उन्हें होता है, उसे भाग्य तथा काल को दोष देकर सह लेते हैं, परन्तु इन दुःखों के मूल कारण के प्रतिकार करने का उन्हें स्वप्न में भी ध्यान नहीं आता। परन्तु हम शिक्षित भारतवासियों को अशिक्षित तथा निम्न श्रेणी के लोगों को जगा कर उन्हें उनकी वास्तविक स्थिति का परिचय कराना है। उनमें राष्ट्रीयता, स्वतन्त्रता तथा समानता के विचारों को भरना है तथा अनेक शिक्षित आत्माओं को मनुष्य के अधिकार तथा प्रजासत्ताक राज्य के लाभों का पाठ पढ़ाना है। इन सब बातों के लिये यूरोप के इतिहास के पठन-पाठन से बढ़ कर अन्य कोई साधन नहीं, इसके बिना हम अपने कार्य में सफल नहीं हो सकते।

यूरोपीय इतिहास से हमें यह भी शिक्षा मिलती है कि राष्ट्रीय एकता तथा स्वतन्त्रता एक दिन में नहीं प्राप्त हो सकती। इसके लिये अविरल दृढ़ता, त्याग तथा बलिदान की आवश्यकता होती है। प्रसिद्ध देश-भक्त भाई परमानन्द कहते हैं—"समुद्र-मंथन की कथा के समान यूरोपीय जातियों ने भी कई सदियों के संघर्षण के पश्चात् इन अमूल्य रत्नों को प्राप्त किया है।" सोलहवीं शताब्दी में नीदरलैण्ड ने स्पेन के शासन को दूर करने के लिये युद्ध किया और ५०-६० वर्ष के निरन्तर त्याग तथा परिश्रम के पश्चात्

उनकी कामना पूरी हुई। इसी भाँति इटली, जर्मनी आदि देशों को भी स्वतन्त्र होने में अनेक वर्ष लगे।

इस समय हमें ऐसी ही जातियों के इतिहास पढ़ने की आवश्यकता है जिन्होंने स्वाधीनता के लिये सर्वस्व निछावर कर दिया हो। यूरोपीय इतिहास ऐसा ही है और फिर यूरोप में इतिहास एक क्रम में लाकर एक बाक़ायदा इतिहास बना दिया है। यूरोप का इतिहास स्वतन्त्र देशों का तथा स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिये प्राण-समर्पण करनेवाली जातियों का इतिहास है। नीदरलैण्ड, फ्रान्स, इटली आदि इसके उदाहरण हैं जिनसे भारतीय देश-भक्त बहुत कुछ सीख सकते हैं।

यूरोपीय इतिहास की आवश्यकता बताते हुए भाई परमानन्द लिखते हैं—"यह स्वीकार करते हुए भी कि प्राचीन भारत में कहीं २ समता तथा प्रजासत्ता के भाव पाये जाते हैं। हमें यह मानना पड़ता है कि जिस विशेष महत्त्व-पूर्ण रूप से यूरोपीय जातियों ने इनका आविष्कार किया है, वह उससे पूर्व कहीं नहीं पाया जाता था। मनुष्य-समाज की भावी उन्नति उन्हीं पर आश्रित है। जो जाति इन भावों को न समझ कर अपनी पाचन-शक्ति द्वारा इन्हें अपना न बनायेगी वह संसार की जातियों की दौड़ में पीछे रह जायगी और उसका अस्तित्व ही नष्ट हो जायगा।"

"यूरोप के इतिहास के ज्ञान के बिना न हम जातीयता को समझ सकते हैं और न उस समता की तरंग को जान सकते हैं, जो यूरोप से समस्त संसार में फैल रही है। यूरोप का इतिहास जीती-जागती जातियों का इतिहास है। हमें अब भी उससे एक वेगवती धारा निकलती दिखाई देती है।"

राजाओं की स्वेच्छाचारिता से तंग आकर प्रजा ने किस प्रकार निरन्तर परिश्रम करके मानवोचित स्वत्वों को प्राप्त किया, किस प्रकार कहीं कहीं सम्पूर्ण वास्तविक शक्ति अपने हाथ में कर ली, किस प्रकार बलवान कैसर तथा जार की शक्तियों को एक पल में ध्वंस किया गया, इन बातों को बताने वाला केवल यूरोप का इतिहास ही है।

यूरोप का इतिहास मुख्यतः चार विभागों में बाँटा जाता है। वैसे तो इतिहास आदि से अन्त तक के लिपिबद्ध वर्णन को कहते हैं, तथा उसका क्रम धारा-प्रवाह के समान है, जिसके खण्ड नहीं किये जा सकते और यदि कर भी दें तो जब तक हमें उसका आरम्भिक ज्ञान न हो तब तक हम पीछे का भाग भली भाँति नहीं समझ सकते। परन्तु यदि किसी देश का आरम्भ से लेकर अन्त तक वर्णन एक ही पुस्तक अथवा एक ही भाग में कर दिया जाय तो पढ़ने वाले का चित्त ऊब जाता है। इस कारण विद्वानों ने पुस्तकों को भागों तथा अध्यायों में बाँटने की रीति निकाली। किसी एक विशेष-घटना को लेकर इतिहास—ग्रन्थों में एक खण्ड का आरम्भ करते हैं और किसी दूसरी महत्व-पूर्ण घटना के पहले उसे समाप्त कर दिया जाता है फिर वहाँ से दूसरा युग आरम्भ होता है। ऐसी युगान्तर उपस्थित करने वाली घटनायें प्रत्येक देश में हुआ करती हैं।

इसी क्रम से यूरोप के इतिहास के चार भाग किये जाते हैं। यूरोप का प्राचीनतम इतिहास ईसा से डेढ़ हजार वर्ष पहले आरम्भ होता है। यह वहाँ का आरम्भिक काल है जो ईसा की चौथी शताब्दी तक चलता है जब कि रोम के सम्राट् कॉन्स्टे-

न्टाइन ने ईसाई धर्म को स्वीकार कर यूरोप में उसका प्रचार किया। अर्थात् ईसाई धर्म के पुनरुद्धार के समय से मध्ययुग का आरम्भ होता है जिसकी समाप्ति उसके ह्रास के समय होती है।

यूरोप का प्राचीनतम सभ्य देश तथा यूरोप को सभ्यता सिखाने वाला देश यूनान है जो उसके दक्षिण पूर्व में समुद्रतट पर बसा हुआ है। यहाँ पर अनेक छोटी २ जातियाँ निवास करती थीं और प्रायः एक नगर में एक जाति रहती थी जिसका प्रबन्ध वही जाति स्वयं करती थी। इसी कारण राजनीति का नाम 'पोलिटिक्स' (Politics) अर्थात् 'नगर-शास्त्र' पड़ा। भारत और यूनान का बहुत काल तक सम्बन्ध रहा है।

यूनान के वृद्धिकाल में ही दक्षिण-इटली प्रायद्वीप में रोम्यूलस ने रोम नगर बसाया। धीरे २ रोम का अधिकार इतना बढ़ा कि उसने समस्त यूरोप पर आधिपत्य किया।

इसी समय ईसाई मत का प्रचार होने लगा। पहले तो यूरोप का लोकमत इस नये धर्म के इतना विरुद्ध था कि नये ईसाइयों को प्राण बचाना कठिन था। सन् ६६ में रोम में ही सन्त पाल को प्राणदण्ड दिया गया। परन्तु होते २ यह मत ऐसा फैला कि उसी रोम में पोप राज्य हो गया। पाँचवी शताब्दी के आरम्भ में यूरोपीय धर्म तथा सभ्यता के भी दो भाग हो गये, जिनका भेद बढ़ता गया।

चौथी शताब्दी में सम्राट् कॉन्स्टेन्टाइन ने ईसाई धर्म स्वीकृत किया और इसी समय से बड़ी शीघ्रता से उसकी उन्नति होने लगी। सातवीं शताब्दी के लगते २ रोम पोपों का नगर बन गया और ईसाइयों के महामहन्त की पदवी से बढ़ते २ पोपों ने

राजनैतिक अधिकार भी अपने हाथ में कर लिये। छठवीं शताब्दी में ही पोप ग्रेगरी महान् ने धर्म के बहाने समस्त ईसाई राजाओं पर अपना अधिकार जमाया और वही वास्तविक सम्राट् बन गया।

इसी समय अरब में मुहम्मद साहब ने अपना धर्म चलाया और खड्ग के बल से उसका प्रचार आरम्भ हुआ। अरब के मुसलमान नये धर्म के जोश में आकर सारे एशिया माइनर में फैल गये। उन्होंने मिश्र, उत्तर अफरीका तथा स्पेन में भी अपना अधिकार कर लिया। इस में ईसाइयों की उन्नति रुक गई। दोनों में कुछ काल तक धर्मयुद्ध हुए। अन्त में तुर्कों ने १४५३ ई० में कुस्तुन्तुनिया पर विजय पाकर पूर्वी रोमन साम्राज्य और मध्य काल का अंत किया। अब से सात आठ सौ वर्ष पहले तुर्क लोग यूरोप में बड़े प्रबल हो गये थे। उनका साम्राज्य बहुत विस्तृत था और उनके डर से समस्त यूरोप काँपता था। अन्त में उन्होंने कुस्तुन्तुनिया को भी छीन लिया।

इसी घटना को लेकर इतिहासकार 'नवीन-युग' का आरम्भ करते हैं क्योंकि कुस्तुन्तुनिया के पतन से वहाँ के अनेक विद्वानों ने इटली में जाकर शरण ली, जिसका परिणाम साहित्यिक जागृति तथा धार्मिक-विप्लव आदि घटनायें हुईं। इससे यूरोप के पुराने कैथोलिक ईसाई मत से लोगों का विश्वास हट गया और नया प्रोटेस्टेण्ट मत बड़ी शीघ्रता से फैल निकला। अतः मध्य काल का अन्त—जिसका आरंभ कैथोलिक ईसाई मत के पुनरुद्धार के समय हुआ था—ऐसे समय करना जब कैथोलिक मत का ह्रास हुआ, उचित ही है। इसके अतिरिक्त और भी कई ऐसी महत्व-

पूर्ण घटनायें इस समय हुईं जिससे यूरोप में युगान्तर उपस्थित हो गया।

साहित्यिक-जागृति (रिनासेंस) तथा धर्म-संस्करण (रिफार्मेशन), फ्रान्स की राज्यक्रान्ति को छोड़ कर यूरोप के इतिहास में सब से बड़ी घटनायें हैं--इन्हीं के कारण यूरोप में स्वतन्त्रता की वह तरंग उठी जो हालैण्ड से चल कर एक के बाद दूसरे देश में फैलने लगी। स्टुअर्ट राजाओं के समय में इँगलैण्ड में क्रान्ति हुई। यही स्वतन्त्रता की तरंग अमेरिका के स्वातंत्र-युद्ध का कारण हुई और वहाँ से लौट कर यही फ्राँस में राज्य-क्रान्ति के रूप में प्रकट हुई।

"प्रजा की राजनैतिक स्वतंत्रता का आन्दोलन नीदरलैण्ड से चल कर अन्य देशों में फैलना आरम्भ हुआ और जातीयता के भावों के साथ समता और प्रजासत्ता के भाव मिश्रित हो जाने से यूरोप में एक नई परिष्कृत जातीयता उत्पन्न हुई। इस उच्च कोटि की जातीयता ने यूरोप की जातियों को ऊँचा कर दिया है। इनके बिना संसार का इतिहास ऐतिहासिक महत्त्व और उपयोगिता से हीन है।"

यूरोप में यह लहर रिफार्मेशन के कारण उठी। इसी समय से यूरोप में राष्ट्रीयता के विचार जागृत हुए। अब तक समस्त यूरोप धार्मिक तथा राजनैतिक ऐक्य में बँधा था। धार्मिक प्रधान 'पोप' था और राजनैतिक प्रधान 'पवित्र रोमन सम्राट्' किन्तु रिफार्मेशन ने यूरोप की इस एकता को भंग कर दिया।

रिफार्मेशन (धर्म-संस्करण) की तुलना हम भारत के आर्य-समाज से कर सकते हैं। पौराणिक काल से भारतवासी अनेक

देवी-देवताओं की पूजा करने लगे। इसी भाँति यूनानी और रोमन लोग भी मूर्तिपूजक थे और आरम्भिक ईसाई धर्म (कैथोलिक धर्म) में भी मूर्तिपूजा प्रधान रही। परन्तु जिस प्रकार स्वामी दयानन्द ने मूर्तिपूजा का खण्डन करके निराकार ईश्वर की उपासना उचित बतलाई उसी प्रकार अब से चार सौ वर्ष पहले यूरोप में कई धार्मिक-सुधारकों ने मूर्तिपूजा का खण्डन करके नया प्रोटेस्टैन्ट मत चलाया। दोनों धर्मों में भेद यह है कि स्वामी दयानन्द द्वारा प्रचालित मत भारत में शान्तिपूर्वक उन्नति करता रहा और कर रहा है, परन्तु यूरोप में नये धर्म ने कुछ ही काल बाद भयंकर राजनैतिक रूप धारण कर लिया और उसके कारण अनेक युद्ध, अनेक हत्याएँ तथा क़त्ल हुए और धार्मिक युद्धों के कारण वहाँ लगभग डेढ़ सौ वर्ष तक अशान्ति रही।

इसके साथ ही यूरोपीय राष्ट्रों का उत्थान तथा पतन चलता रहा। १६ वीं शताब्दी में स्पेन और पुर्तगाल का यूरोप तथा अमेरिका में प्रभुत्व रहा। परन्तु शीघ्र ही हालैण्ड, फ्रान्स आदि प्रतिद्वन्दी खड़े हो गये, जिनका सत्रहवीं शताब्दी में प्राधान्य रहा।

अठारहवीं शताब्दी में प्रशिया, रूस और आस्ट्रिया ने बहुत उन्नति की और अन्त में १९ वीं शताब्दी में सबको पछाड़कर इँगलैण्ड समस्त यूरोप में प्रधान हुआ।

इसके साथ ही ये यूरोपीय देश शेष संसार पर भी अपना अधिकार जमाते रहे और आज संसार का एक बहुत बड़ा भाग इन्हीं गोरे प्रभुओं के अधीन है। 'यदि हम ५०० वर्ष से कम की घटनाओं पर विचार करें और १४५० ई० के संसार की ओर देखें तो हमें ज्ञात होगा कि गोरे लोगों के पास थोड़ी जमीन-जिसे

पश्चिमी और मध्य-यूरोप कहते हैं, थी। महाद्वीप के किनारे के बृटिश द्वीप भी इन्हीं के थे। यदि वे कन्धे की ओर-अर्थात् पूर्व को-मुँह फेरते तो उन्हें उस ओर रूस के मंगोल और मध्य एशिया के स्टेपीस दिखाई पड़ते थे, यदि वे भारत के साथ व्यापार करना चाहते थे, जैसा कि वे चाहते थे-तो दक्षिण-पूर्व और दक्षिण की ओर दृष्टि डालते। किन्तु वहाँ इस्लामी दुनिया की तलवार मार्ग रोके हुए खड़ी थी। पश्चिम की ओर अटलांटिक महासागर था। उसके अथाह् जल को उन्होंने कभी पार नहीं किया था और वहीं उनके लिये दुनिया का अन्त था। इस प्रकार गोरे लोग उस तंग महाद्वीप में बन्द थे।

एकाएक दो ऐसे नाटकीय कार्य हुए जिनके कारण न केवल संसार का इतिहास ही पलट गया बल्कि उन्होंने मनुष्य-जाति में गोरों का स्थान ही बदल दिया।

सन् १४९२ में कोलम्बस अटलांटिक महासागर होकर भारत के लिये एक नया मार्ग तलाश करने को निकला और अटकते २ नूतन महाद्वीप में जा पहुँचा। सन् १४९८ में वास्को डी गामा भी भारत के लिये एक नया मार्ग ढूँढ़ते हुए अफ्रीका के ठेठ दक्षिण की ओर होता हुआ हिन्द महासागर होकर कालीकट आया। गोरे लोगों ने अटलान्टिक महासागर-रूपी बाँध को तोड़ डाला और 'केप आफ गुड होप' द्वारा इस्लामी शक्ति पर विजय प्राप्त की। इन्हीं दोनों महान् सफलताओं ने उनके भाग्य को पलट दिया। उन्होंने फौरन नई दुनिया का पता लगाया और समुद्रों को पृथ्वी के पार करने का मार्ग बनाया। उसी समय से चार शताब्दी से अधिक से-ब्रिटेन और पश्चिमीय मध्य-यूरोप के गोरे लोगों के

विस्तार की अविच्छिन्न लहर बह रही है।' "अभ्युदय" द्वारा अनूदित लाला लाजपतराय जी के लेख 'सम्प्रदायों का संघर्षण' से)

सन् १७८९ में फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति आरम्भ हुई जो संसार की अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण घटनाओं में से एक है। इसने यूरोप में एकदम युगान्तर उपस्थित कर दिया। इसने साम्राज्यवाद की जड़ उखाड़कर यूरोप में प्रजातंत्र का आदर्श उपस्थित किया। यहीं से विश्वविख्यात नेपोलियन बोनापार्ट की सत्ता का आरम्भ हुआ। १८१५ में उसके पतन के बाद यूरोप को फिर शान्ति की हवा मिली और यूरोप का नक्शा फिर पूर्ववत् किया गया। यहाँ से चौथा काल जो वर्तमान काल कहलाता है, आरम्भ होता है।

नेपोलियन के पतन के बाद यूरोप में फिर प्रतिक्रिया आरम्भ हुई। राजाओं ने अपने स्वार्थ के लिये प्रजा के अधिकारों और राष्ट्रीय भावों की अवहेलना की, परन्तु राष्ट्रीय भाव दब नहीं सकते थे। बेल्जियम, पोलैन्ड, फ्रान्स आदि अनेक देशों में स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिये क्रान्तियाँ हुईं। इटली और जर्मनी ने भी लड़कर स्वाधीनता तथा एकता स्थापित की और १८७० में फ्रान्स को हराकर जर्मनी यूरोप में प्रधान हो गया, जिसका सारा श्रेय उसके प्रसिद्ध महामन्त्री बिस्मार्क को है।

'१८७०-७१ वाले युद्ध से सब जातियों के हृदय में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली नीति का ऐसा डर समाया कि सब अपनी अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने लगे, लड़ाऊ जहाज बनने लगे, व्यय दिन २ बढ़ने लगा और प्रजा पर कर लगाये जाने लगे। इस सतत वर्द्धमान प्रवृत्ति का कोई अन्त न देखकर रूस के नवयुवक जार निकोलस द्वितीय ने अन्तर्राष्ट्रीय पंचायत द्वारा इस प्रश्न के

निपटारे का प्रयत्न किया। १८९० ई० तथा १९०७ ई० में हेग में अन्तर्राष्ट्रीय पंचायतें हुईं किन्तु सैन्य-बल को घटाने या वृद्धि को रोकने में यह महासभा भी कृतकार्य न हुई। कुछ काल बाद आस्ट्रिया और जर्मनी की चालों से सब शक्तियों के कान खड़े हो गये और सैन्य-बल रोकने की प्रवृत्ति मिट गई। जर्मनी जो लड़ाऊ जहाज बनाने लगा था उसका पता लगने पर हेग की शान्ति सभा के विरुद्ध ब्रिटेन भी अपनी जल-शक्ति और महान साम्राज्य की रक्षा के लिये स्वयं लड़ाऊ जहाज बनाने और सेना बढ़ाने में लग गया और इस तरह हेग की पंचायत का होना निष्फल हो गया।' (भारी-भ्रम)

इस भाँति जब सब शक्तियाँ युद्ध के लिये तैयार थीं तो जरा सा बहाना युद्ध के लिये काफी था। १९१४ में सर्बिया की राजधानी में आस्ट्रिया के राजकुमार की हत्या हुई और महायुद्ध का आरम्भ हो गया, जो १९१८ तक चला तथा जिसका प्रभाव समस्त संसार पर पड़ा। युद्ध के बाद की घटनायें अभी पाठकों को भली भाँति याद ही होंगी। बस यही संक्षेप में यूरोप का इतिहास है।

इस पुस्तक की भाषा यथासाध्य सरल रखने का प्रयत्न किया गया है। यह पुस्तक प्रारम्भिक ही है, आलोचनात्मक नहीं, क्योंकि आलोचना किसी वस्तु के साधारण ज्ञान के बाद ही सम्भव है। साधारण ऐतिहासिक घटनायें पूर्ण रूप से जाने बिना आलोचनात्मक इतिहास भली भाँति समझ में नहीं आ सकता। परन्तु केवल घटनाओं का वर्णन लिखने में ग्रंथ में शुष्कता तथा नीरसता आने का भय था। अतः अनेक स्थलों पर वक्ताओं के

वाक्य, पत्र, व्याख्यान आदि उद्धृत कर दिये गये हैं जिससे वर्णन मनोरंजक प्रतीत हो।

अन्त में यह कहना भी आवश्यक है कि कोई भी इतिहास-ग्रंथ पूर्ण-रूप से मौलिक नहीं हो सकता। प्रत्येक इतिहास-लेखक को साधारण घटनाओं का आधार लेना पड़ता है, अनेक पुस्तकों, पत्रों आदि की उसे आवश्यकता पड़ती है तथा ऐतिहासिक घटनाओं में लेखन-शैली के अतिरिक्त और कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। फिर भारतीयों को बाहरी देशों के और प्रधानतया यूरोप, अमेरिका आदि के इतिहास लिखते समय अंग्रेजी पुस्तकों से सहायता लेने के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं। इस पुस्तक में प्रधानतया ग्राण्ट, एन० मुखर्जी, लिप्सन, हेज़ेन तथा एक फ्रेंच लेखक की पुस्तक से विशेष सहायता ली गई है। इसके अतिरिक्त शेवर एन्ड स्पूल, हडसन, मायर्स तथा मोरिस आदि के ग्रन्थों से भी यत्र-तत्र सहायता ली गई है जिसके लिये उपर्युक्त लेखकों को धन्यवाद।

लेखक

विषयानुक्रमणिका

अध्याय	विषय			पृष्ठ
१—	यूरोप का भौगोलिक वर्णन	...	...	३५
२—	यूरोप के देश	...	...	४२
३—	यूनान का आरम्भिक वर्णन	...	...	६०
४—	यूनानी उपनिवेश तथा रियासतें	...	...	६६
५—	यूनान का फारस से युद्ध	...	...	७०
६—	अथेन्स का उदय	...	...	७६
७—	पेरिक्लीज़ के समय में यूनान की दशा		...	८२
८—	अथेन्स का पतन और पुनरुत्थान		...	८७
९—	यूनानी स्वातंत्र्य का अन्त	...	...	९५
१०—	मेसेडोन का उदय	...	...	९८
११—	सिकन्दर महान और उसकी विजय		...	१०२
१२—	सिकन्दर की विजय का महत्त्व	...	...	११२
१३—	रोम के इतिहास का आरम्भ	...	...	११८
१४—	रोमनों की इटली में विजय	...	...	१२५

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१५	रोमन और यूनानी संसार की टक्कर ...	१३४
१६	रोम और कार्थेज-प्यूनिक युद्ध	१३८
१७	,, ,, ...	१४७
१८	रोम की विस्तार-वृद्धि	१५१
१९	रोम में क्रान्ति-सीनेट का पतन	१६३
२०	रोम के आन्तरिक युद्ध	१७२
२१	सुला की क्रान्तिकारी शासन-व्यवस्था ...	१८१
२२	जूलियस सीजर और उसके कार्य ...	१९०
२३	सीजर की विजय—प्रजा-तंत्र का अंत ...	१९५
२४	आगस्टस	२०१
२५	आरम्भिक सम्राट्-एन्टोनाइनों का समय ...	२१५
२६	साम्राज्य का पतन	२२७
२७	साम्राज्य का पुनरुत्थान	२३४
२८	गोथों की विजय और पश्चिमी रोमन साम्राज्य का अंत	२४३

मध्यकाल

अध्याय	विषय	पृष्ठ
२९	मध्यकालीन यूरोपीय जातियाँ और उनके राज्य	२५३
३०	पूर्वी रोमन साम्राज्य	२६२

अध्याय	विषय	पृष्ठ
३१—ईसाई धर्म की वृद्धि	... ...	२६७
३२—इस्लाम धर्म की उन्नति	... ...	२८०
३३—फ्रैंक और चार्ल्स महान	... ...	२८९
३४—'पवित्र रोमन साम्राज्य' का उत्थान	... ...	२९८
३५—फ्यूडल प्रथा और शूरता	... ...	३०५
३६—पोप और सम्राट्	... ...	३१३
३७—पवित्र धर्मयुद्ध—क्रूसेड	... ...	३३१
३८—केन्द्रित तथा शक्तिमान राज्यों की स्थापना	... ...	३४०
३९—१४ वीं और १५ वीं शताब्दियों में पोप की दशा	... ...	३५३
४०—रिनासैन्स—मध्यकाल का अन्त	... ...	३५७

लागत का ब्योरा

कागज़	३९४) ८०
छपाई	३७८) ,,
बाइंडिंग	१८) ,,
लिखाई, व्यवस्था, विज्ञापन आदि खर्च	३५०) ,,
	११४०) ८०

कुल प्रतियाँ २१००

लागत मूल्य प्रति संख्या ।।-)

पीय राष्ट्रों का इतिहास

प्रथम खण्ड

ारम्भ से मध्यकाल के अन्त तक)

लेखक—

इतिहास का एक विद्यार्थी

पहला अध्याय

यूरोप का भौगोलिक वर्णन

पुरानी दुनिया अथवा पूर्वी गोलार्ध में—एशिया महाद्वीप के पश्चिमोत्तर में —यूरोप का महाद्वीप है। यह भूमि में एशिया से मिला हुआ है किन्तु कई बातों—भाषा, सभ्यता, जाति तथा इतिहास आदि में भिन्न होने के कारण वह एशिया से भिन्न ही समझा जाता है। उसके चारों ओर ऐसे प्राकृतिक साधन एकत्र हो गये हैं, जिनके कारण यूरोप अन्य महाद्वीपों से विस्तार में कम होने पर भी—आस्ट्रेलिया को छोड़कर—सब महाद्वीपों से अधिक शक्तिमान तथा उन्नत हो गया है। यह पूर्वी गोलार्ध के केन्द्र के समीप है जिससे उसे व्यापार में बड़ी सुविधा होती है. यूरोप की जलवायु शीतल होने के कारण वहाँ के लोग प्रत्येक ऋतु में काम कर सकते हैं, फलतः मेहनती और साहसी होते हैं। फिर यूरोप का अधिकांश भाग समुद्र के किनारे है जिससे वे लोग चतुर मल्लाह होते हैं। दिन-रात समुद्र से काम पड़ने के कारण वे साहसी हो गये और निर्भय होकर दूर तक समुद्र में जाकर उन्होंने भारत, अमेरिका आदि का पता लगा लिया। समुद्र से अन्तराष्ट्रीय व्यापार में भी बहुत सुविधा होती है, इन्हीं कारणों से यूरोप संसार में सबसे अधिक उद्योगी, कला-कौशल-निपुण, धनवान, साहसी, और शक्तिमान होकर प्रधान हो गया।

यूरोप की सब से अधिक लम्बाई पूर्व से पश्चिम तक ३४०० मील है, तथा सबसे अधिक चौड़ाई उत्तर से दक्षिण तक २५०० मील है, विस्तार में यह एशिया का चतुर्थांश और भारत से तिगुना है।

समुद्री किनारा—केवल पूर्व की ओर यूरोप एशिया से मिला हुआ है, शेष सब ओर समुद्र से घिरा है। उत्तर का सागर, ध्रुवों के समीप होने से अत्यधिक सर्दी के कारण प्रायः बर्फ से ढका रहता है और इसी कारण श्वेत सागर कहलाता है, पूर्वोत्तर में इंगलैण्ड तथा यूरोप को अलग करनेवाले इंगलिश चैनल तथा उत्तरी सागर हैं। इन्हीं के पास बाल्टिक सागर व्यापार के लिये महत्वपूर्ण है, इंगलैण्ड के चारों ओर जल अधिक गहरा नहीं है, अतः वहाँ मछलियाँ बहुत पकड़ी जाती हैं, हजारों मनुष्य इसी व्यापार में लगे हैं। यूरोप के पश्चिम में अटलान्टिक महासागर है जो यूरोप तथा अमेरिका के बीच का व्यापार-मार्ग है। यूरोप के दक्षिण में भूमध्यसागर है जिसमें होकर भारत आदि देशों का व्यापार होता है। अटलान्टिक महासागर को भूमध्यसागर से मिलाने वाला जिब्राल्टर का मुहाना है, यह स्थान व्यापार के रक्षण के लिये बहुत उपयुक्त है, यहाँ एक दृढ़ किला भी बना हुआ है। बहुत दिनों से यह स्थान अंग्रेजों के अधिकार में है। भूमध्यसागर में यूरोप बहुत प्राचीन काल से व्यापार करता रहा है। मध्यकाल में भी (४०० ईस्वी से १४०० ईस्वी तक) पूर्व तथा पश्चिम के बीच का व्यापार-मार्ग यही था। अतः इसके किनारे के नगर वेनिस, नेपल्स, ट्रीस्ट आदि बहुत प्रसिद्ध रहे हैं। क्योंकि ये ही उस समय व्यापार के मुख्य केन्द्र थे, बीच में कुछ दिनों के लिये इनका स्थान अटलान्टिक

महासागर ने ले लिया था परन्तु स्वेज़ की नहर खुलने के समय से फिर भूमध्यसागर होकर व्यापार तथा आवागमन हो निकला। इस सागर में माल्टा, कोर्सिका, सार्डिनिया आदि कई द्वीप भी हैं जिनमें माल्टा अंग्रेजों के, कोर्सिका फ्रान्स के तथा सार्डिनिया इटली के अधीन है। पूर्व की ओर बॉस्फोरस और डार्डेनेल्स के मुहाने इसे कालेसागर से मिलाते हैं, कालेसागर में भी थोड़ा बहुत व्यापार होता है, तुर्की की राजधानी कुस्तुन्तुनिया (कान्स्टेन्टीनोपल) और रूस का बन्दरगाह ओडेसा इसीके किनारे हैं। इसी के पास कॉस्पियन सागर है, जो चारो ओर स्थल से घिरे होने के कारण व्यापार के लिये उपयोगी नहीं है।

धरातल, पर्वत तथा नदियाँ—एशिया की भाँति यूरोप के धरातल के भी तीन विभाग किये जा सकते हैं। उत्तर में बड़ा मैदान है जो रूस में जाकर बहुत विस्तृत हो गया है। मध्य में पर्वत-शृंखला तथा ऊँची भूमि है तथा दक्षिण में तीन प्रायद्वीप—आइबेरियन (स्पेन-पुर्तगाल), इटली तथा बालकन हैं, जो सब पहाड़ों से घिरे हैं। मध्य में आल्प्स पहाड़ यूरोप में सब से ऊँचा है, अर्थात् यह हिमालय से आधा अथवा तीन मील के लग भग ऊँचा है। हिमालय के समान इसकी भी कई समानान्तर श्रेणियाँ हैं परन्तु यह हिमालय के बराबर लम्बा नहीं है, स्वीज़रलैण्ड नाम का एक छोटा सा स्वतन्त्र राष्ट्र इन्हीं के बीच में बसा हुआ है, प्राकृतिक छटा का यहाँ पर बड़ा मनोहर दृश्य है। प्रति वर्ष यूरोप के सहस्रों मनुष्य यहाँ पर बर्फ से ढकी हुई पर्वतों की चोटियाँ, तथा बीच २ में हरी भरी घाटियाँ, नदियाँ, जल-प्रपात तथा सुन्दर सरोवर देखने आते हैं। विदेशियों के ठहरने के लिये

यहाँ अनेक होटल बने हुए हैं तथा यहाँ के लोग बड़े सीधे तथा अतिथि-सत्कार करने वाले होते हैं। आल्प्स में भी खैबर के समान अनेक घाटियाँ हैं जिन में होकर रेलें तथा सड़कें बनाई गई हैं।

इस के पूर्व में कारपेथियन तथा बालकन पर्वत-श्रेणियाँ हैं तथा पश्चिम में पैरेनीज पर्वत है जो स्पेन और फ्रान्स का प्राकृतिक विभाग कर देता है। यूरोप के पूर्व में यूराल तथा काकेशास पर्वत हैं।

मध्यभाग के पर्वतों से उत्तर तथा दक्षिण दोनों ओर को बड़ी २ नदियाँ बहती हैं। उत्तर को जाने वाली नदियों में प्रधान विस्चुला, एल्ब, राइन, सीन तथा लोइर हैं और दक्षिण में वॉलगा तथा नीपर।

एल्ब तथा राइन जर्मनी के औद्योगिक केन्द्र में होकर गुजरती हैं, तथा इनमें सैकड़ों मील तक जहाज चल सकते हैं। अतः ये व्यापार के लिये बहुत उपयोगी हैं। उनके किनारे पर हेम्बर्ग तथा रोटडम प्रसिद्ध बन्दर हैं।

सीन तथा लोइर, फ्रान्स की प्रधान नदियाँ हैं, लोइर के किनारे का भाग बहुत उपजाऊ है, और फ्रान्स का उद्यान कहाता है। पेरिस नगर सीन नदी के किनारे पर बसा है।

वॉलगा यूरोप की सब से बड़ी नदी है, जो लंबाई में साइबेरिया की ओबी नदी के बराबर है, मैदान में होने के कारण इस की चाल बहुत धीमी है तथा जाड़ों में यह जम जाती है।

दूसरी बड़ी नदी डान्यूब है जो जर्मनी से निकलती है तथा जर्मनी, आस्ट्रिया हंगेरी, सर्विया और रोमानिया के बीच में हो

कर बहती है; इस में भी बड़ा व्यापार होता है। अतः इसके किनारे कई प्रसिद्ध नगर बस गये हैं; जैसे आस्ट्रिया की राजधानी वीएना, हंगेरी की राजधीनी बुदापेस्त तथा सर्विया की राजधानी बेलग्रेड।

इंगलैण्ड की बड़ी नदी टेम्स है जिसके किनारे लन्दन नगर बसा हुआ है।

जलवायु—यूरोप उत्तरी समशीतोष्ण कटि-बन्ध (नार्थ टेम्परेट जोन) में स्थित है. अतः उसकी आबोहवा साधारण शीतल है। दक्षिण के भाग कुछ उष्ण हैं तथा उत्तर के भाग ठण्डे हैं। परन्तु अधिकांश भाग की वायु शीतल तथा सुखद है। अटलान्टिक महासागर से आर्द्र वायु यहाँ बे रोक टोक चली आती है। अतः पश्चिमी यूरोप में कहीं २ बारहो महीने वर्षा होती है, इसी भाँति दक्षिणी भाग में भी वर्षा अच्छी होती है। परन्तु पूर्वी भाग—रूस में पानी कम बरसता है तथा वहाँ की आबोहवा भी पश्चिम से अधिक ठण्डी है। क्योंकि पश्चिमी भाग में अमेरिका से एक गल्फ-स्ट्रीम नामक उष्ण वायु आकर टकराती है जिससे वहाँ पर कुछ गर्मी हो जाती है।

पैदावार—उत्तर के थोड़े से भाग इतने ठण्डे हैं कि वहाँ कुछ उत्पन्न नहीं होता, उस से कुछ दक्षिण में बड़े २ जंगल हैं तथा उनके भी दक्षिण में उपजाऊ भूमि है जहाँ गेहूँ, जौ, चुक-न्दर आदि उत्पन्न होते हैं। रूस में भी गेहूँ होता है।

भूमध्यसागर के किनारे के देशों की मुख्य पैदावार फल, अंगूर, नारंगी, बेर, शहतूत आदि हैं। अंगूरों से शराब तैयार की जाती

है तथा शहतूत से रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। फ्रान्स और स्पेन शराब तथा रेशम के व्यापार के लिये प्रसिद्ध हैं।

निवासी—यूरोप के प्राय: सभी निवासी श्वेत जाति के हैं। उत्तर में अधिक सर्दी पड़ने के कारण वहाँ के लोग दक्षिण के लोगों से अधिक गोरे होते हैं। ये सब लोग मेहनती होते हैं। यहाँ के प्रधान उद्यम दस्तकारी तथा व्यापार हैं। इसके अतिरिक्त कुछ लोग खेती, मछली का शिकार तथा खनिज पदार्थों को बाहर निकालने का काम भी करते हैं।

यहाँ के सबसे आदिम निवासी सम्भवत: जंगली लोग थे, जिनके वंशज इस समय उत्तरी स्पेन में पाये जाते हैं और वास्क कहलाते हैं, फिर केल्ट जाति के आर्य लोग यहाँ आये तथा यहाँ के बहुत से भागों में फैल कर बस गये। इनके वंशज आजकल पश्चिमी भाग आयर्लैण्ड, वेल्स आदि में पाये जाते हैं। फिर रोमनिक लोग आये जिन्होंने केल्टों को और आगे बढ़ाया। ये लोग पुराने यूनान तथा रोम निवासियों के पुरखे थे, ये यूरोप के सबसे सभ्य लोग हो गये। फ्रेंच तथा स्पेनिश लोग इसी जाति के हैं, यद्यपि आजकल कुछ रक्त-सम्मिश्रण हो गया है। ये लोग भी आर्य-जाति के थे; फिर ट्यूटन नाम के आर्यों की तीसरी जाति के लोग आये जो लम्बे तथा सुन्दर थे और इन्होंने केल्टों को और आगे भगाया तथा उत्तर-पश्चिम के भाग में जाकर बस गये। इनके वंशज जर्मन, अंग्रेज, तथा स्वीडन वाले हैं; अन्त में स्लाव नामक आर्य-जाति के लोग आये जो उत्तर की ओर बढ़ गये और रूस के मैदानों तथा जंगलों में बस गये। डान्यूब नदी के आस पास भी इन्हीं की बस्ती है, इसके बाद मंगोलियन जाति के लोग आये, जिनके

वंशाज हंगरी, फिनलैण्ड तथा तुर्की आदि के रहनेवाले हैं, इस-भांति भारत के समान यहाँ भी एक के पीछे एक जाति आती गई।

इस समय केल्ट जाति के लोगों की संख्या ५० लाख, रोमनिक लोगों की १०॥ करोड़, ट्यूटन लोगों की १२ करोड़ तथा स्लावों की ११ करोड़ है, यूरोप की कुल जन-संख्या ४० करोड़ के लगभग है। जाति के अनुसार इन जातियों की भाषायें भी भिन्न भिन्न हैं।

शिक्षा तथा धर्म—यूरोप में शिक्षा का प्रचार बहुत अधिक है, अतः वहाँ के लोग चतुर, विचारवान तथा आविष्कारक होते हैं। संसार के समस्त आविष्कारों में यूरोप का बहुत बड़ा भाग है। स्लाव जाति के लोग शिक्षा में कुछ पिछड़े हुए हैं।

धर्म में यहाँ के सब लोग ईसाई हैं जिसका प्रचार यहाँ पर चौथी शताब्दी से छठवीं शताब्दी तक हुआ। पहले एक ही रोमन कैथोलिक मत को सब मानते थे परन्तु कुछ काल बाद उसके तीन विभाग हो गये, दक्षिण के रहनेवाले जो प्रधानतया रोमनिक जाति के हैं, कैथोलिक मत को ही मानते हैं तथा इनकी संख्या सबके अधिक है। ट्यूटोन जाति के लोग प्रोटेस्टेन्ट मत को मानने वाले हैं जो अनेक बातों में कैथोलिक मत के विरोधी हैं तथा पूर्व में रहनेवाले जिनमें स्लाव जाति के लोग प्रधान हैं। ग्रीक चर्च (यूनान का गिरजा घर) के धर्म को मानते हैं, इसके अतिरिक्त कुछ यहूदी तथा मुसलमान भी हैं।

देश—इस समय यूरोप में बीस से अधिक देश हैं जिनमें निरंकुश राज्य से लगा कर प्रजातंत्र तथा साम्यवाद तक—सब प्रकार के शासन विद्यमान हैं। निरंकुश राज्य का अब यूरोप से नाम सा

ही मिट गया है फिर भी बलगेरिया आदि एक दो देशों में राजा प्रायः स्वेच्छाचारी हैं। ग्रेट-ब्रिटेन, पुर्तगाल, नार्वे, स्वीडन, हालैण्ड बेलजियम, रूमानिया, आदि सबमें वैध-शासन स्थापित है, तथा फ्रान्स, जर्मनी, स्वीज़रलैण्ड तथा तुर्की में प्रजातंत्र है। रूस में कट्टर साम्यवादियों का जोर है।

दूसरा अध्याय

यूरोप के देश

ब्रिटिश द्वीप-समूह—इसमें दो बड़े द्वीप सम्मिलित हैं। पूर्व की ओर का बड़ा द्वीप ग्रेट ब्रिटेन (जिसमें इंगलैण्ड, वेल्स और स्काटलैण्ड ये तीन देश सम्मिलित हैं) और पश्चिम में आयर्लैण्ड का द्वीप। पहले ये चारों अलग २ स्वतंत्र राज्य थे। परन्तु प्रायः दो शताब्दियों से एक ही राजा के अधीन हैं, यद्यपि आयर्लैण्ड को अधीन हुए केवल एक शताब्दी से कुछ ही अधिक हुआ है, फिर भी वह स्वतंत्रता प्राप्ति का प्रयत्न कर रहा है।

यहाँ के लोगों ने आश्चर्यजनक उन्नति कर ली है। अनेक विजय प्राप्त कर आज ये प्रायः चौथाई संसार के शासक बने हैं और इनका व्यापार तथा प्रभाव समस्त संसार में है।

इस अपार उन्नति के कारण क्या २ हैं ? पहले तो ये द्वीप प्रायः प्रत्येक स्थान पर समुद्र से पास हैं, अतः यहाँ के लोग चतुर

मल्लाह होते हैं, और संसार भर से व्यापार करते हैं, इसी व्यापार-रक्षा के नाम पर यहाँ एक बड़ी भारी जलसेना भी रहती है।

दूसरे यहाँ की जलवायु भी शीतल और स्वास्थ्यप्रद है। अतः यहाँ के मनुष्य भी परिश्रमी और कारीगर होते हैं। फिर यहीं कोयले और लोहे की खानें भी अनेक हैं, जिससे बड़े २ उद्योग, धन्धे चलाये जाते हैं, बाहर से ये लोग कच्ची रूई, ऊन, आदि अनेक चीजें मँगाकर अपने यहाँ उनसे अनेक भाँति का सामान तैयार कर फिर उसे संसार को कई गुने मूल्य में बेचते हैं।

भूमि की प्रकृति और बनावट भी इस उन्नति में बहुत सहायक हुई है, भूमि प्रायः समथल और पूर्व की ओर ढालू है, अतः अनेक स्थानों में गेहूँ, जौ, आलू, फल आदि अनेक खाद्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं, परन्तु ये यहाँ की बड़ी जनसंख्या को पर्याप्त नहीं होते। अतः ये लोग बाहर के अनाज पर बहुत निर्भर रहते हैं। इंगलैण्ड के मध्य भाग की हवा रूई कातने के लिये बहुत उपयुक्त है; क्योंकि वहाँ धागा बिना टूटे हुए बहुत लम्बा बन सकता है।

भूमि के गोलार्ध के केन्द्र में स्थित होने तथा अमेरिका से पास होने के कारण भी इसे व्यापार में बहुत सुभीता होता है।

यहाँ की उन्नति का प्रधान कारण दस्तकारी है। यहाँ अनेक प्रकार की चीजें बनती हैं जिनमें मुख्य लोहे तथा सूत की हैं, लोहे से अनेक प्रकार की मशीनें, चाकू, कैंची तथा जहाज बनते हैं। इसके केन्द्र बर्मिंघम, शेफील्ड और ग्लासगो हैं। लन्दन, लिवरपूल, ग्लासगो और बेलफास्ट में जहाज बनाने के बड़े २ कारखाने हैं। सूत का व्यापार यहाँ लिवरपूल और मेन्चेस्टर द्वारा अधिक होता है और इसका प्रधान क्षेत्र लंकाशायर है। यह क्षेत्र सदा मशीनों,

और चिमनियों की घरघराहट से गूँजता रहता है, और चिमनियों के धुएँ के कारण "कालाक्षेत्र" कहलाता है। इसका कारण यह है कि यहाँ पास ही कोयले की खानें हैं और आबो हवा भी अच्छी है, अतः कपड़ा तैयार करने में बहुत सुविधा होती है। यार्कशायर और लीड्स ऊन के सामान के केन्द्र हैं। ऊन प्रायः आस्ट्रेलिया से यहाँ आती है। इसके अतिरिक्त सन, रेशम, चमड़ा आदि का सामान और कागज़ भी तैयार होता है।

टेम्स यहाँ की सब से बड़ी नदी है जिसकी लम्बाई कुल २१५ मील है, परन्तु चौड़ाई बहुत अधिक है, इसी के मुहाने पर दोनों ओर संसार-प्रसिद्ध लन्दन नगर बसा हुआ है जो संसार में सब से बड़ा, सब से धनी, और सब से अधिक व्यापारिक नगर है। इसके अतिरिक्त ग्लासगो, लिवरपूल, न्यूकैसल आदि अनेक प्रसिद्ध बन्दरगाह हैं। बरकिनहेड भी एक अच्छा बन्दर है जो अमेरिका से बहुत व्यापार करता है।

पश्चिम में आयर्लैण्ड का द्वीप है जिसके चारों किनारों पर पर्वत हैं और बीच में नीची भूमि है। यह देश, सदा हरा भरा रहता है, और कृषि में दिन २ सुधार हो रहा है। यहाँ की सब से बड़ी नदी शेनन है और राजधानी डब्लिन है। यहीं ट्रिनिटी कालेज नाम का एक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय है। मनुष्य प्रायः रोमन कैथो लिक धर्म के हैं।

फ्रांस—फ्रांस भी अपनी स्थिति, जलवायु तथा कृषि के कारण एक समृद्ध देश है। यह अटलांटिक महासागर और भूमध्यसागर दोनों से लगा हुआ है। अतः व्यापार में बहुत सुभीता होता

है। विशेषतः भूमध्यसागर के किनारे की आबोहवा अच्छी है।

फ्रांस सब ओर प्राकृतिक सीमाओं—समुद्र और पर्वतों से घिरा हुआ है। फ्रांस को पेरेनीज पर्वत स्पेन से, आल्प्स पर्वत इटली और स्वीजरलैण्ड से और व्हासजेंस पर्वत जर्मनी से अलग करते हैं। केवल उत्तर-पूर्व में बेलजियम की ओर खुला हुआ मार्ग है। इसी कारण गत महासमर में जर्मनी ने इस मार्ग से फ्रांस में प्रवेश करना चाहा था।

फ्रांस की भूमि प्रायः समथल और उपजाऊ है, अतः सड़कों नहरों और रेलों से खूब व्यापार होता है। मैदान में गेहूँ, चुकन्दर आदि की खेती होती है। दक्षिण में अंगूर तथा अन्टाफल बहुत होते हैं, और दक्षिण-पूर्व के पर्वतों पर घास और लकड़ी बहुत उत्पन्न होती है। खानें यहाँ अधिक नहीं हैं उत्तर-पूर्व में कोयला निकलता है। इसके अतिरिक्त कहीं कहीं लोहा, नमक, पत्थर आदि भी निकलता है। खानें कम होने के कारण फ्रांस अन्य देशों की खानों पर अधिकार करने के लिये लालयित रहता है। हाल ही में उसने जर्मनी की कोयले की खानें दबा ली थीं।

यहाँ शराब बहुत अधिक तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ रेशम और ऊन भी पैदा होती है। भाषा यहाँ की बहुत प्रसिद्ध है।

भूमध्यसागर में कार्सिका द्वीप भी फ्रांस के अधिकार में है, परन्तु वहाँ पहाड़ी भूमि होने से खेती बहुत कम होती है। लकड़ी और फल ही अधिक होते हैं। मनुष्य पशुओं को चराते और मछली पकड़ते हैं। यहीं की राजधानी एजाक्सियो में प्रसिद्ध वीर नपोलियन का जन्म हुआ था।

सीन नदी के किनारे पेरिस नगर इस समय फ्रांस की राज-धानी है। यह यूरोप का सब से सुन्दर नगर समझा जाता है। रेलों और नहरों का केन्द्र है। व्यापार भी यहाँ बहुत होता है। इसी के पास पुरानी राजधानी वर्सेली में एक सुन्दर महल है। सीन के किनारे ही नारमन्डी नामक प्रान्त की राजधानी रून सूत के व्यापार का केन्द्र है। भूमध्यसागर के किनारे पर मार्सेलीज़ सब से बड़ा व्यापारिक बन्दरगाह है, यहीं बोर्डो भी है। फ्रांस में एविगनोन, लारशेल, आरलीन्स, टूर्स, टोलोज, अमीन्स, सेडान आदि अनेक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान हैं।

हालैण्ड—फ्रांस के उत्तर—पूर्व में हालैण्ड और बेलजियम नाम के दो छोटे छोटे देश हैं, जो पहिले एक ही में मिले थे परन्तु धर्म, जाति, भाषा, आदि सब बातों में भिन्नता होने के कारण बहुत समय तक साथ न रह सके और लगभग सौ वर्ष से दोनों अलग अलग हैं।

हालैण्ड की भूमि बेलजियम से भी अधिक नीची है। अतः इन दोनों देशों में समुद्र और नदियों की बाढ़ के कारण बहुत हानि होती है। हाल में भी बाढ़ से बहुत हानि हुई है।

हालैण्ड में खानें नहीं हैं। लोग प्रायः खेती करते हैं और गाय बकरी चराते हैं। कुछ शताब्दियां पहिले इस देश ने अपना व्यापार यूरोप के सब देशों से अधिक फैला दिया था। अब भी मक्खन, अन्डे, शक्कर आदि बहुत सामान बाहर भेजा जाता है। यहाँ के मनुष्य चतुर मल्लाह, कारीगर तथा अच्छे लड़नेवाले होते हैं।

यहाँ का प्रधान नगर आम्सटर्डम है, जो हीरे के व्यापार के

लिये प्रसिद्ध है। हेग राजधानी है राटर्डम मुख्य बन्दर है और यूट्रेक्ट में विश्वविद्यालय है।

बेलजियम—यह भी बड़ा उद्योगी देश है। भूमि समथल होने से यह प्रायः यूरोप का कुरुक्षेत्र रहा है। इसका दक्षिणी भाग कुछ पहाड़ी है, जहाँ पर भेड़ बकरी आदि चराये जाते हैं। उत्तर के मैदान में गेहूँ, जौ, चुकन्दर, तमाखू आदि की खेती होती है। यहाँ के खनिज द्रव्य महत्त्वपूर्ण हैं। यहाँ कोयला इगलैंगड को छोड़ कर यूरोप के शेष सब देशों से अधिक होता है। लोहा भी अधिक होता है। अतः यह लोहे, सूत और ऊन का बहुत सामान तैयार करता है, व्यापार के केन्द्र लीज और घेन्ट हैं, राजधानी ब्रूसेल्स है।

यहाँ के दक्षिण-पूर्व के निवासी केल्ट जाति के हैं, शेष जो फ्लेमिंग कहलाते हैं जर्मन जाति के हैं। यह देश बड़ा घना बसा है अर्थात् प्रति मील ६०० मनुष्यों का औसत है। यहाँ के नब्बे सैकड़े मनुष्य रोमन कैथोलिक धर्म को मानते हैं। ब्रूसेल्स से ९ मील पर वाटरलू नामक प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ नेपोलियन की अन्तिम पराजय हुई थी, शेल्ट नदी पर एन्टवर्प नामका प्रसिद्ध बन्दर है।

जर्मनी—फ्राँस और हालैंगड के पूर्व में जर्मनी का देश है, यह यूरोप का मध्यप्रदेश है। अबतक यह २६ रियासतों का सम्मिलित सम्राज्य था, परन्तु अब प्रजातंत्र है।

यहाँ की आबहवा कुछ सद है, वर्षा भी अधिक होती है, देश प्रायः उपजाऊ है। गेहूँ, जौ, ज्वार तथा चुकन्दर बहुत उत्पन्न होते

हैं। चुकन्दर से यहाँ शक्कर तैयार की जाती है। दक्षिण में शराब बनती है और पहाड़ों पर लकड़ी पैदा होती है।

यहाँ के लोग बड़े ईमानदार, मिहनती, साहसी, विद्वान, तीव्र-बुद्धि तथा संगीत-प्रिय होते हैं—कारीगरी में ये लोग बहुत बढ़े हुये हैं। ऐसी कोई दस्तकारी नहीं जिसमें ये चतुर न हों, छापे और घड़ियों का यहीं आविष्कार हुआ था और रंग बनाने में इन्होंने बहुत उन्नति कर ली है। इसी भाँति रासायनिक सुवर्ण आदि भी अब ये बना रहे हैं।

जर्मनी की उन्नति का एक कारण वहाँ खनिज द्रव्यों की बहुलता भी है। यहाँ चाँदी, ताम्बा, जस्ता, लोहा, सीसा, कोयला आदि अनेक चीजें खानों से निकलती हैं।

यहाँ विद्या की भी उन्नति है, सार्वजनिक पाठशालायें बहुत हैं, विश्वविद्यालय पच्चीस तो हैं। सम्राट के समय में प्रत्येक मनुष्य को तीन वर्ष तक सेना में भी काम करना पड़ता था।

जर्मनी में प्रयाग से अधिक जनसंख्या के तीस से ऊपर नगर हैं। मध्य में बर्लिन राजधानी है, ऐसेन में लोहे के अस्त्र-शस्त्र बनाने का बड़ा कारखाना है। कालोन राइन नदी के पास एक बड़ा व्या-पारिक नगर है, इसी के किनारे मेग्डेबर्ग में संसार में सबसे बड़ा शक्कर का कारखाना है। हेम्बर्ग और डेनज़िग बड़े बन्दरगाह हैं।

कानून बनाने वाली प्रधान सभा रीशटाग कहलाती है।

आस्ट्रिया-हंगरी—आस्ट्रिया का अर्थ है 'पूर्वी प्रदेश'। आठवीं शताब्दी में जर्मनी के सम्राट शालिमेन के साम्राज्य का पूर्वी भाग होने के कारण इसका यह नाम पड़ा। पहले आस्ट्रिया एक छोटा सा प्रान्त था। ११७६ में यहाँ एक ड्यूक नियत कर दिया गया,

१५२६ में हंगरी के राजा की मृत्यु पर वह देश भी आस्ट्रिया में मिला लिया गया। फिर यहाँ के ड्यूक बहुत समय तक जर्मनी के सम्राट् चुने जाते रहे। परन्तु १८०६ में नेपोलियन ने इस साम्राज्य का अन्त कर दिया, तब से आस्ट्रिया के शासक केवल आस्ट्रिया के ही सम्राट् रह गये। फिर १८६६ में प्रशा का राजा आस्ट्रिया को जर्मनी से बाहर निकालकर स्वयं जर्मन सम्राट् बन गया और दूसरे वर्ष हंगरी और आस्ट्रिया ने उससे सन्धि कर ली।

आस्ट्रिया डान्यूब की भूमि है अर्थात् यह डान्यूब तथा उसकी सहायक नदियों से घिरी हुई है। यह देश पहाड़ी है, केवल उत्तर-पूर्व में गैलेशिया का मैदान है जहाँ नमक व तेल की खानें हैं। उत्तर-पश्चिम में बोहेमिया का प्लेटो भी इसी के अन्तर्गत है। यहाँ सोना, चाँदी रूस को छोड़कर शेष सब देशों से अधिक उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त पारा ताँबा, लोहा और कोयला भी निकलता है।

यहाँ पर स्लाव, जर्मन, हंगेरीयन, रूमानियन आदि अनेक जातियों के लोग रहते हैं। स्लाव आधे के लगभग हैं और जर्मन चौथाई, जो प्रायः पश्चिम की ओर रहते हैं और अधिक शिक्षित तथा प्रभावशाली हैं। हंगरी के लोग अपने को मागयार कहते हैं। यहाँ प्रायः १७ भाषायें बोली जाती हैं। अधिकांश लोग रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के अनुयायी हैं तथा कुछ यूनानी धर्म के और कुछ प्रोटेस्टेण्ट भी हैं। १९१९ से यहाँ भी प्रजातंत्र राज्य है।

आस्ट्रिया तथा हंगरी का प्रधान उद्यम कृषि है, जिसमें मुख्य पैदावार गेहूँ, चुकन्दर और आलू हैं। सूत, ऊन, सन काँच तथा दस्तकारी भी होती है परन्तु व्यापार अधिक नहीं है। पहाड़ों पर लकड़ी और घास पैदा होती है। यहाँ घोड़े सुन्दर और पुष्ट होते हैं।

आस्ट्रिया के मुख्य भाग बोहेमिया, मोरेविया, साइलेशिया, आस्ट्रिया, स्टीरीया तथा डालमेशिया थे। परन्तु गत महायुद्ध के बाद इन देशों में फिर भारी परिवर्तन कर दिया गया है। उत्तर-पश्चिम का भाग—बोहेमिया—पहले एक स्वतंत्र राज्य था, और वहाँ के निवासी भी जाति में आस्ट्रिया वालों से भिन्न हैं, अर्थात् वे स्लाव जाति के हैं और जेक कहलाते हैं। अतः गत महासमर के बाद आस्ट्रिया से बोहेमिया और मोरेविया नामक दो प्रान्त छीन कर जेकोस्लोवेकिया नाम की एक नयी रियासत तैयार कर दी गयी। इसी भाँति साइलेशिया का बहुत सा भाग पोलैण्ड को और आस्ट्रिया के दक्षिण का कुछ भाग सर्बिया को दे दिया गया है। इस भाँति वास्तव में इस समय आस्ट्रियन साम्राज्य तो नष्ट हो चुका है, केवल आस्ट्रिया और हंगरी नाम की दो छोटी छोटी तथा निर्बल रियासतें रह गयी हैं।

आस्ट्रिया की राजधानी डान्यूब नदी पर विएना अथवा वीना है, जो यूरोप के मध्य में होने के कारण रेल का भारी केन्द्र है और इसकी जन-संख्या भी १८ लाख से ऊपर है।

हंगरी की राजधानी डान्यूब के दोनों ओर पास २ बसे हुए बुडा और पेस्त नामक दो नगर हैं, जिनसे प्रायः एक ही नगर बुडापेस्त समझा जाता है।

बोहेमिया—(अथवा नवीन जेकोस्लोवेकिया) की राजधानी प्रेग है, जो खानों तथा दस्तकारी के केन्द्र के पास है। इसकी जन-संख्या भी दो लाख से ऊपर है, यहाँ एक विश्वविद्यालय भी है।

स्वीजरलैण्ड—मध्य-आस्ट्रिया के ठीक पश्चिम में, राइन और रोन नदियों के उद्गम के बीच में, आल्प्स की पर्वतमाला से घिरा

हुआ स्वीजरलैण्ड का सुन्दर देश है, जिसकी जनसंख्या बत्तीस लाख के ऊपर है। यहाँ के अधिकांश निवासी जर्मन भाषा और शेष लोग फ्रेंच तथा इटालियन भाषायें बोलते हैं।

पहाड़ों के कारण यहाँ खेती बहुत कम होती है परन्तु पशुओं के चराने योग्य घास बहुत होती है। अतः यहाँ से जमा हुआ दूध और मक्खन बाहर बहुत भेजा जाता है। लोहा और कोयला न होने से दस्तकारी भी बहुत कम है, केवल यहाँ प्रत्येक भांति की घड़ियाँ बहुत अच्छी बनती हैं जिसका केन्द्र जेनेवा है। सबसे बड़ा नगर ज़ूरिच रेशम की दस्तिकारी का केन्द्र है, राजधानी बर्न मध्य में स्थित है।

यह राज्य कई छोटे छोटे २ जिलों अथवा केन्टनों को मिलाकर बना है और प्रत्येक भाग में पूर्ण प्रजातंत्र राज्य-स्थापित हैं अर्थात् स्वयं जनता द्वारा ही शासन होता है प्रतिनिधियों द्वारा नहीं। जनता का प्रत्येक कार्य में भाग है। आन्तरिक प्रबन्धादि के लिये प्रत्येक भाग स्वतंत्र है परन्तु युद्ध, सन्धि, कर, करन्सी आदि बातों का निर्णय सम्मिलित सरकार द्वारा ही किया जाता है।

जापानियों की भाँति यहाँ के मनुष्य भी बुद्धिमान् देश भक्त और स्वतंत्रताप्रिय होते हैं। धर्म में प्रायः तीन चौथाई मनुष्य प्रोटेस्टेण्ट हैं, क्योंकि कालविन, ज्विगली दोनों सुधारक यहीं पैदा हुए और प्रायः यहीं रहे।

स्वीडन और नार्वे—स्केन्डीनेविया का प्रायद्वीप जिसमें स्वीडन और नार्वे दोनों देश सम्मिलित हैं, पश्चिमी यूरोप के उत्तर में है। नार्वे क्षेत्रफल में बम्बई प्रान्त के समान है परन्तु यहाँ जंगल और पहाड़ बहुत हैं। स्वीडन में जंगल और पहाड़ कुछ कम हैं, पर

नदियाँ और झीलें बहुत अधिक ... दी गयी हैं जिससे व्यापार खूब होता है।

इन देशों के प्रधान उद्यम लकड़ी काटना, खान खोदना और मछली पकड़ना है। यहाँ लकड़ी अधिक होने के कारण कागज और दियासलाई, बहुत बनायी जाती है और ये चीजें बाहर भी बहुत भेजी जाती हैं। मुख्य खनिज द्रव्य लोहा और ताँबा है। स्वीडन का लोहा बहुत अच्छा होता है और इस्पात बनाने के लिये इंगलैण्ड को बहुत भेजा जाता है तथा उसके बदले में कपड़ा और कोयला बाहर से यहाँ आता है। गुजर के योग्य अन्न भी यहाँ पैदा हो जाता है और कुछ बाहर भी भेजा जाता है। मुख्य अन्न जौ और ज्वार हैं।

समुद्र कम गहरे होने के कारण नार्वे में बहुत लोग मछली पकड़ने का ही धन्दा करते हैं। पर्वतों के ढालों पर भेड़ तथा अन्य पशु चराये जाते हैं।

इन देशों में गर्मी थोड़े दिन पड़ती है परन्तु जाड़ा लम्बा और बहुत अधिक होता है। इसके कुछ भाग उत्तरी ध्रुव के पास हैं अतः वहाँ गर्मियों में दो तीन मास तक लगातार सूर्य का प्रकाश रहता है और जाड़ों में दो तीन मास तक सूर्य के दर्शन ही नहीं होते।

इन देशों में आबादी बहुत कम है, अर्थात् प्रति मील १८ आदमी का औसत नार्वे में और प्रति मील २० स्वीडन में। मनुष्य लम्बे, सुन्दर, मिहनती, और अतिथि-सत्कार करनेवाले होते हैं। इन दोनों देशों का राजा एक है, परन्तु शासन व्यवस्थाएँ भिन्न २ हैं।

दक्षिण में जलवायु कुछ अच्छा होने से प्रायः नगर उसी ओर हैं। नार्वे की राजधानी क्रिश्चियाना है, जिसे क्रिश्चियन चतुर्थ ने

बसाया था और स्वीडन की राजधानी स्टाकहाम है। अपसाला में एक विश्वविद्यालय है और गोथनवर्ग मुख्य बन्दर है।

डेनमार्क—स्केन्डीनेविया के दक्षिण में और जर्मनी के उत्तर पश्चिम में, जटलैण्ड नाम का एक छोटा प्रायद्वीप है। यहीं पर डेनमार्क नामक देश है जिसमें जटलैण्ड, जीलैण्ड, फेरो आदि कई भाग सम्मिलित हैं। यह देश जाति, जलवायु और पैदावार आदि अनेक बातों में स्केन्डीनेविया से मिलता है और बहुत समय तक उसी में सम्मिलित रह चुका है। लोग गाय, भेड़ चराते, घी, दूध, मक्खन निकालते, मछली पकड़ते और जौ ज्वार आदि की खेती करते हैं। राजधानी कोपनहेगन है।

ऐंग्लो-सेक्सन लोग, जिन्होंने पाँचवीं शताब्दी में इँगलैण्ड को जीता था, यहीं से गये थे। आठवीं शताब्दी में यहीं के लोगों ने जो 'नार्थमैन' कहलाते थे, समस्त यूरोप पर आतंक जमा रखा था। यहीं का राजा कैन्यूट इंगलैण्ड का भी राजा था।

रूस और पोलैण्ड—यूरोप का पूर्वी आधा भाग रूस का देश है। यह बिस्तार में भारत से तिगुना और साइबेरिया से तिहाई है और आबादी भारत से तिहाई और साइबेरिया से छैः गुनी है। साइबेरिया से रूस की आबहवा अच्छी है—विशेष कर दक्षिणी भाग में। मनुष्य प्रायः स्लाव जाति के हैं।

उत्तर के मनुष्य प्रायः जंगलों में घूमने वाले और शिकारी हैं, मध्य में भी कुछ जंगल हैं, दक्षिण में मक्का आदि कुछ अनाज पैदा हो जाते हैं। यहाँ के मनुष्य सूत और ऊन के वस्त्र प्रायः अपने ही हाथ से तैयार कर लेते हैं। सभ्यता में ये लोग यूरोप से पीछे समझे जाते हैं। १८६१ तक यहाँ 'सर्फ' प्रथा प्रचलित थी।

यहाँ के पहले जंगली निवासी सीथियन कहलाते थे। स्कैन्डीनेविया के एक डाकू रूरिक ने ८८२ में उनमें से बहुतों को जीत लिया और वही यहाँ का पहिला राजा समझा जाता है। दसवीं शताब्दी में यहाँ ईसाई मत का प्रचार हुआ। फिर छ सात सौ वर्ष बाद पीटर महान ने इनमें यूरोपीय सभ्यता का प्रचार किया। रूस के पूर्वी भाग लिथूआनिया—जो १९१९ में रूस से अलग कर दिया गया है—के लोग संस्कृत से मिलती जुलती कुछ भाषा बोलते हैं। कुछ लोगों का अनुमान है कि यूरोप में भी पहिले भारत के ही आर्य लोग बसने गये थे।

यहाँ के लोग यूनानी गिर्जे के धर्म को मानते हैं। अब तक ज़ार ही राज्य और धर्म दोनों के प्रधान थे परन्तु अब वहाँ साम्यवादियों का राज्य है। ज़ार के समय में लोगों को धार्मिक स्वतंत्रता बिलकुल न थी। बहुत आन्दोलन करने पर १८०३ में नाम मात्र की स्वतंत्रता दी गयी थी।

यहाँ बन्दरगाह बहुत कम हैं, जो हैं भी, वे प्रायः बर्फ से ढके रहते हैं। अतः रूस ने कई बार और बन्दरों पर अधिकार करने का प्रयत्न किया है। राजधानी पहले सेन्ट पीटर्सबर्ग कहलाती थी, जिसे १७०३ में पीटर महान ने बसाया था। फिर यह पेट्रोग्राड कहलायी और आज कल इसे लेनिनग्राड कहते हैं। रूस के मध्य में मास्को इसकी पुरानी राजधानी है।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में पोलैण्ड नाम की एक रियासत को—जो रूस के पश्चिम में है—आस्ट्रिया, प्रशा और रूस ने आपस में बाँट लिया था। पर गत महायुद्ध के बाद इन तीनों देशों

कुछ २ भाग छीन कर फिर प्रजातंत्र पोलैण्ड राज्य की स्थापना की गयी है। यहाँ की राजधानी वॉरसा है।

स्पेन और पुर्तगाल—अब हम दक्षिणी यूरोप के तीन प्राय-द्वीपों—आइबेरियन, इटली और बालकन—का कुछ हाल बता कर इस अध्याय को समाप्त करेंगे।

यूरोप के दक्षिण-पश्चिम में आइबेरियन नामक प्रायद्वीप में स्पेन और पुर्तगाल दो देश हैं जिनमें स्पेन पुर्तगाल से चौगुना बड़ा है। यह प्रायद्वीप एक प्लैटो है और तीन ओर जल से घिरा है और एक ओर पेरेनीज पर्वतश्रेणी है।

यहाँ की जलवायु गर्मी में अधिक गर्म और सर्दी में अधिक सर्द होती है। उत्तर और पश्चिम में पानी बहुत बरसता है। भू-मध्य सागर के किनारे की आबहवा उत्तर से अच्छी है। प्रायः किनारों के पास खेती होती है। मुख्य पैदावार गेहूँ, मक्का, चावल शराब तथा अंगूर, नारंगी, शहतूत आदि फल हैं। लोहा और ताँबा भी मिलता है।

शासन-प्रबन्ध में ये दोनों देश अलग अलग हैं परन्तु दोनों के मनुष्य मिलते जुलते हैं। स्पेन में लैटिन तथा मूर जातियों की अधिकता है। ये लोग रंग में उत्तर वालों से कुछ काले होते हैं और इनके बाल भी काले होते हैं। स्पेन को रोमन, गोथ, मूर आदि अनेक जातियों ने जीता। १५ वीं शताब्दी में स्पेन के भिन्न भिन्न भाग एक में मिलाये गये। यहाँ राजतंत्र स्थापित है। परंतु इस समय तक 'डी रेवेरा' नाम के एक सैनिक अफसर का जोर था, जो अब कुछ कम हो रहा है। धर्म में यहाँ के लोग प्रायः रोमन कैथोलिक हैं।

स्पेन में एक लाख से ऊपर जनसंख्या वाले सात नगर हैं और पुर्तगाल में दो। मेड्रिड स्पेन की राजधानी है जो मध्य में होने के कारण रेल का केन्द्र है। भूमध्यसागर में दस्तकारी का केन्द्र और मुख्य बन्दरगाह बार्सलोना है। दक्षिण में जिब्राल्टर का किला अंग्रेजों के हाथ में है। कारडोवा और ग्रेनेडा मूर लोगों की राजधानियाँ थीं और दसवीं शताब्दी में ये बड़े धनवान तथा समृद्ध नगर थे। ग्रेनेडा एक सुन्दर नगर है और कारडोवा में एक प्रसिद्ध गिर्जा घर है जो पहिले एक मसजिद थी।

पुर्तगाल को रोम के लोग पहिले लूसीटैनिया कहते थे। यहाँ पानी कुछ अधिक बरसता है और यहाँ की लाल रंग की पोर्ट नामक शराब (पोर्ट-वाइन) प्रसिद्ध है। लिस्बन राजधानी है जो १७५५ में भारी भूकम्प से हो जाने के बाद नयी बनायी गयी है। डोरो नदी पर अपोर्टो नाम का दूसरा बड़ा नगर और बन्दर है। यहाँ से शराब बाहर बहुत भेजी जाती है।

इटली—यह मध्य का प्रायद्वीप है। भूमध्यसागर के किनारे होने से यहाँ की आबहवा यूरोप के सब देशों से अच्छी है। यहाँ के लोग बड़े कलाप्रिय होते हैं, घरों को चित्रों और मूर्तियों से सजाते हैं, गायन बहुत पसन्द करते हैं। प्रायः यहाँ का प्रत्येक मनुष्य गाना अथवा बजाना जानता है। देश की सुन्दरता के कारण ही कदाचित् ये लोग सुन्दरता के उपासक हो गये हैं।

इटली का उत्तरी भाग लम्बार्डी का मैदान कहलाता है। यहाँ पो नदी की घाटी गंगाजी की घाटी के समान उपजाऊ है। अतः हरा भरा होने के कारण यह देश 'यूरोप का उद्यान' कहलाता है। यहाँ चावल, मक्का, अंगूर (जिनसे शराब बनायी जाती है और शह-

तूत जिससे रेशम के कीड़े पाले जाते हैं) बहुत पैदा होते हैं। मिलन में रेशम का काम बहुत अधिक होता है।

दक्खिणी भाग में ऐपैनाइन पर्वत फैले हुए हैं जो ज्वालामुखी हैं। सब से बड़ा ज्वालामुखी विसूवियस नेपिल्स नगर के पास है। अब भी यहाँ प्रायः भूकम्प होते हैं और भारी हानि होती है, मनुष्य प्रायः किसान हैं।

मध्य-इटली के पश्चिमी किनारे पर रोम का प्रसिद्ध नगर है, जो दो हजार वर्ष पहले रोम साम्राज्य की राजधानी थी। अन्य प्रसिद्ध बन्दर और नगर जिनोआ, नेपिल्स फ्लोरेन्स और ब्रिंडिसी आदि हैं।

दक्खिण में दो बड़े द्वीप सिसली और सार्डिनिया भी इटली के आधीन हैं। सिसली की भूमि बड़ी सुन्दर और उपजाऊ है। इसी के उत्तर में ११,००० फीट ऊँचा एटना नाम का बड़ा ज्वालामुखी है। सिसली में नारङ्गी आदि फल होते हैं। सार्डिनिया पहाड़ों और जंगलों से ढका है। यहाँ एक प्रकार की मछली पकड़ी जाती है।

रूमानिया तथा बालकन प्रायद्वीप के देश—रूमानिया का छोटा देश बालकन प्रायद्वीप से अलग समझा जाता है। इस राज्य में वेलेशिया और मोल्डेविया के सूबे और डान्यूब का डेल्टा सम्मिलित है। मुख्य पैदावर गेहूँ, मक्का, कोयला और मिट्टी का तेल है। राजधानी बुखारेस्ट है।

बालकन प्रायद्वीप में इस समय बलगेरिया, जुगो-स्लेविया और यूनान के देश हैं। जुगो-स्लेविया एड्रियाट्रिक सागर के पूर्व में इटली के समानान्तर है। इसमें पहले के सर्विया, मांटीनीग्रो तथा

आस्ट्रिया के कुछ भाग सम्मिलित हैं । यह नया प्रबन्ध भी एक जाति के आधार पर गत महायुद्ध के बाद किया गया है। यहाँ का प्रधान शहर बेलग्रेड है, जो डान्यूब नदी पर है । मक्का, आलू, शराब आदि पैदा होते हैं ।

जुगो-स्लेविया के पूर्व तथा रोमानिया के दक्षिण में बलगेरिया है । रोमेलिया का पूर्वी भाग भी इसी में सम्मिलित है । यहाँ यद्यपि परिमित राज-प्रथा स्थापित है, परन्तु बादशाह बोरिस अनेक बातों में स्वतंत्र है, मुख्य पैदावार मक्का, आलू, रुई, शराब, रेशम आदि है । राजधानी सोफिया है, मनुष्य प्रायः स्लाव हैं ।

पहिले तुर्कों का भी बालकन प्रायद्वीप में अधिकार था परन्तु धीरे २ करके यूरोप की जातियों ने इस गैर ईसाई शक्ति को बाहर निकाल दिया। यद्यपि कुस्तुन्तुनिया और डार्डेनेल्स अब भी तुर्कों के अधिकार में हैं, परन्तु यूरोप में अब उसका प्रभाव कुछ भी नहीं है ।

बलगेरिया के दक्षिण में यूनान का देश है, जो भूमध्यसागर के किनारे है । इसके दक्षिण में अनेक छोटे छोटे द्वीप-समूह हैं, जिनमें आयोनियन और ईजियन प्रधान हैं ।

यूरोप में भूमध्यसागर के किनारे ही सभ्यता का जन्म हुआ। मिश्र का प्राचीन सभ्य देश इसी के दक्षिण में है, यूनान और रोम ने अपने साम्राज्य इसी के किनारे उस समय स्थापित किये, जब कि शेष यूरोप में सभ्यता तथा इतिहास का आरम्भ भी नहीं हुआ था ।

अथेन्स सदा से ग्रीस की राजधानी रहा और अब भी है ।

यूनान का देश बड़ा टेढ़ा मेढ़ा है, अतः यहाँ का कोई भी स्थान समुद्र से ४० मील से अधिक दूर नहीं है । पहिले यहाँ पर

एक साधारण ज़िले के आकार की छोटी छोटी अनेक रियासतें थीं, फिर बहुत दिन तक यह एक राजा के अधिकार में रहा और इस समय प्रजातंत्र है। गत महायुद्ध के बाद एशिया माइनर के कुछ द्वीप तथा अन्य स्थान भी इसे मिल गये हैं, अतः यह अपनी अत्यन्त प्राचीन समय की सीमा पर पहुँच गया है।

इसके मुख्य भाग उत्तर में थिसली, एपिरस तथा मोरिया (जो प्राचीन समय में पेलेपोलेशस कहलाता था) हैं। इनके दक्षिण में बोटिया प्रान्त है जिसका प्रधान नगर थीब्स है। बोटिया के दक्षिण में त्रिभुजाकार दो ओर समुद्र से घिरा हुआ एटिका नाम का प्रान्त है जहाँ फल अधिक पैदा होते हैं।

यह देश नदियों और पहाड़ों से भरा है, इसलिये यहाँ कोई बड़ा चौरस मैदान नहीं है। नदियाँ तीव्र वेग से बहती हैं, अतः व्यापार के लिये उपयोगी नहीं हैं। सबसे बड़ी नदी एचिलस एपिरस के पहाड़ी प्रान्त में होकर बहती है। यूनान की उत्तरी सीमा पर पहाड़ों का एक सिलसिला चला गया है जिसकी चोटियाँ ८००० फीट तक ऊँची हैं, और यहाँ थर्मापली नाम की एक घाटी को छोड़कर आने जाने का अन्य कोई मार्ग नहीं है, यह घाटी भी इतनी तंग है कि कहीं कहीं केवल पचास गज़ चौड़ी है। इन्हीं पर्वत श्रेणियों में पनीसस और हेलिकन नाम के पर्वत हैं जहाँ प्राचीन यूनानी लोग देवताओं का वास मानते थे। पर्वतों की अधिकता के कारण ही यहाँ अनेक छोटे छोटे नगर-राज्य उत्पन्न हुए। जलवायु स्वास्थ्यप्रद है। मुख्य पैदावार शहद, रेशम, घास तथा अनाज हैं।

तीसरा अध्याय

यूनान का इतिहास

यूनान का आरम्भिक वर्णन

यूरोप का प्राचीनतम सभ्य देश यूनान है और इसका इतिहास ईसा के लगभग एक हजार वर्ष पहले आरम्भ होता है। ईसा के सात सौ वर्ष पहले यहाँ लेखक-कला का आविष्कार हुआ और तब से वहाँ की प्रधान घटनायें लेखबद्ध होती गईं। किसी देश का सच्चा इतिहास जानने के सबसे अच्छे साधन लेख तथा ग्रन्थ ही हैं। अतः ईसा के सात सौ वर्ष पहले से लगा कर अब तक की घटनाओं का इसका क्रमबद्ध इतिहास हमें मिलता है। इसके पहले की सब घटनायें अनिश्चित तथा अन्धकारमय हैं। प्राचीन समय से ही यूनान के लोग अपने वंशारम्भ की बहुत सी कहानियाँ कहते आये हैं। वे कहते हैं कि हम सब हैलेन की सन्तान हैं, कदाचित् इसी कारण प्राचीन समय में ये हैलेनीज़ कहलाते थे तथा उनका देश हैलास कहा जाता था। पीछे रोम साम्राज्य के समय इटलीवालों ने इनको 'ग्रीकस' कहना आरम्भ किया और इनका देश 'ग्रीस' कहलाया।

यूरोपीय इतिहासकार इन्हें भी एशिया से गये हुए आर्यों की सन्तति बताते हैं। भाषाओं की जांच करके उन्होंने निष्कर्ष निकला है कि मध्य एशिया से पश्चिम की ओर जाने वाले लोग पहले साथ साथ चले, फिर कुछ लोग अलग हो गये और मध्य

योरोप आदि में बस गए, जो अब केल्ट और जर्मन कहलाते हैं और शेष यूनान तथा इटली में बस गये ।

यूनान के मूल-निवासियों के सम्बन्ध में कोई निश्चित मत नहीं है, यद्यपि उनके सम्बन्ध में कुछ कहानियाँ प्रचलित हैं ।

नये आये हुए लोगों ने सभ्यता और कलायें, मालूम पड़ता है, फोनेशिया और मिश्र (ईजिप्ट) निवासियों से सीखीं; क्योंकि फोनेशिया वालों ने ही सबसे पहले सामुद्री व्यापार आरम्भ किया था । इसी सम्बन्ध में एक कथा है । थिसली के कुछ लोग आर्गो नामक एक जहाज में कालेसागर के किनारे कोलचिस नामक स्थान पर रखी हुई सुनहरी ऊन लाने गये । इनमें जैसन और थिसियस दो व्यक्ति प्रधान थे । वहाँ के राजा ने जैसन से कहा कि यदि तुम हमारे पीतल के बैलों को जिनके श्वास से अग्नि की लपटें निकलती थीं, ले जा कर एक खेत जोत कर उसमें कुछ बीज बो दो तो हम तुम्हें ऊन लेने देंगे । राजा की जादूगर पुत्री मीदिया की सहायता से जैसन इन कार्यों को करके अजगर के रक्षण से ऊन को प्राप्त करने में सफल हुआ और अपने देश को वापस आ गया ।

दूसरी प्रसिद्ध घटना ट्रोजन युद्ध कहलाती है । ट्राय के राजकुमार परसियस ने यूनान के एक देश स्पार्टा के राजा मीनीलास के यहाँ ठहर कर धोखे से उसकी परम सुन्दरी स्त्री हैलेन को गायब कर दिया । यूनान के सब राजाओं ने इसे अपना अपमान समझा और मिनीलास के भाई एगेमेमनन के नेतृत्व में परसियस को दण्ड देने चल दिये । उनके पास १२०० जहाज थे । इन राजाओं में एचिलीज सबसे अधिक वीर था और इथाका का राजा

ओडेसियस बड़ा भारी वक्ता तथा चतुर था। दूसरी ओर का प्रधान योद्धा हेक्टर था। इस युद्ध में अनेक देवताओं ने भी दोनों ओर से भाग लिया था। दस वर्ष तक युद्ध होता रहा जिसमें दसवें वर्ष के युद्ध का वर्णन होमर कवि ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ इलियड में किया है। एगेमेमनन के व्यवहार से अप्रसन्न होकर एचिलीस अपने कमरे में चुपचाप बैठा रहा और युद्ध में न गया; परन्तु उसके बिना वे लोग शत्रुओं का सामना न कर सकते थे, इसलिये हार कर भाग गये। एचिलीस ने यह समाचार सुन कर अपने एक मित्र को युद्ध में भेजा परन्तु उसे भी हेक्टर ने मार डाला। क्रुद्ध होकर एचिलीस स्वयं चला और उसने सारी सेना को भगा कर और हेक्टर को भी मार कर अपने मित्र का बदला लिया। फिर देवी अपोलो की इच्छानुसार परसियस के एक तीर से एचिलीस का भी प्राणान्त हुआ। अब यूनानी दल का चतुर योद्धा ओडेसियस अपने कुछ साथियों सहित एक काठ के घोड़े के पेट में बैठ गया। ट्रोजन लोग इस भेद को न समझ कर जब उस घोड़े को अपने डेरे में उठा ले गये तो आधी रात के समय उन्होंने घोड़े के पेट से निकल कर शत्रुओं के डेरे के फाटक खोल दिये जिससे यूनानियों ने आक्रमण करके ट्राय नगर को लूट कर नष्ट कर दिया। वहाँ का राजा भी युद्ध में मारा गया।

इन कथाओं में सत्यता का थोड़ा बहुत अंश अवश्य है। यह पता लगा है कि प्राचीन काल में यूनान के पास एक ट्राय नगर अवश्य था और वहाँ घेरा भी डाला गया था और वह कई बार उजाड़ा और बसाया गया।

आरम्भ में ये लोग भी आर्यों की भाँति नैसर्गिक शक्तियों

की उपासना करते थे। इनके देवता जियस (आकाश), पोसीडन (समुद्र), अपोलो (सूर्य), डीमीटर (पृथ्वी) आदि थे। परन्तु वहाँ भी सभ्यता के विकास के साथ साथ ही देवताओं की संख्या में भी वृद्धि होती गयी और संसार का प्रत्येक कार्य इन्हीं के द्वारा संचालित माना जाने लगा। देवताओं की मृत्यु नहीं होती थी। धीरे धीरे जियस अथवा जूपिटर सर्वशक्तिमान माना जाने लगा तथा स्थान स्थान पर भिन्न भिन्न देवताओं के अनेक मन्दिर बन गये। इनमें दो मन्दिर मुख्य थे। पहला डेल्फी में अपोलो का और दूसरा ओलिम्पिया का मन्दिर। इन लोगों का विश्वास था कि अपोलो के मन्दिर की पुजारिन के ऊपर देवी चढ़ कर बोला करती है। अतः वहाँ के पुजारियों का देश में बड़ा सम्मान था तथा लोग उनसे बहुत डरते थे। दूर दूर से मनुष्य आकर अपने कार्यों के अच्छे-बुरे परिणाम, नये उपनिवेश बसाने के लिये सलाह तथा भविष्य के समाचार आदि पूछा करते थे क्योंकि ये लोग देवताओं की इच्छा जाने बिना कोई कार्य आरम्भ करना उचित नहीं समझते थे। इस भांति पुजारिन (जो औरेकल कहलाती थी) द्वारा प्राप्त किये हुए उत्तर प्रायः अस्पष्ट और अनेकार्थक होते थे। फिर भी यह प्रथा यूनानी स्वतंत्रता के अन्त तक बराबर चलती रही। दूसरा मन्दिर खेलों का केन्द्र था। यहाँ पर साल में दो बार बड़े बड़े उत्सव मनाये जाते थे जिनमें यूनान के सब प्रान्तों के लोग सम्मिलित होते थे। इसी लिये कि उन्हें यह स्मरण रहे कि हम सब एक ही जाति के हैं।

ऐक्य स्थापित रखने के ही उद्देश्य से यहाँ पर कुश्ती, मुक्के-बाजी, कुदाई, घुड़दौड़, रथदौड़ आदि अनेक खेल होते थे और

इसी मौके पर सब रियासतें आपस के वैमनस्यों को दूर कर देती थीं। धीरे धीरे इन खेलों के साथ साथ संगीत तथा काव्य में भी प्रतिद्वन्द्विता होने लगी।

ये लोग तीन श्रेणियों में बटे थे—सरदार, साधारण स्वतंत्र नागरिक और दास। सरदारों के पास निजकी भूमि होती थी तथा उनके पास कई दास रहते थे जो उनकी सेवा आदि कार्य करते थे। सरदार लोग अपनी वीरता के लिये प्रसिद्ध थे। मध्यश्रेणी के लोगों में भी प्रायः सब के पास कुछ भूमि होती थी, जिसे वे स्वयं जोतते थे और जिनके पास निजकी भूमि न थी वे भाड़ा लेकर दूसरों की भूमि पर काम करते थे। दास-प्रथा का यह आरम्भिक काल था। अतः उनके प्रति अच्छा व्यवहार किया जाता था और वे भी घर के लोगों में से समझे जाते थे। आगे चल कर यह प्रथा बहुत बढ़ी और दासों पर बड़े २ निष्ठुर तथा क्रूर अत्याचार किये जाने लगे।

समाज में सादगी बहुत पसन्द की जाती थी। राजा अथवा सरदार किसी काव्य या कला में निपुणता प्राप्त करना अपनी शान के खिलाफ नहीं समझता था। ओडेसियस ने अपना शयनागार स्वयं ही बनाया था और वह हल भी चला लेता था। अनेक सरदार तथा दीनजन प्रायः एक सा ही भोजन करते थे अर्थात् रोटी, दाल अथवा बकरी का मांस तथा फल यही उनका प्रधान आहार था। ये शराब भी पीते थे।

हाल की खोजों से पृथ्वी के अन्दर उस समय का एक महल निकला है जिससे ज्ञात होता है कि ये लोग शिल्प में भी निपुण थे। इसी भांति स्त्रियाँ भी सूत काततीं और कपड़ा बुनती थीं,

कुओं से पानी लातीं, और दासों के साथ नदी पर जाकर कपड़े धुलवाती थीं, परन्तु धीरे २ ये काम हीन समझे जाने लगे।

निम्न श्रेणी के लोगों की दशा कुछ बुरी थी और वे प्रसन्न न थे। लड़ाइयों में ये लोग किसी एक ही बड़े योद्धा से डर कर सबके सब भाग जाते थे जैसा कि अनेक कहानियों से प्रमाणित होता है।

इन लोगों की कई छोटी २ स्वतंत्र रियासतें हो गई थीं, और उनमें कुछ भिन्नतायें आ गई थीं। परन्तु इनमें एक भाषा, एक धर्म, तथा एक ही आचार व्यवहार के कारण एकता बनी रहती थी। इसके अतिरिक्त एकता के कुछ और भी कारण थे जिनमें से दो ऊपर कहे जा चुके हैं। एक तो अनेक प्रश्न पूछने के लिये सब प्रान्तों के लोगों का डेल्फी में आना, और दूसरे खेलों में सम्मिलित होने के लिये ऑलिम्पिया के मन्दिर में सब प्रान्तों के लोगों का जमा होना।

इन कारणों से इन लोगों में थोड़ी बहुत भिन्नता होते हुए भी समानता बहुत अधिक रही। यूनान के पास ही के देशों में निरंकुश राजसत्ता, मनुष्य-बलि, बहु-विवाह, अंगविच्छेद, बाल-विक्रय आदि अनेक ऐसी प्रथायें प्रचलित थीं जो यूनान के किसी भी देश में नहीं पाई जाती थीं, परन्तु काल के प्रभाव से कुछ ही समय में ये एकता के भाव राजनैतिक कारणों से दूर होते गये और सब रियासतों में द्वेष तथा कलह फैल गया जिसका स्वाभाविक परिणाम भी यही हुआ कि यूनान की स्वतंत्रता नष्ट हो गयी और रोम के लोगों ने उसे अपने प्रसिद्ध रोमन साम्राज्य का एक प्रान्त बना लिया।

चौथा अध्याय

यूनानी उपनिवेश तथा रियासतें

इस देश का प्रत्येक भाग समुद्र के समीप होने के कारण यूनानी लोग कुशल तथा साहसी मल्लाह हो गये, और इधर उधर जहाँ कहीं उन्हें अच्छी भूमि दिखलाई दी, वहीं बस गये। सबसे पहले उपनिवेश एशिया माइनर में बसाये गये, फिर इटली सिसली, भूमध्यसागर का तट, स्पेन, अफ्रिका, थ्रेस, मेसिडोनिया आदि अनेक स्थानों पर इन्होंने अपने उपनिवेश स्थापित किये। यूनानी सदा स्वतंत्र रहना पसन्द करते थे, अतः ये उपनिवेश भी मातृभूमि से प्रायः बिलकुल स्वतन्त्र ही थे।

यूनान देश पहाड़ों से घिरा है, उनके बीच में जहाँ कहीं थोड़ा बहुत मैदान मिला, वहीं इन लोगों ने बस्तियाँ बसा लीं जो बीच में आ जाने के कारण एक दूसरे से असम्बद्ध तथा स्वतंत्र थीं। इस भाँति प्रत्येक नगर एक स्वतन्त्र राज्य समझा जाता था और उसकी शासन-व्यवस्था भी भिन्न थी। इतना ही नहीं वरन सेना, सिक्के आदि अनेक बातों में भिन्नता थी। इस समय तक वहाँ चुनाव की प्रथा न थी। किसी महत्वपूर्ण विषय का निर्णय करने के लिये सब लोग एक स्थान पर इकट्ठे होकर बहस करते तथा निश्चय करते थे।

इन लोगों में डोरियन तथा आयोनियन, ये दो जातियाँ प्रधान थीं। उत्तर के डोरियन लोग अधिक बलवान तथा लड़ाके

थे और स्पार्टा उनकी मुख्य रियासत थी। आयोनियन लोगों की प्रधान बस्तियाँ ईजियन सागर तथा एशिया माइनर में थीं। वे लोग अधिक शिक्षित, व्यापारी तथा कला-निपुण थे। अथेन्स इनमें सबसे बड़ी रियासत थी।

स्पार्टा के लोग अधिक बलवान थे। वे कुश्ती लड़ना, हथियार चलाना आदि खेल बहुत पसन्द करते थे। किन्तु साहित्य तथा कलाओं की ओर उनका बहुत कम ध्यान था। वे अपने बच्चों को आरम्भ से ही निडर होने और कठिनाइयाँ झेलने का अभ्यास कराते थे जिससे कि युद्ध में वे बिलकुल न डरें। यदि बच्चा निर्बल होता तो उसको माता पिता छोड़ देते थे और वह बेचारा शीघ्र ही मर जाता था। शेष बच्चों की हिम्मत की परीक्षा के लिये उन्हें देवी की वेदी पर बिठा कर कोड़ों से खूब पीटा जाता था, यहाँ तक कि उनके शरीर से स्थान २ से रक्त बहने लगता था। उन्हें कई दिन तक भूखा प्यासा रहना भी सिखाया जाता था, जिस से युद्ध में ऐसे अवसरों पर वे घबड़ा न जायँ। स्त्रियाँ भी इसी भाँति दौड़ लगातीं, कुश्ती लड़तीं और अनेक व्यायाम करती थीं। बीस वर्ष की उम्र में उनका ब्याह प्रायः तीस वर्ष के पुरुषों के साथ किया जाता था। इस भाँति सन्तान भी बलवान होती थी और युद्ध के समय ये वीर मातायें अपने पुत्रों को उत्साहित कर प्रसन्नता से युद्ध में भेजती थीं। इस प्रकार कुछ ही दिनों में अपनी वीरता तथा शक्ति से स्पार्टा सब राज्यों में प्रधान हो गया।

स्पार्टा की राज्य-व्यवस्था भी भिन्न थी। राजा की सहायता के लिये एक कौंसिल तथा जनता की एक बड़ी सभा रहती थी। कौंसिल में केवल पाँच ही सदस्य होते थे, जिन्हें

देशी तथा विदेशी झगड़ों का निर्णय करने का पूरा अधिकार था। एक प्रकार से ये सदस्य मेम्बर ही वहाँ के राजा थे।

केवल स्पार्टा में ही अन्त समय तक राजप्रथा स्थापित रही, शेष प्रायः सब रियासतों में भिन्न २ प्रकार की 'अल्पजन सत्तायें' (ओलीगार्कीज़) स्थापित हुईं। कुछ दिन पीछे इनका स्थान 'टायरेन्स' (अनुत्तरदायी अथवा निरंकुश शासकों) को मिला जो धीरे २ अत्याचारी बनने के कारण अप्रिय होते गये। इनमें पैथेगोरस अधिक प्रसिद्ध है।

यूनान का दक्षिणी भाग एटिका कहलाता था। इसके बारह स्वतंत्र भाग थे जिनमें अथेन्स मुख्य था। थिसीयस ने इन सब को एक में मिलाकर अथेन्स के अधीन किया। अतः वह राष्ट्रीय वीर माना जाता है और उसके विषय में अनेक कथाएँ अब तक प्रचलित हैं।

अथेन्स का सुंदर नगर एक्रोपोलिस पहाड़ी पर बसा हुआ है और वहाँ अथेनी देवी का प्रसिद्ध मन्दिर है। यहाँ पर पहले पहल ६२१ ईसवी के पूर्व के प्रचलित कानूनों का एक ग्रन्थ तयार किया गया।

अथेन्स में वस्तुतः शक्ति सरदारों के हाथ में थी और ये लोकप्रिय नहीं थे। बुद्धिमान सोलन ने इस प्रथा का विरोध किया और कहा कि राज्य कार्य में जनता का भी हाथ होना चाहिये। यही अथेन्स की लोकप्रिय राज्य व्यवस्था का संस्थापक समझा जाता है। शेष कई रियासतों ने भी उसका अनुकरण किया और वहाँ भी जनता को अधिक अधिकार मिलते गये। सोलन ने वहाँ की दीन जनता के बहुत से दुखों को दूर किया, उन्हें ऋण से मुक्त

कराया, शिक्षित बनाया तथा अन्य कई सुधार किये। अथेन्स अपनी विद्या तथा सभ्यता के लिये प्रसिद्ध रहा।

स्पार्टा के दक्षिण में यूनान की तीसरी बड़ी रियासत कोरिन्थ थी। इसका अधिकांश भाग जल के पास होने के कारण यहाँ की व्यापारिक अवस्था बहुत अच्छी थी तथा यह रियासत अपने धन, विलास और व्यापार के लिये प्रसिद्ध थी। यहाँ पर पहले राज-तंत्र था, फिर सरदारों का प्रभुत्व हुआ। उसके बाद निरंकुश राज्य (टायरेन्ट्स) स्थापित हुआ और फिर अथेन्स की भाँति यहाँ भी 'अल्पजन-शासन' स्थापित हुआ। अथेन्स से इसकी सदा शत्रुता रहती थी।

कोरिन्थ के दक्षिण-पूर्व में आर्गस नाम की चौथी रिया-सत थी। इन्हीं चार रियासतों का इतिहास यूनान का इतिहास है। यहाँ के भग्नावशेष अब तक उस प्राचीन महत्व का पता देते हैं। आर्गस और स्पार्टा में भी परस्पर बड़ी शत्रुता रहती थी।

इन चार प्रधान रियासतों के अतिरिक्त कुछ छोटी मोटी रियासतें भी थीं जिनमें थीब्स रियासत कुछ काल में अपनी युद्ध-नीति और राजनीति के कारण प्रसिद्ध हो गई और कुछ काल तक यूनान में यही रियासत प्रधान भी रही।

मेगेरा रियासत भी किसी समय में व्यापार में अथेन्स और कोरिन्थ की बराबरी करती थी, तथा बहुत से उपनिवेशों की मातृ-भूमि थी, परन्तु इस समय यह एक साधारण अप्रसिद्ध गाँव है।

इस भाँति ५०० ईसवी पूर्व के लगभग यूनान साहसी और उन्नतिशील लोगों से भरा हुआ था जो साहित्य तथा कलाओं में खोज तथा सुधार का कार्य कर रहे थे और जिस पर यूरोपीय सभ्यता

की भव्य इमारत खड़ी हुई। छोटी छोटी स्वतंत्र रियासतों में बटे रहने के कारण उनमें राजनीति, कला, वेदान्त आदि के विचारों में प्रतिद्वंद्विता रहती थी जिससे उनकी बहुत कुछ उन्नति हुई। इस भाँति यूनान देश विस्तार में बहुत नन्हासा होने पर भी बहुत महत्व-पूर्ण है तथा यूरोप का विद्यागुरु है।

इन रियासतों के स्वतंत्र तथा प्रतिद्वन्द्वी होने से अनेक लाभ होने के साथ ही हानि भी कम न थी। जब कोई बाहरी शत्रु उनके देश पर दृष्टि लगाता तो उनकी स्वतंत्रता के लिये भारी भय रहता था। अकस्मात् शीघ्र ही ऐसा समय भी आ उपस्थित हुआ जिसका वर्णन हम आगे करेंगे।

पाँचवाँ अध्याय

फारस से युद्ध

यूरोपीय सभ्यता के तीन मूल आधार हैं—यूनानी विचार, रोमन राजनियम (कानून) और ईसाई धर्म की पूजा विधि तथा उसके नैतिक नियम। इन विचारों के विरोधी सीरिया (शाम) तथा अरब से आये। ये आने वाले लोग बड़े भयंकर थे, क्योंकि ये क्रूर तथा अन्य धर्मावलम्बी भी थे। इस भाँति इन पूर्व से आनेवालों तथा यूनानी लोगों में सदियों तक युद्ध होते रहे। इन युद्धों के प्रायः तीन विभाग किये जाते हैं। पहला यूनान तथा फारस में युद्ध जो साइरस के समय में सिकन्दर महान की विजय

तक रुक रुक कर चलता रहा (५५९-३३१ ईस्वी-पूर्व), दूसरा मुसलमानों और ईसाइयों में युद्ध जिसका आरम्भ मुसलमानों के यूरोप पर आक्रमण करने से हुआ और जिसमें मुसलमान लोग कुस्तुन्तुनियाँ (७१८ ई०) तथा टोर्स (७३२ ई०) में हराये गये, तथा तीसरा तुर्कों के विरुद्ध धर्मयुद्ध (क्रूसेड) जो चौदहवीं तथा पन्द्रवीं शताब्दी तक चलता रहा ।

इनमें पहिला युद्ध सब से भयंकर था क्योंकि उस समय तक यूरोपीय सभ्यता का प्रचार नहीं हुआ था और उसका सर्वथा नष्ट हो जाना बहुत सम्भव था ।

इस समय (छठवीं शताब्दी ईस्वी पूर्व) यूफ्रेटीज नदी की घाटी में असीरिया का साम्राज्य स्थापित हो गया था, जिसने पश्चिमी एशिया पर तीन सौ वर्ष तक प्रभुत्व स्थापित रखा । परन्तु उत्तर के आक्रमणकारियों ने आकर उसके खण्ड खण्ड कर दिये जिनमें एशिया माइनर में लीडिया, मीडिया, बेबीलन और मिश्र प्रधान थे।

५५९ ईस्वी-पूर्व में फारस के राजा साइरस ने मीडिया और लीडिया को जीत लिया । कई नगरों के लोग बड़ी वीरता से लड़े । जेन्थस नामक एक नगर के लोगों ने अपनी औरतों को जला दिया और फिर एक २ करके राजपूतों के समान युद्ध में अपने प्राण दे दिये । साइरस ने शीघ्र ही एशिया माइनर, बेबीलन तथा मिश्र को भी जीत कर अपने राज्य में मिला लिया । इसके मरने पर देश जीतने का क्रम जारी रहा । यहाँ तक कि उस समय की ज्ञात दुनिया में फारस ही सबसे अधिक शक्तिमान हो गया ।

५२१ ई० में पूर्व में दारा (डेरियस) फारस का राजा हुआ। दस वर्ष बाद उसने एक बड़ी जल-सेना लेकर ग्रीशिया पर आक्र-

मण किया और डान्यूब नदी पर नावों का पुल बाँध दिया। उस पुल पर वह स्वयं कुछ साथियों के साथ सबसे पहले चढ़ा और अपने अनुयायी एशिया के यूनानियों से कह गया कि "मैं सीथिया पर आक्रमण करने जाता हूँ। यदि साठ दिन के भीतर मैं लौट कर न आऊँ तो तुम मुझे मरा जान पुल तोड़ देना और अपने देश को लौट जाना।" साठ दिन हो गये, परन्तु दारा न लौटा। और कुछ दिन ठहरने पर उन्होंने यह समाचार सुना कि दारा भागा हुआ आ रहा है क्योंकि शत्रुओं ने उसके थोड़े से आदमियों को हरा कर उसका पीछा किया था। अब पुल के बँधे रहने ही में दारा की कुशल थी; अन्यथा वह शत्रुओं के हाथ पड़ जाता। कुछ लोगों ने उसके अनुयायी यूनानियों को सलाह दी कि पुल तोड़ दो, क्योंकि दारा यूनान का शत्रु है और तुम यूनानी होकर उसकी सहायता करके अपनी प्राचीन मातृ-भूमि के प्रति अन्याय कर रहे हो। परन्तु उन लोगों ने ये बातें न सुनीं, पुल बँधा रहा और दारा उस पर से होकर अपने देश में आ गया।

अब दारा ने यूरोप-विजय का विचार किया और कुछ सैनिक अफसरों को एक अच्छी सेना सहित वहाँ भेजा। थ्रेस और मेसिडोनिया शीघ्र ही उसके अधीन हो गये। इसी समय आयोना आदि कई प्रान्तों में फारस के विरुद्ध विद्रोह फैल गया और अथेन्स के लोगों ने फारस के एक प्रसिद्ध नगर सारडिस को आग लगा कर उसे भस्म कर दिया।

इस समाचार को सुन कर दारा क्रोध से भर गया और आकाश की ओर उसने एक बाण चला कर कहा—"परमेश्वर इन अथीनियनों (अथेन्सवालों) से बदला लेने की शक्ति मुझे

दो ।" फिर उसने एक नौकर को इस बात पर नियत कर दिया कि वह प्रति दिन भोजन करते समय उस से कहा करे कि 'सरकार ! अथीनियनों को याद रखिये !'

कुछ दिन बाद उसने एक जल-सेना लेकर अथेन्स पर आक्रमण किया, परन्तु वह नष्ट हो गई। दो वर्ष बाद (४९० ईस्वी पूर्व) उसने दूसरी सेना भेजी जिसने डेलोस, आरेट्रिया आदि ले लिये और मेरेथन स्थान तक पहुँच गई; परन्तु इसी समय भयभीत अथीनियनों को प्रेटिया के वीर निवासियों की अचानक सहायता मिल गई। यूनानी जनरल मिल्टियाडस ने बड़ी देर के बाद फारसी सेना को बुरी तरह हरा दिया और वे लोग बची हुई सेना लेकर अपने देश को लौट गये। इस युद्ध में फारस के कुल ६४०० सैनिक मारे गये, परन्तु अथेन्स के केवल १९२ ।

इस पराजय से दारा और भी क्रुद्ध हुआ और उसने अपने साम्राज्य के सब लोगों को स्वयं नेतृत्व में यूनान ले जाने का विचार किया और बड़ी तैयारी में कई वर्ष लगा दिये, परन्तु इसी बीच में ४८५ ईस्वी पूर्व में उसकी मृत्यु हो गई।

अथेन्सवालों को मेरेथन की विजय से बड़ा गर्व हुआ। वे कवियों तथा भाटों से उसका वर्णन सुनने से कभी थकते न थे। वास्तव में उनके लिये यह घमंड करने की बात थी, क्योंकि पहली ही बार वहाँ वालों ने केवल अपने बल से फारस की इतनी भारी सेना को हराया था और न केवल अथेन्स बल्कि समस्त यूरोप को फारस की अधीनता से बचा लिया।

दारा का पुत्र जरक्सीज फारस का राजा हुआ, परन्तु अथेन्स के सौभाग्य से वह अपने पिता के समान साहसी, निडर और

सैनिक न था। अतः यूनानियों को भविष्य में केवल एक निर्बल राजा का सामना करना था। जरकसीज अथेन्स से अधिक क्रुद्ध भी न था, परन्तु वह ऐसे लोगों से घिरा हुआ था जो प्रतिक्षण अथेन्स पर आक्रमण करने को उससे कहते थे। इस भाँति जहाजों और पैदलों की एक बड़ी सेना इकट्ठी करके अथेन्स पर आक्रमण करने को फिर तैयार हुई जिससे मेरेथन के अपमान की पुनरावृत्ति न हो। युद्ध आरम्भ हुआ। इसका वर्णन यूरोप के सब से पहिले इतिहास-लेखक हेरोडोटस ने किया है जो उस समय वर्तमान था। उसने यथासंभव सच्चाई से काम लिया है। परन्तु फिर भी उसके इतिहास में कहीं २ अयुक्तियाँ और अतिशयोक्तियाँ आदि हैं। उसके अनुसार फारसी सेना पचास लाख थी जिसने हेली-स्पन्त मुहाना पार करके यूरोप में पदार्पण किया और जरकसीज के नेतृत्व में थ्रेस और मेसिडोनिया में प्रवेश किया।

यूनानी रियासतों में आर्गस नाम की रियासत अब तक अलग थी। थीब्स रियासत द्वेषवश अथेन्स को हराने की इच्छा से फारस से मिल गई। इस भाँति केवल दो रियासतें अथेन्स और स्पार्टा फारसवालों के मुकाबले के लिये रह गयीं। इस समय अथेन्स के पास एक बड़ी जलसेना थी जिसे वहाँ के जनरल थेमिस्टोक्लीस ने अपने प्रतिद्वन्दी एरिस्टाइडीज के विरोध करते रहने पर भी तैयार किया था। अथेन्स ने बुद्धिमानी से स्पार्टा का नेतृत्व स्वीकार करके अपनी सेना उसकी सेना से मिला दी और फिर जरकसीज को रोकने के लिये कुछ सेना आगे भेजी गयी। जरकसीज ने उनसे कहला भेजा कि अपने हथियार रख दो। उत्तर मिला की जरकसीज स्वयं आकर हथियार रखवा ले। यह

सुनकर फारसी सेना क्रोध से आगे बढ़ी । । यूनानी सेना ने थर्मोपोली (उष्ण-द्वार) मुहाने पर लड़ना पसन्द किया, क्योंकि उसकी दोनों ओर ऊँचे पहाड़ इतने पास आ गये हैं कि उनके बीच में केवल एक जहाज़ के निकलने का रास्ता है । यूनानी सेनायें बड़ी वीरता से लड़ीं । ज़रक्सीज़ को कई बार भारी निराशा हुई परन्तु एक भेदिये ने यूनानी सेना को घेरने का एक नया रास्ता बता दिया। फ़ारसी सेना अकस्मात् वहाँ पहुँच गई और यूनानी लोग वीरता से लड़ते हुए एक एक करके मारे गये, जिनमें स्पार्टा का राजा भी था । अब फारसी सेना आगे बढ़ आई । अथेन्स वालों को अपना नगर खाली कर देना पड़ा और उन्हें अपनी पूर्ण पराजय होती मालूम हुई । परन्तु थोड़े ही काल में जलसेना ने अपना प्रभाव दिखाकर रंग बदल दिया । भागते हुओं को हिम्मत बँधाने और रोकने के लिये थेमिस्टोक्लीज़ एक नयी सेना के साथ आगे बढ़ा। फिर भारी युद्ध हुआ। फ़ारसी सेना बहुत बड़ी थी और उसे अपनी विजय में विश्वास भी था, परन्तु उसे ऐसी तंग खाड़ियों में लड़ने का अनुभव नहीं था जैसा कि यूनानियों को था । इसलिये संख्या में बहुत अधिक होते हुए भी फारसी लोग बुरी तरह हार गये ।

यूनान के लिये यह भी बड़ी भारी विजय हुई । यूनान की स्वतंत्रता तथा यूरोप की सभ्यता नष्ट होते २ पुनः बच गई । यदि ज़रक्सीज़ हिम्मतवाला होता तो इस परिणाम को बदल सकता था क्योंकि अब भी उसकी स्थल और जलसेना बहुत अधिक थी, परन्तु हार होते ही वह सब सेना छोड़ कर फारस भाग गया । सेना उत्साहहीन हो गई । अतः दूसरे वर्ष (४७९ ईस्वी पूर्व)

यूनानियों की एक बड़ी सेना ने फिर उसे प्लेटी स्थान पर हरा दिया और आगे बढ़ कर एशिया माइनर में एक बार फिर हरा कर फारसी सेना की निर्बलता प्रमाणित कर दी। इन युद्धों में फारस के कई सौ जहाज नष्ट हो गये तथा अगणित मनुष्य मारे गये।

छठाँ अध्याय

अथेन्स का उदय

इन युद्धों से यूनानियों को फारस के प्रभुत्व का तो बिलकुल भय नहीं रहा, परन्तु यूनान को अपना सम्मान बढ़ाने और भविष्य की चिन्ता को दूर करने के लिये यह आवश्यक था कि फारस-वालों को उन स्थानों से भी भगा दिया जाय जो यूनान के पड़ोस में ही अब तक फारस के अधीन थे—यथा साइप्रस द्वीप, बैज-न्टाइम आदि नगर और थ्रेस के कई स्थान। इस विचार से पचास जहाजों का एक बेड़ा तैयार किया गया, जिसमें तीस जहाज अथेन्स के थे; परन्तु अथेन्स ने उस बेड़े का नेता स्पार्टा के अधि-कारी पौसेनियस को बनाया। इस सेना ने साइप्रस के सब यूनानी शहर फारसवालों से छीन कर बास्फोरस मुहाना पार करके बैज-न्टाइम नगर पर घेरा डाला और कुछ समय में उसे भी ले लिया। पौसेनियस को अब बड़ा गर्व हुआ। प्लेटी स्थान पर भी उसी ने फारसवालों को हराया था। अतः अब वह अपने को बहुत बड़ा

आदमी समझने लगा। उसने विचार किया कि अब फारस से मिल कर समस्त यूनान का राजा बनाना चाहिये। इस विचार से उसने बैजन्टाइम में कैद किये हुए बहुत से फारस के सैनिकों को तथा एक दूत को जरक्सीज के पास भेजा कि यदि तुम पसन्द करो तो हम तुम मिल कर समस्त यूनान के मालिक हो सकते हैं। जरक्सीज ने यह पत्र पाकर बड़े हर्ष से उत्तर दिया कि अवश्य तुम अपनी युक्ति कार्यान्वित करो। जितना रुपया अथवा जितनी सेना की तुम्हें आवश्यकता होगी, मैं दूँगा। अब पौसेनियस यही समझने लगा कि वह भी फारस के राजा के बराबर है। अतः वह भी फारसी पोशाक पहनने लगा और उसी शान से रहने लगा। उसका यह व्यवहार यूनानियों से छिप न सका। उन्होंने उसकी जगह लेने के लिए दूसरे मनुष्य को भेजा, जिसे आते ही पता लगा कि पौसेनियस के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर यूनानी सेना ने स्पार्टा का नेतृत्व छीन कर अथेन्स को नेता बनाया है और स्पार्टा की सेना अथेन्स के नेतृत्व में काम करना स्वीकार न करके अपने देश को लौट गई है। अतः वह भी लौट गया और इस भाँति अथेन्स का उदय आरम्भ हुआ।

अब इस सेना का नाम 'डेलोस संघ' रखा गया और एरिस्टाइडीज उसका नेता हुआ जो अपने न्याय तथा सौजन्य के कारण 'न्यायी' कहलाता था। इस संघ में ऐसी अनेक रियासतें सम्मिलित हो गईं जो फारस से डरती थीं और जो अथेन्स की जल-सेना को अपने प्राण-रक्षण के लिये पर्याप्त समझती थीं। इस संघ का उद्देश फारस की वृद्धि को रोकना, उसके अधिकार से यूनानी नगरों को छुड़ाना और ईजियन सागर में शान्ति रखना था।

प्रति वर्ष वसन्त में इसके सभासदों की डेलोस में एक सभा होती थी जिसमें आगे के कार्यक्रम पर विचार किया जाता था। धीरे धीरे यही संघ अथीनियन साम्राज्य में परिणत हो गया और शेष रियासतों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।

एरिस्टाइडीज के मरने पर साइमन इस संघ का प्रधान नियत हुआ। यह भी बड़ा वीर और चतुर था उसने कई स्थानों पर अधिकार जमाया था। ४७० ई० पूर्व में उसने स्काइरस द्वीप भी ले लिया।

अथेन्स की उन्नति की श्रेय प्रायः दो ही पुरुषों को है जो आपस में प्रतिद्वन्द्वी तथा विरोधी थे। एरिस्टाइडीज के प्रयत्न से 'डेलोस संघ' की स्थापना हुई जिससे अथेन्स को प्रधानता मिली और थेमिस्टोक्लीज ने उसमें आन्तरिक सुधार करके उसे शक्तिमान बनाया। पहले उसने अथेन्स को फिर से बनवाना और उसके चारों ओर एक दृढ़ दीवाल बनाना आरम्भ किया। स्पार्टा तथा अन्य कई रियासतें अथेन्स की इस उन्नति को देख डर रही थीं परन्तु स्पार्टा अथेन्स को अपनी उन्नति करने से मना नहीं कर सकता था। अतः उसने युक्तिपूर्वक अथेन्स से कहा कि तुम यह दीवाल और किले आदि न बनवाओ क्योंकि यदि अबकी बार फारस वालों ने आक्रमण किया तो उन्हें इनसे बहुत सहायता मिलेगी। परन्तु थेमिस्टोक्लीज सरीखे बुद्धिमान् राजनीतिज्ञ को ऐसी बातों में बहकाना सहज न था। वह युक्तिपूर्वक अपना सब काम करता रहा। उसने वहाँ की स्थल तथा जल सेना को खूब बढ़ाया और फिर व्यापार की भी वृद्धि की, जिससे थोड़े ही काल में अथेन्स बहुत शक्तिमान् हो गया।

परन्तु थेमिस्टोक्लीज़ बहुत घमण्डी हो गया था। वह सदा अपनी देश-सेवा की प्रशंसा किया करता था। कुछ दिन बाद पौसेनियस की मृत्यु पर कुछ ऐसे भी पत्र मिले जिनसे प्रकट होता था कि थेमिस्टोक्लीज़ भी फारस के साथ गुप्त बातचीत में लगा हुआ था। इस अपराध पर उसे देशनिकाला दे दिया गया।

४६६ ईस्वी पूर्व में फिर फारस के साथ युद्ध आरम्भ हुआ। साइमन ने एक सेना एशिया माइनर में ले जा कर कई स्थान ले लिये। फारसवालों ने यूरीमेडन नदी के संगम पर पड़ाव डाला। साइमन ने पहले फ़ारसी बेड़े को हरा कर फिर स्थल सेना को भी भगा दिया और फिर उन ८० जहाज़ों पर टूट पड़ा जो फारस की सहायता के लिये आ रहे थे और उन्हें नष्ट कर दिया। इस विजय से साइमन की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी।

४६५ ई० पू० में स्पार्टा में एक बड़ा भूकम्प हुआ जिसमें वहाँ के बीस हज़ार मनुष्य मर गये और सारा नगर नष्ट हो गया। शीघ्र ही वहीं के कुछ लोगों ने विद्रोह कर दिया जिसके कारण स्पार्टा को अपने कई मित्रों से तथा अथेन्स से भी सहायता की प्रार्थना करनी पड़ी। अथेन्स के लोगों ने सहायता देने से इनकार किया, परन्तु साइमन स्पार्टावालों का प्रशंसक था। वह जानता था कि उन्होंने मदद देकर फारसवालों को हराया था। अतः उसने देशवासियों से अपील की कि यूनान का एक पैर टूटने मत दो। अपने प्रभाव के कारण वह स्पार्टा को सहायता भिजवाने में सफल हुआ, परन्तु यह सेना विद्रोह को दबा न सकी। अतः स्पार्टावालों को सन्देह हुआ कि ये भी विद्रोहियों से मिले हुए हैं। फलतः उन्होंने और सब मित्रों की सेनायें रख कर अथेन्सवालों से स्पष्ट

कह दिया कि अब तुम्हारी आवश्यकता नहीं है। साइमन इस भाँति अपमानित होकर स्वदेश को लौटा। इससे एकदम उसका सब प्रभाव नष्ट हो गया। वहाँ के अनेक लोग आरम्भ से ही इसके विरोधी थे। अब अवसर पाकर उन्होंने साइमन को अलग कर दिया और नयी शासन-व्यवस्था तैयार की, जिसके अनुसार पाँच सौ प्रतिनिधियों की एक सभा बनाई गई और पेरिक्लीज उसका प्रधान हुआ। साइमन पर दोष लगा कर उसे दस वर्ष के लिये देश से निर्वासित किया, परन्तु इन परिवर्तनों से वहाँ भी द्वेष फैल गया और कई दल उत्पन्न हो गये तथा कुछ लोग मारे भी गये।

इस भाँति ४६१ ई० पूर्व से पेरिक्लीज का समय आरम्भ होता है जो यूनान के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध तथा महत्वपूर्ण है। इसकी नीति साइमन से प्रायः प्रत्येक बात में विरुद्ध थी। इसका उद्देश अथेन्स को यूनान में सर्वप्रधान बनाना था। पेरिक्लीज अद्वितीय वक्ता समझा जाता था और इसी ने सब से पहले अपने व्याख्यानों को लेखबद्ध किया था।

उधर फारस से अब तक युद्ध चल ही रहा था। ४६० ई० पूर्व में मिश्र में एक भारी लड़ाई हुई जिसमें अथेन्स की स्थल तथा जलसेना बिलकुल नष्ट कर दी गई। इसी समय कोरिन्थ आदि कई रियासतों ने द्वेश के कारण अथेन्स पर आक्रमण किया, परन्तु वे हरा दिये गये।

अब तक स्पार्टा अथेन्स की विजयों को बड़े ध्यान से देख रहा था। अब उसने भी अथेन्स की वृद्धि रोकने का प्रयत्न किया। पहले उसने गुप्त रीति से थीब्स की सहायता की, जो अथेन्स का

शत्रु था। फिर खुला युद्ध होने लगा। ४५७ ई० पूर्व में टेनेग्रा स्थान पर एक बड़ा युद्ध हुआ जिसमें स्पार्टा दल की विजय हुई, परन्तु दो महीने बाद अथेन्स ने शत्रुओं को फिर हरा दिया और साइ-मन भी देश में बुला लिया गया।

इस भाँति ४५५ ईस्वी पूर्व में कारिन्थ की खाड़ी से लगा कर थर्मापोली मुहाने तक अथेन्स का ही प्रभुत्व हो गया। और कई रियासतें अथेन्स से मिल गईं और स्पार्टा ने भी ४५० ई० पू० में सन्धि कर ली। दूसरे वर्ष एक सम्मिलित जल-सेना फारस के विरुद्ध मिश्र में भेजी गई, जिसका अफसर साइमन था। जब यह सेना साइप्रस पर घेरा डाल रही थी तो युद्ध में साइमन मारा गया परन्तु उसकी सेना जीत गई। सेना को युद्ध की इच्छा न रहने से वह अथेन्स लौट आई।

इसके एक वर्ष बाद ही फारस ने सन्धि कर ली, जिसके अनुसार उसने एशिया माइनर में बसे हुए यूनानी उपनिवेशों को तंग करना अथवा उनसे कर लेना छोड़ दिया और आगे ईजियन सागर में अपनी सेना न भेजने का भी वादा किया। बदले में यूना-नियों ने साइप्रस और मिश्र को फारस के अधिकार में रहने दिया।

परन्तु यूनान पर फारस के इस भाँति अलग हो जाने का बुरा प्रभाव पड़ा। डेलोस संघ की रियासतें अब मेल की आवश्य-कता न समझ कर अथेन्स से उदासीन होने लगीं। ४४८ ई० पूर्व तक अथेन्स सब रियासतों को दबाए हुए था और सब ने उसकी अधिनता स्वीकार भी कर ली थी। अतः यही वर्ष अथेन्स की उन्नति

की चरम सीमा का है, इसके बाद द्वेष तथा गृह-कलह फिर उत्पन्न हो गया।

४४६ ई० पूर्व में बोटिया प्रान्त में—जिसे अथेन्स ने जीत-कर और राज्य व्यवस्था बदल कर अपने में मिला लिया था—क्रान्ति हुई। अथेन्स के धन-जन की भारी हानि हुई और उसका आधिपत्य वहाँ से उठ गया। शीघ्र ही यूबोआ और मेगेरा में विद्रोह हुए और इसके बाद ही स्पार्टा ने भी बड़े दलबल के साथ अथेन्स पर आक्रमण की तैयारी कर दी। पृथ्वी पर निर्बल होने के कारण अब अथीनियन साम्राज्य अस्त होता मालूम पड़ा और उसे स्पार्टा से तीस वर्ष के लिये सन्धि करनी पड़ी (४४५ ई० पूर्व) जिसके अनुसार उसे पोलोपोनीसस प्रान्त के जीते हुए सब भाग लौटा देने पड़े।

सातवाँ अध्याय

पेरिक्लीज़ के समय में यूनान की दशा

अथेन्स यूनान का शिक्षालय कहलाता है, अर्थात् अथेन्स की सभ्यता का ही यूनान में प्रचार हुआ। इसी भाँति यूनान भी यूरोप का शिक्षालय रहा।

अथेन्स की जनसंख्या उस समय ५०,००० थी। इसके अति-रिक्त बहुत से बाहर से आये हुए व्यापारी और दूसरे लोग भी

थे जिनको नागरिक होने का अधिकार नहीं था तथा कुछ दास भी थे जिनपर उनके मालिकों का पूरा अधिकार था। तनिक भी अनुचित व्यवहार अथवा ग़लती करने पर ये लोग लारियम की खानों में काम करने के लिये भेज दिये जाते थे, जहाँ प्रायः वे मर जाते थे। फिर भी अथेन्सवाले शेष यूनानियों से अधिक दयावान थे। उनके दासों की कोई अलग पोशाक नहीं होती थी और वे मालिक के कुटुम्बी ही समझे जाते थे। परन्तु स्पार्टावाले बड़े क्रूर थे। यहाँ से खानों में काम करने के लिये बहुत से दास भेजे जाते थे और अथेन्स से बहुत कम। इसका परिणाम यह हुआ कि अथेन्स में दासों ने कभी विद्रोह नहीं किया, बल्कि युद्ध में उनकी सहायता की।

अथेन्स की स्त्रियाँ समाज से अलग समझी जाती थीं। इसे पूर्वी देशों के संसर्ग का प्रभाव बतलाया जाता है। वे अलग घरों में बन्द रहती थीं और उनकी शिक्षा पर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया जाता था।

अथेन्स की शासन-व्यवस्था प्रजा-सत्तात्मक (डेमोक्रेटिक) थी अर्थात् वहाँ के सब नागरिक जो चाहते थे कर सकते थे। वे प्रायः एक मास बाद अथवा आवश्यकतानुसार इकट्ठे हुआ करते थे और युद्ध, सन्धि, कर, अधिकारियों की नियुक्ति, न्याय, नियम आदि बातों पर विचार किया करते थे। इतिहास में जन-समूह को कहीं भी ऐसे अधिकार नहीं दिये गये हैं।

कार्य-समिति के लिये सर्व-सम्मति से दस जनरल चुने जाते थे। इनका पद बराबर होता था अर्थात् इनमें कोई महामंत्री आदि न था। इनके अधीन बहुत से अधिकारी होते थे, जो बहुमत

के अनुसार नियुक्त किये जाते थे। अनेक बार ऐसे पद अयोग्य मनुष्यों को मिल जाते थे, परन्तु इस प्रथा द्वारा लाभ यह था कि सब लोगों में बराबरी रहती थी और कोई मनुष्य विशेष जाति अथवा दल का होने के कारण गर्व नहीं कर सकता था, न कुछ विशेषाधिकार माँग सकता था। इन्हीं छोटे अधिकारियों में से पाँच सौ की एक सभा होती थी जो दस जनरलों के कार्य में सहायता पहुँचाती थी।

पेरिक्लीज़ के समय में (४४५-४३१ ई० पूर्व) अथेन्स की युद्ध-नीति तथा गृह-नीति बहुत सफल रही। पेरिक्लीज़ उच्च वंश का होने पर भी साधारण लोगों में मिल गया था। वह कवियों, तत्वज्ञानियों, शिल्पियों और अन्य कलाविदों का मित्र था। वह १५ वर्ष तक जनरल रहा, यद्यपि वह प्रधान मंत्री नहीं था; क्योंकि उसकी बराबरी के नौ मनुष्य और थे। फिर भी उस पर सब का विश्वास था। वे उसके कहने को सुनते थे, उसकी सलाह को मानते थे और उसके अनुसार कार्य करते थे। इस भाँति अथेन्स में उसका बहुत प्रभाव था। इसका कारण यह था कि उसका व्यक्तित्व प्रभावोत्पादक था। व्याख्यान में वह अद्वितीय था तथा दृढ़ता, राजनीतिज्ञता आदि कई गुण उसमें ऐसे थे जो कि एक नेता में होने चाहियें।

अथेन्स की महत्ता उसकी विजयों तथा उसके साम्राज्य-विस्तार में नहीं है; बल्कि उसकी बुद्धि, कलानिपुणता, सभ्यता आदि में है। उस समय भी वहाँ पर अनेक सुन्दर इमारतें बनी थीं जो उसकी शिल्पोन्नति का पता देती हैं। पार्थीयन नामक मन्दिर अब भी संसार की कलाओं में एक रत्न है। इसमें प्रसिद्ध शिल्पी

फीडियस की बनाई हुई अथेनी देवी की मूर्ति है। यह सोने और हाथी दाँत का बनी है और इसके मन्दिर के बाहर भी शिल्प का अच्छा काम है।

पेरिक्लीज ने अथेंस को यूनान की राजधानी और विद्यात कला का केन्द्र बना दिया, अनेक सुन्दर इमारतें बनवाकर उसकी शोभा को बहुत बढ़ा दिया और शिल्प, चित्रकला तथा यूनानी साहित्य का भी वही केन्द्र हो गया। नाटक का भी यहीं से यूरोप में प्रचार हुआ। अथेन्स के दक्षिण-पूर्वी भाग में डायोनीसान का नाटक-घर था जिसने यूरोप को धर्म और कलाएँ सिखाने में बहुत काम किया। नाटकों में प्रायः धार्मिक शिक्षण होता था, दृश्य साधारण होते थे और एक बार में चार से अधिक पात्र मंच पर नहीं आते थे। धार्मिक के अतिरिक्त सामाजिक और कुछ राजनीतिक भी नाटक खेले जाते थे जिससे जनता के जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ता था। पेरिक्लीज के समय में भी अच्छे २ नाटक खेले जाते थे। एस्चिलीस जो दुःखान्त नाटक लिखने में बहुत प्रसिद्ध है ५२५ ई. पू० में पैदा हुआ था और ४५६ ई. पू. में मरा। सोफोक्लीज कवि मेरेथन युद्ध से पाँच वर्ष पहिले (४९५ ई० पू०) पैदा हुआ था, यूरीपाइडीज ने साहित्यिक समालोचना पर अच्छे ग्रन्थ लिखे। स्त्रियों और दासों पर किये गये अत्याचारों का भी उसने वर्णन किया है। एरिस्टोफेनीज भी एक अच्छा नाटककार था। उसके नाटकों में कवित्व के उच्च विचारों का अच्छा दिग्दर्शन है। गद्य लेखकों में हेरोडोटस बहुत प्रसिद्ध है। यूरोप में इतिहास लिखने का आरम्भ इसीने किया। उसके लिखे हुए फारस युद्ध के इतिहास में यूनान के साथ २ फारस और मिश्र का भी वर्णन है। इसके

कुछ दिन बाद थूसीडाइडीज़ हुआ, जिसने पेलोपोनेशियन युद्ध (आगे का अध्याय देखिये) का वर्णन किया है। ये इतिहास बड़े उच्च कोटि के समझे जाते हैं। विज्ञान और तत्त्व-ज्ञान में भी इस समय यूनान ने बहुत कुछ उन्नति कर ली थी। सब से पहला भूमितिज्ञ थेल्स भी यहीं हुआ तथा कई तत्त्वज्ञानी भी इसी समय हुए। तत्त्वज्ञानियों में सब से अधिक प्रसिद्ध महात्मा सुकरात (सोक्रेटीज़) हुए, जो ४६९ ई० पू० में पैदा हुए और ३९९ ई० पू० में मार डाले गये। ये 'ज्ञान' के चाहनेवाले थे और उसीकी खोज में इधर उधर फिरा करते थे। अथेन्सवासियों ने उन्हें फटे पुराने कपड़े पहन नित्य नगर की गलियों में घूमते देखकर मूर्ख समझा था। वे प्रकृति तथा परमात्मा की आज्ञाओं को समझते थे। मृत्यु क्या है, यह भी वे जानते थे। उनके मत के अनुसार अथेन्सवासी सच्चे मार्ग पर नहीं चल रहे थे। अतः उन्होंने अपने देशवासियों को उपदेश देना चाहा; इसके लिये उन्होंने कोई अलग स्कूल नहीं खोला, बल्कि गली २ घूम कर अपने उपदेश सुनाते फिरे। नगर के बहुत से नवयुवक उनकी बातें तर्क-संगत तथा उचित देखकर उनके पीछे २ फिरने लगे। सुकरात उन्हें सद्गुण, साहस, पवित्रता आदि का महत्त्व समझाते थे। वे उनसे तथा अन्य नगरवासियों से पहले ऐसे विषयों की व्याख्या पूछते और उनके उत्तर देने पर उनकी गलतियाँ निकाल कर उनका अज्ञान सिद्ध करते। अतः नगरनिवासी उनसे बहुत अप्रसन्न थे। सच्चे महात्माओं को लोग उनके जीवन काल में बहुत कम समझ पाते हैं। आज समस्त संसार सुकरात को एक बड़ा वेदान्ती समझता है, परन्तु अथेन्सवासियों ने उन पर यह अभियोग लगाया कि वे हमारे नवयुवकों को धर्म-

भ्रष्ट करते हैं, हमारे देवी देवताओं की हँसी उड़ाते हैं, और नये २ देवताओं के नाम बताकर हमारे धार्मिक विश्वासों पर आघात पहुँचाते हैं। न्यायाधीशों ने उन्हें देश-द्रोही और धर्म-द्रोही समझ कर मृत्यु-दण्ड की आज्ञा दी। नियम के अनुसार यदि सुकरात चाहते तो मृत्यु के बदले देश-निष्कासन अथवा आजन्म कैद का प्रस्ताव कर सकते थे परन्तु उन्होंने देशवासियों के अज्ञान पर बलि हो जाना ही उचित समझा। कैद के समय एक मित्र ने वहाँ से निकल कर प्राण बचाने का भी मार्ग उन्हें बताया। परन्तु सुकरात मृत्यु से डरते थे न और उन्हें धर्म तथा कर्त्तव्य का भारी विचार था। अतः उन्होंने भागना पसन्द नहीं किया, और अनेक रोते हुए मित्रों के सामने हलाहल का प्याला पी कर इस लोक से प्रस्थान किया।

आठवाँ अध्याय

अथेन्स का पतन और पुनरुत्थान

पेलोपोनेशियन युद्ध

४४५ ई० पू० की अथेन्स और स्पार्टा की सन्धि का उद्देश्य यह था कि यूनान की सब रियासतों में मेल स्थापित हो जाय, परन्तु ऐसा न हो सका। यूनान में भी इसी समय से एक प्रकार का नियम जो आगे चलकर 'शक्तिसमता' (बेलेंस आफ पावर्स) कहलाया—चल रहा था। अर्थात् जब अन्य रियासतें किसी एक रियासत को विशेष बलवान देखतीं तो वे आपस में मिल जाती थीं।

इस भाँति जब अथेन्स एक शक्तिमान राज्य गिना जाने लगा, उसकी स्थल और जलसेना बहुत अधिक हो गई, तो स्पार्टा उससे जलने लगा। क्योंकि अब वह अथेन्स से छोटा समझा जाने लगा था। दूसरी ओर अथेन्स ने कोरिंथ को हराकर उसके व्यापार के मार्गों को बन्द करके अपना व्यापार बढ़ाया था। इससे कोरिंथ भी जल रहा था। इस भाँति जब इन रियासतों में द्वेष था तो कोरसिरा (जो अब कार्फू द्वीप कहलाता है) ने अथेन्स साम्राज्य में सम्मिलित होने की प्रार्थना की। यह कोरिंथ का बसाया उपनिवेश था। अतः कोरिंथ उसके आन्तरिक कार्यों में हस्तक्षेप करता था और वहाँ के अपराधियों को अपने यहाँ आश्रय देता था। इन बातों से अप्रसन्न होकर कोरसिरा ने लड़ाई करके कोरिंथ को हरा दिया, इस पर कोरिंथ ने एक बड़े युद्ध की तैयारी कर दी। यही देख कर कोरसिरा ने अथेन्स से मिल जाना उचित समझा और अथेन्स भी उसे सहायता देने को तैयार हो गया। तब कोरिंथ ने स्पार्टा से सहायता मांगी और स्पार्टा भी उसकी सहायता को तैयार हो गया। इस भाँति दो युद्ध चाहनेवाले दलों में शीघ्र ही (४३२ ई० पू०) युद्ध आरम्भ होगया जो पेलोपोनेशियन युद्ध कहलाता है।

इस युद्ध का वर्णन थूसीडाइडीज ने किया है, जो युद्ध में सम्मिलित था। कुछ जलयुद्धों में असफल होने के कारण अथेन्स ने उसे निकाल दिया था और वह शत्रुदल से जा मिला था। इस भाँति उसे दोनों ओर के पूरे समाचार मालूम रहते थे जिनका उसने निष्पक्षपातपूर्ण और अच्छे ढंग से वर्णन किया है। अतः उसका ग्रन्थ भी इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण समझा जाता है।

स्पार्टा की तालीम पाई हुई सेना का सामना करने के लिये

अथेन्स के पास काफी सेना न थी। परन्तु उसकी जल-सेना सब से अधिक थी। अतः पेरीक्लीज ने उसे सलाह दी कि वह स्वयं आक्रमण न करे बल्कि शत्रुओं के आक्रमण को रोके, जिससे स्पार्टावाले आगे बढ़ आवें और फिर थक कर सन्धि की प्रार्थना करने लगें। एक बार उन्होंने ऐसा ही किया और स्पार्टावालों को बढ़ा कर अपना देश उजाड़ने दिया। इसी समय एक और शत्रु ने आक्रमण किया—वह एक भयंकर बीमारी थी। दीवालों के अन्दर बहुत आदमी इकट्ठे होने से भयंकर प्लेग फैल गया, हजारों आदमी मर गये, मुर्दे बिना गड़े छोड़ दिये गये और शेष मनुष्य इधर उधर भाग निकले। उन्होंने इसे अथेनी देवी का कोप समझा।

दूसरे वर्ष पेरीक्लीज का भी देहान्त हो गया। उसके अन्तिम दिन बड़े दुःख में कटे। क्योंकि प्लेग में उसके कई सम्बन्धी और दो पुत्र मर गये। एक पुत्र की कब्र पर हार चढ़ाते समय वह जोर २ से रोने लगा। पेरिक्लीज की मृत्यु से अथेन्सवासियों को कोई सलाह देनेवाला न बचा। वे वीर थे परन्तु नेतारहित हो गये। शत्रुओं ने प्लेटी नामक गाँव बिलकुल नष्ट कर दिया एक एक करके सब निवासियों को मरवा डाला। कई वर्षों तक लगातार युद्ध होता रहा। ४२५ ई०पू० में उन्हों ४२० स्पार्टावालों को पेलोपेनीज किनारे के पास घेर लिया। स्पार्टावाले अथेन्स की १०,००० सेना के साथ बड़ी वीरता से लड़ते रहे। परन्तु जब उनमें से केवल २८२ शेष रह गये तो उन्होंने मरने के बजाय आत्म-समर्पण कर देना उचित समझा। इससे स्पार्टावालों की यह ख्याति, कि वे हारने के बजाय मरना अधिक पसन्द करते हैं, चली गई। पर प्राण दे देने से भी कोई लाभ न था।

स्पार्टावालों ने सन्धि करनी चाही परन्तु अब अथेन्सवासियों को गर्व हो गया था। वे सब खोये हुए स्थान प्राप्त करना चाहते थे। अतः उन्होंने स्पार्टा की शर्तों को न माना और युद्ध होता रहा। दूसरे वर्ष स्पार्टा का एक और प्रसिद्ध जनरल ब्रासीदास कुछ सेना लेकर आया। उसने अथेन्स के उत्तर के कुछ लोगों को अपनी ओर मिला लिया। अथेन्स-साम्राज्य भंग हो गया। अथेन्स की सेना डेलियम स्थान पर बुरी तरह हार गयी। इस युद्ध में सुकरात तथा उसका प्रसिद्ध शिष्य अल्सीबाइडीज बड़ी वीरता से लड़े थे। अथेन्स ने एक और सेना थूसीडाईडीज के नेतृत्व में भेजी, पर यह भी एम्फीपोलिस स्थान पर हार गयी। दोनों ओर के दो सेनापति—ब्रासीदास और क्रियन मारे गये। ४२१ ई० पू० में दोनों दलों ने थक कर एक दूसरे के देश और क़ैदी लौटाने की शर्त पर सन्धि कर ली।

परन्तु झगड़ा फिर भी खतम न हुआ। अथेन्स में अब अल्सीबाइडीज़ का प्रभाव सबसे अधिक था। वह दक्षिण इटली और सिसली को मिला कर अथेन्स की शक्ति बढ़ाना चाहता था। उसने मेलोस नामक एक द्वीप पर अधिकार करके, पुरुषों को मरवा डाला और स्त्रियों को दासी बना लिया। इसी समय सिसली की रियासतों में झगड़ा हुआ और एक रियासत ने अथेन्स से सहायता माँगी। अथेन्स ने उचित अवसर समझ कर वहाँ पर एक बड़ी भारी सेना भेजी। इतनी बड़ी सेना वहाँ अब तक तैयार नहीं की गयी थी। इसके तीन नेता थे—निसियस, अल्सीबाइडीज और लेमेचस।

इसी समय अथेन्स में एक और घटना हुई। एक दिन प्रातः

काल उठते ही सब अथेन्सवासी यह देख कर चकित हो गये कि नगर के प्रत्येक द्वार पर स्थित हर्मीज की मूर्ति खण्डित हो गयी है। लोगों ने अलसीबाइडीज पर सन्देह किया कि वह इस भांति निरंकुश और बलवान बन कर हमको दबाना चाहता है।

इस समय अलसीबाइडीज सेना लेकर सिसली पहुँच चुका था। परन्तु सिसलीवालों ने, जिनकी सहायता करने वह गया था, उसे धोखा दिया और उसका स्वागत नहीं किया। दुर्भाग्य से वहाँ नेताओं में भी मतभेद हो गया। इसी समय अलसीबाइडीज मूर्ति-खंडन के अपराध का उत्तर देने को बुलाया गया। परन्तु वह स्पार्टा को भाग गया और शत्रुओं से मिल कर अथेन्स की सब युक्तियों को उन्हें बता दिया। वह बड़ा चतुर सेनापति था। उसका बल पाकर स्पार्टावालों ने फिर युद्ध आरम्भ किया और सिसलीवालों को, जो अथेन्स की सेना से एक बार हार चुके थे, धीरज बँधाने के लिये वहाँ एक सेना भी भेजी। अब निसियस ने, जो अलसीबाइडीज के भाग जाने और लेमेकस के मर जाने के कारण एक मात्र नेता रह गया था, अथेन्स को अधिक सेना भेजने के लिये लिखा। डेमोस्थनीज के नेतृत्व में एक और सेना उसकी सहायता को आई, परन्तु यह सेना भी, जिस पर अथेन्स को पूरा विश्वास था, हार गयी और बेड़ा भी हार गया। अनेक मनुष्य युद्ध तथा बीमारियों से मर गये, लकड़ी के जहाजों में आग लग गयी और इस भांति समुद्र पर विजय प्राप्त करने की सब आशा जाती रही। अब भी अथेन्स के पास ४०,००० सेना बची थी। निसियस और डेमोस्थनीज ने फिर लड़ना निश्चित किया। क्योंकि वे हार कर अपने देश में मुँह दिखाना नहीं

चाहते थे। अबकी बड़ी भारी लड़ाई हुई यहाँ तक कि अथेन्स-वालों के पास केवल दस हजार सेना बच गई, परन्तु फिर भी वे लड़ते रहे, और अन्त में वे भी हार गये। दोनों नेताओं को मृत्यु-दण्ड दिया गया। इस भाँति अथेन्स की एक सबसे बड़ी सेना पूर्णतया नष्ट हो गयी। अथेन्स को इससे बड़ा भारी धक्का पहुँचा। उसकी कुल सेना में से $\frac{2}{3}$ जल-सेना और $\frac{1}{3}$ स्थल-सेना नष्ट हो चुकी थी और कोष भी बिलकुल खाली पड़ गया था। निर्बल का कोई भी सहायक नहीं होता। जब तक अथेन्स शक्तिमान था तब तक अनेक मित्र राज्य उसकी सहायता करने को तैयार थे, परन्तु अब सब उससे अलग होकर उसके विरुद्ध भी हो गये।

अथेन्स यह अपमान सह न सका। उसने ऐसे धोखेबाज विद्रोहियों को दण्ड देने के लिये एक बड़ी सेना तैयार करने का निश्चय किया। पेरिक्लीज पहिले से ही अत्यन्त आवश्यकता के समय काम में लाने के लिये दस सहस्र टैलैन्ट्स अलग रख गया था। उसी व्यय से यह नयी सेना तैयार की गयी। अब तक केवल एक समोस द्वीप ही अथेन्स का मित्र था। अतः यहीं पर सेना तैयार करके विद्रोहियों से फिर युद्ध छेड़ दिया गया। इस भाँति यह तीसरा पेलोपोनेशियन युद्ध आरम्भ हो गया। (४१२ ईस्वी पूर्व)।

इसी समय अलसीबाइडीज का स्पार्टावालों से भी झगड़ा हो गया और वह फारस चला गया। अथेन्सवाले इतनी हानि सह लेने पर भी उसे वापिस लेने को तैयार थे। क्योंकि उसने फारस के बादशाह को अपनी ओर मिला लिया था। परन्तु अलसीबाइडीज अथेन्स की प्रजासत्ता का विरोधी था। अतः उसने

लिखा कि फारस की सहायता तभी मिल सकती है जब अथेन्स की सर्व-जन-सत्तात्मक प्रणाली बदल दी जाय। आपद्काल उपस्थित जान कर अथेन्स ने बड़े खेद से सर्व-जन-सत्ता को अल्पजन-सत्ता (ओलीगार्की) के रूप में परिवर्त्तित किया। परन्तु समोस द्वीप ने इस परिवर्तन को पसन्द न किया और उसकी अप्रसन्नता देख कर चार मास ही बाद अथेन्स को पूर्व प्रणाली फिर स्थापित कर देनी पड़ी। (४११ ई० पू०)

इस समय अल्सीबाइडाज़ अथेन्स में आ गया था। उसने ४१० ई० पू० में साइजीकस स्थान पर स्पार्टावालों को, स्थल और समुद्र दोनों जगह, हरा कर अथेन्स को फिर विजयी बनाया। अथेन्स में लौटने पर उसका भारी स्वागत किया गया और उसे फिर जनरल बना दिया गया। परन्तु कुछ दिन बाद उन्हें फिर सन्देह हुआ और वह पुनः अलग कर दिया गया।

इस समय स्पार्टा के लेसन्डर नामक एक नये वीर जनरल ने फारस के राजा साइरस से मिल कर अथेन्स की सेना को कई बार हराया। अथेन्स के अधिकारियों ने इस पर सेना-नायकों से क्रुद्ध होकर सार्वजनिक सभा में उनके लिये मृत्युदण्ड का प्रस्ताव किया और जनसमूह ने उसका जोरों से समर्थन किया। यह आज्ञा बिलकुल अनुचित तथा अन्यायमूलक थी। अथेन्स ने भी पीछे इसके लिये पश्चात्ताप किया और प्रस्तावक को दण्ड भी दिया। परन्तु उस समय वे निराशा और क्रोध से ऐसे अंधे हो गये थे, कि उन्हें अपना भला बुरा कुछ न सूझता था। इस भाँति नायकों के मारे जाने से निर्बल सेना ४०५ ई० पू० में हरा कर (हेली-स्पन्ट मुहाने के पास) कैद कर ली गयी। स्पार्टा की सेना ने बढ़

कर अथेन्स को घेर लिया और बड़ी देर बाद उसे भी ले लिया। किले तोड़ दिये गये, प्रजातंत्र नष्ट हो गया। साम्राज्य तो इसके पहले ही नष्ट हो चुका था। अथेन्स नगर भी नष्टप्राय हो गया और इसीके साथ २७ वर्ष बाद यह युद्ध भी समाप्त हुआ।

परन्तु अथेन्स के भाग्य में फिर उठना बदा था। अथेन्स को पहिले शक्तिमान देखकर उसे हराने की इच्छा से ही शेष रियासतें आपस में मिल गई थीं। परंतु अब अथेन्स को बिलकुल निर्बल देख कर फिर उनमें आपस में द्वेष उत्पन्न हुआ, जिससे अथेन्स को अपनी स्थिति सम्हालने का अवसर मिल गया। स्पार्टा ने भी कोरिंथ और थीब्स का बल रोकने के उद्देश्य से अथेंस को बिलकुल नष्ट न किया था। अब वहाँ क्रिटियास के प्रभाव से फिर अल्प-जनसत्ता स्थापित हुई। इस बार असली शक्ति ३० चुने हुए मनुष्यों के हाथ में रहा, जो बाद में अपनी क्रूरता के कारण 'तीस निरंकुश शासक' (थर्टी टायरेन्ट्स) कहलाये। अपने विरोधियों को इन्होंने मरवा डाला। अल्सीबाइडीज भी जबरदस्ती मार डाला गया, परन्तु यह व्यवस्था भी बहुत दिन न चली। बहुत से निर्वासितों ने देश में लौटकर फिर प्रजातंत्र स्थापित कर दिया परन्तु किला, सेना आदि न होने के कारण वे निर्बल थे।

स्पार्टा में अब एजिसलास नामक राजा हुआ। स्पार्टा ने फारस की सहायता से ही अथेन्स को हराया था। अथेन्स की गिरी दशा देख कर एजिसलास के मन में यूनानों की एकदेशीयता का विचार उत्पन्न हुआ और उसके हृदय में अथेंस के प्रति सहानुभूति उत्पन्न हुई और फारस पर क्रोध आया। उसने सेना लेकर फारस पर आक्रमण किया, परन्तु उसकी सेना एशिया

माइनर में हार गई। फारसवाले अब स्पार्टा के विरुद्ध अथेंस के मित्र हो गये और अथेंस ने पुनः साम्राज्य स्थापित किया जो बहुत ही शीघ्र फिर नष्ट हो गया।

नवाँ अध्याय

यूनानी स्वातंत्र्य का अन्त

पेलोपोनेशियन युद्ध के बाद का इतिहास विशेष महत्व का नहीं है। इस समय वहाँ की रियासतों में आपस में कलह होता रहा जिसके परिणाम-स्वरूप पास की मेसेडोन रियासत ने उन्नति करके यूनान पर अपना अधिकार कर लिया।

हम देख चुके हैं कि स्पार्टा ने अथेंस को जीत कर अपने राज्य में नहीं मिलाया। वह केवल युद्ध-स्थल की विजय को ही विजय मान लेता था और अपने नागरिकों की थोड़ी सी संख्या से ही सन्तुष्ट रहता था तथा किसी बाहरी जाति को नागरिकता के अधिकार देना नहीं चाहता था। इस भाँति स्पार्टा की दशा वर्तमान हिन्दू सनातन धर्म के विचारों से बहुत कुछ मिलती जुलती थी। अतः शीघ्र ही उसका पराधीन होना अनिवार्य था।

यूनानी रियासतों को स्पार्टा का प्रभुत्व सह्य न हुआ। थीब्स, आर्गास और कोरिंथ ने मिल कर उसके विरुद्ध संघ बनाया और बाद में अथेंस भी उसमें सम्मिलित हो गया। इस भाँति

इनके पास २४,००० सेना हो गई, परन्तु ३९४ ई० पू० में स्पार्टावालों ने उन्हें हरा कर भगा दिया। स्पार्टा विजय प्राप्त कर सकता था। परन्तु शत्रुदल को पूर्ण रूप से निर्बल तथा आश्रित नहीं कर सकता था। अतः उसने किसी बाहरी शक्ति की सहायता चाही। इसके लिये फारस के अतिरिक्त और कोई उसे दिखाई न दिया। फलतः उसने फारस से मित्रता कर ली। अब सब से पहले थीब्स पर आक्रमण किया गया और ३८२ में धोखे से बिना युद्ध के ही वहाँ के किले पर अधिकार कर लिया गया। इस भाँति थीब्स उसके अधीन हो गया। यही स्पार्टा की शक्ति की चरम सीमा का वर्ष था।

३७९ में थीब्स में एक षड्यंत्र द्वारा सब स्पार्टन अफसर मार डाले गये और वह स्वतंत्र हो गया। बड़ा भयानक युद्ध हुआ जिसमें स्पार्टावालों ने थीब्स को उजाड़ डाला। थीब्सबासी सुस्त और बुद्धिहीन समझे जाते थे क्योंकि फारस के साथ युद्धों में उन्होंने कभी वीरता नहीं दिखायी थी। परन्तु इस समय उनमें बड़ा जोश था और उन्हें पिलोपीदास और एपामिनान्दास नामक दो बड़े वीर चतुर और देशभक्त राजनीतिज्ञ मिल गये थे। उनके नेतृत्व में थीब्स की सेना ने बड़ी वीरता और चतुरता से लड़ कर स्पार्टा की सेना को पूर्णतया हरा दिया (३७९ ई० पूर्व), जिसमें स्पार्टा का राजा भी मारा गया। यह पहला ही अवसर था कि वीरता के लिये विख्यात स्पार्टा की सेना इस प्रकार हार गयी। इस एक ही हार के कारण स्पार्टा एक दम गिर गया और फिर कभी न उठ सका।

अब थीब्स यूनान में प्रधान था। बहुत दिनों बाद उसका उदय-काल उपस्थित हुआ, परन्तु प्रश्न यह था कि जहाँ अथेन्स

और स्पार्टा असफल हुए, क्या वहाँ थीब्स सफल होगा? क्या वह यूनान की विद्वेषी रियासतों को एकसूत्र में बाँध सकेगा? यदि इस कार्य में एपामिनांदास और पिलोपिदास जैसे चतुर राजनीतिज्ञ असफल हुए, तो कहना पड़ेगा कि यह कार्य ही बड़ा कठिन है। कुछ काल तक तो थीब्स का खूब प्रभाव रहा एपामिनांदास ने मेसेनियाँ में घुस कर उसे स्पार्टा से स्वतंत्र कराया और थिसली में भी अपना प्रभाव जमाया। मेसेडोन में जब झगड़ा हुआ तो वहाँ शान्ति स्थापित की और वहाँ पर शान्ति तथा व्यवस्था की गारंटी के लिये वहाँ के एक राजकुमार को लाकर अपने यहाँ रखा। यह राजकुमार फिलिप था जो बाद में 'महान' पदवी का अधिकारी हुआ और जिसने यूरोप के इतिहास में एक नया युग आरम्भ किया। पर थीब्स की प्रधानता का अन्त भी शीघ्र ही पास आ रहा था। ३६२ ई० पू० में एपामिनांदास और पिलोपिदास ने प्रबन्ध ठीक करने पर ध्यान दिया, क्योंकि स्पार्टा, अथेन्स तथा अन्य यूनानी रियासतों ने थीब्स के विरुद्ध संघ बना लिया था और थीब्स पर उनके आक्रमण का भय था। शीघ्र ही यह आशंका सच्ची हो गयी और युद्ध आरम्भ हो गया। एपामिनांदास सबसे आगे लड़ रहा था। एक भाला उसके हृदय में आकर लगा और वह गिर पड़ा। होश में आते ही उसने पूछा 'क्या उसकी ढाल अच्छी तरह है और क्या थीब्स की विजय हुई?' फिर उसने दो जनरलों के विषय में पूछा कि 'क्या वे जीवित हैं?' क्योंकि वह जानता था कि उसके पीछे वे दो ही नेतृत्व ग्रहण कर सकते थे। उत्तर मिला कि 'वे तो दोनों मारे गये।' 'तो फिर सन्धि कर लो' ये अन्तिम वाक्य कह कर उसने

अपनी छाती से भाला निकलवाया। और रक्त-स्रोत बाहर निकलने के साथ ही उसके प्राण भी निकल गये। इस भाँति इस महान् पुरुष का अन्त हुआ और उसके अस्त के साथ ही थीब्स का भी अस्त हो गया। अब वह पहले की भाँति केवल एक छोटी सी रियासत रह गयी।

दसवाँ अध्याय

मेसेडोन का उदय

एपामिनांडास की मृत्यु के पच्चीस वर्ष बाद तक यूनान में कोई प्रभावशाली नेता नहीं हुआ। इसी समय उसके उत्तर में एक नयी रियासत मेसेडोन शक्तिशाली हो रही थी, जिसने कुछ दिन बाद यूनान पर ऐसा अधिकार और शासन जमाया जैसा कि वहाँ पहले कभी नहीं हुआ था।

मेसेडोन के लोगों में यूनानी रक्त का अंश था और भाषा भी मिलती जुलती थी। अतः वे भी अपने को यूनानी समझते थे, यद्यपि यूनानी उन्हें बर्बर कहते थे। अवश्य ही वे सभ्यता में यूनानियों से कुछ पीछे थे। ये पहाड़ों पर रहते और खेती करते थे। साहित्य, कला, विज्ञान आदि में भी उनका बहुत कम प्रवेश था, जिनमें दक्षिण यूनान बहुत बढ़ा हुआ था।

मेसेडोन में भी क्रान्तियाँ हुईं, विद्रोह हुए, परन्तु वहाँ राजप्रथा स्थापित रही। ३५९ में फिलिप-जिसे एपामिनांडास ने कुछ

दिन अपने यहाँ रखा था—तेईस वर्ष की आयु में वहाँ की गद्दी पर बैठा। वह बड़ा बुद्धिमान् और युद्ध-निपुण था और एक ही साल में उसने शत्रुओं को हरा कर एक दृढ़ सेना तैयार कर ली। वहाँ का जन-समूह प्रत्येक कार्य में उसे सहायता देता था।

यूनान भिन्न २ स्वतन्त्र रियासतों में बँटा हुआ था। रियासतों में भी कई दल होते थे। इनमें इस भिन्नता और स्वतन्त्रता के कारण इतना द्वेष हो गया था कि ये राष्ट्रीयता का कुछ विचार न कर केवल अपनी विजय का ही बहुत ध्यान रखते थे। स्पार्टा के अतिरिक्त प्रायः शेष सब रियासतों में सैनिक शिक्षण पसन्द नहीं किया जाता था। नगरों के रक्षण का भार किराये की सेना पर छोड़ दिया जाता था। अनेक रियासतें अथेन्स के नाटकों को विलास समझ कर उनका विरोध करती थीं। डेमोस्थेनीज भी—जो एक बड़ा चतुर वक्ता था—उन्हें बुरा बताता था क्योंकि वह कहता था कि इन कार्यों में जब लोग रुपया व्यय कर देते हैं तो राष्ट्रीय संरक्षण के लिये आवश्यक द्रव्य नहीं रहता। इस भाँति उन रियासतों में प्रायः किसी बात में भी ऐक्य न था। यूनान की ऐसी सेना मैसेडोनिया की युद्धप्रिय और संगठित सेना पर विजय प्राप्त करने की आशा नहीं कर सकती थी।

आस-पास के शत्रुओं को हटा कर धीरे २ मैसेडोन के राजा ने यूनान में पैर बढ़ाना आरम्भ कर दिया। यूनान की सेनायें शीघ्र ही उनके आगे हारने लगीं। मैसेडोन का मुख्य लक्ष्य अथेन्स था परन्तु क्या अथेन्स—जो एक दिन यूनान में प्रधान रह चुका था—जिसे पेरिक्लीज़ के समय की अब भी याद थी—मैसेडोन के सामने मस्तक झुका देता? उसने ऐसा करने के बजाय लड़ना

ही उचित समझा। फिलिप ने सीमा प्रान्त के एम्फीपोलिस नगर पर आक्रमण किया और उसे ले लिया। यूनान की रक्षा के लिये एक ओलिंथस संघ बनाया गया और उसकी सेना फिलिप के साथ युद्ध करने भेजी गयी। डेमोस्थेनीज़ जानता था कि यदि संघ की सेना हार गयी तो दूसरा आक्रमण अथेन्स पर ही होगा। अतः उसने संघ की सहायता के लिये देश भर से बड़े जोर से अपील की। परन्तु वहाँ आन्तरिक झगड़ों से ही फुर्सत नहीं थी, अपील कौन सुनता। अतः सहायता बहुत देर से और अल्प-संख्या में पहुँची। इसी समय थीब्स और फोशिया नाम की एक रियासत में झगड़ा हो गया। फोशियावालों ने अपने सिपाहियों को तन-ख्वाह देने के लिये डेल्फी का मन्दिर लूट लिया। अब थीब्स रियासत इतनी बलवान नहीं थी, जितनी एपामिनांदास के समय में। अतः उसके सिपाही हार गये और उसने फिलिप से ही सहायता की प्रार्थना की। इस भाँति फिलिप को अपोलो देवता के पक्ष में लड़ने का बहाना लेकर मध्ययूनान में घुसने का भी अच्छा अवसर मिल गया। ३४६ ई० पू० में उसने थर्मापोली के मुहाने पर अधिकार कर लिया और इस भाँति मध्ययूनान की कुंजी उसके हाथ लग गयी जिसे उसने अन्त तक न छोड़ा।

फिर भी और आठ वर्ष तक यूनान स्वतंत्र रहा जिसका हाल हमें केवल अथेन्स के नेताओं के व्याख्यानों से मिलता है। डेमो-स्थेनीज ने फिलिप का सामना करने की तैयारियाँ कीं, उसके आचरण और नीति के विरुद्ध अनेक जोरदार व्याख्यान दिये। इसी समय डेल्फी के मन्दिर के प्रबन्ध के लिये फिर झगड़ा हुआ और फिलिप अवसर पाकर ससैन्य वहाँ घुस आया। अब उसका

उद्देश सब पर प्रकट हो गया था। अतः थीब्स और कई अन्य रियासतें फिर अथेन्स से मिल गईं। यह यूनानी इतिहास की विलक्षणता है कि एक क्षण में तो वहाँ की रियासतों में द्वेष हो जाता था और दूसरे ही क्षण एक मित्र को छोड़कर वे दूसरे से मिल जाती थीं। ३३८ ई० पू० में फिर युद्ध हुआ जिसमें पहले तो यूनानी कुछ सफल रहे परन्तु फिर फिलिप के युवा पुत्र सिकन्दर के अधीन घुड़सवारों की एक सेना ने आकर उन्हें हरा कर पीछे भगा दिया। यह चेरोनिया का युद्ध भी बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यहीं यूनानी स्वतन्त्रता का अन्त हुआ।

परन्तु विजय पाकर मेसेडोन वालों ने यूनानियों की आशा के विरुद्ध उनसे बहुत नम्रता और दया का बर्ताव किया। फिलिप ने युद्ध के सब कैदियों को छोड़ दिया और अथेंस से स्वयं ही बड़ी नम्रता की शर्तें उपस्थित करके सब को आश्चर्य में डाल दिया। ३३६ ई० पू० में फिलिप अपनी पुत्री की शादी में जा रहा था कि एक मनुष्य ने उसे मार डाला, वह इस समय केवल ४७ वर्ष का था।

मेसेडोन की अधीनता में अथेंस की भाषा और भावों का खूब प्रचार हुआ। यूनान की बुद्धि ने इस समय भी यूरोप को बहुत कुछ सिखाया परन्तु वहाँ के सब से बड़े कलाविद् और कवि स्वतंत्रता के समय में ही हुए थे। गुलाम देशों में ऐसे महापुरुष प्रायः कम होते हैं। अब यूनानी कविता का महत्वपूर्ण काल समाप्त हो चुका, यद्यपि कुछ लेखक इसके बाद तक भी नाटक कविता आदि लिखते रहे। शिल्प का भी थोड़ा बहुत काम होता रहा, परन्तु इस समय फिडियस के समान कोई शिल्पी न हुआ।

मन्दिर भी बहुत से बनवाए गये परन्तु पारथेनन के समान सुन्दर मन्दिर कोई न बना। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि यूनान की सभी कलाओं का अन्त हो गया। विज्ञान और तत्व-ज्ञान ने इस समय बहुत उन्नति की। सुकरात के बोये हुए बीज निरर्थक नहीं गये। जेनोफोन, प्लेटो और अरस्तू (एरिस्टोटल) जो इस समय में हुए, इन सब ने सुकरात के विचारों से बहुत सहायता ली और ये संसार के बड़े २ तत्वज्ञानियों में गिने जाते हैं। प्लेटो सुकरात का ही शिष्य था। इसने अपने गुरू के विचारों को इतने ऊँचे दर्जे तक पहुँचा दिया जितना गुरु ने सोचा भी न होगा। उसके विचारों ने यूरोपीय सभ्यता पर स्थायी प्रभाव डाला। इसाई मत ने उसके धर्म, तत्वज्ञान और राजनीतिक विचारों से बहुत सहायता ली है और नवीन राजनैतिक और धार्मिक विचारों में भी उसके विचारों की बड़ी गहरी छाप पायी जाती है। अरस्तू (३८४३२२ ई० पू०) प्लेटो से कुछ कम दर्जे का कवि और धार्मिक पुरुष समझा जाता है। उसने विज्ञान की बहुत उन्नति की। उसके जीवनकाल में ही उसका आदर होने लगा और वह सिकन्दर का गुरु बनाया गया। सभ्यता की नींव को उसीने पक्का किया। उसने अरबी वैज्ञानिकों और तत्वज्ञानियों का बड़ा विद्यालय स्थापित किया, जिसका यूरोप पर बहुत प्रभाव पड़ा।

ग्यारहवाँ अध्याय

सिकन्दर महान और उसकी विजय

इस समय तक यूनान की रियासतें केवल नागरिक ही नहीं थीं, बल्कि कई बड़ी २ रियासतें स्थापित हो गई थीं। मेसेडोन का कुछ हाल हम पढ़ ही चुके हैं। यूनान के पश्चिम में रोम का प्रजातंत्र अपना विस्तार बढ़ा रहा था, तथा इसी भाँति और भी कई बड़ी बड़ी रियासतें स्थापित हो चुकी थीं।

हम देख चुके हैं कि फिलिप का शासन क्रूर नहीं था। उसने अधीन रियासतों में स्थानीय स्वराज्य स्थापित किया, उनके पुराने नियमों को प्रचलित रखा। अतः उसके राज्य विस्तार की बहुत सम्भावना थी और इसी कारण थोड़े ही काल में स्पार्टा को छोड़कर सब यूनान उसके अधीन हो गया था। वह यूनान को ऐसा सुसंगठित और दृढ़ बनाना चाहता था जिससे वह फारस का सामना कर सके। उसकी असामयिक मृत्यु के बाद उसके सुयोग्य पुत्र सिकन्दर (अलेक्जेंडर) ने उसी की नीति का अनुसरण किया। पिता की मृत्यु के समय (३३६ ई० पू०) उसकी अवस्था बीस वर्ष की थी, उसे आरम्भ से ही स्पार्टा के ढंग पर कठिन शिक्षा दी गई थी। उसकी माता पौराणिक वीर एचिलीस के वंशजों में से थी। अतः सिकन्दर को भी बचपन से एचिलीस के समान वीर बनने की उत्कण्ठा थी। उसकी माता और गुरुओं ने भी इस इच्छा को प्रोत्साहन दिया। तेरह वर्ष की अवस्था में वह अरस्तू

का शिष्य हुआ और इसीसे उसने शिक्षा, नीति, भूगोल, राज्य-प्रबन्ध आदि की शिक्षा प्राप्त की, जो उसके बहुत काम में आयी।

राज-गद्दी पर बैठते ही उसे अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ा। फिलिप की मृत्यु का समाचार सुनकर उसकी अधीन रियासतों ने स्वतंत्रता-प्राप्ति का अच्छा अवसर समझा। जगह २ विद्रोह आरम्भ हो गये। अथेंस में स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिये बहुत जोश था। सार्वजनिक सभाओं में फिलिप की मृत्यु पर हर्ष मनाया गया और सब यूनान पराधीनता दूर करने के लिये तैयार दिखाई दिया, परन्तु उनमें से किसी को भी सिकन्दर की वीरता और चतुराई का पता बिलकुल न था।

सिकन्दर ने थिसली को साम और दण्ड नीति से डराकर अधीन रखा और उसमें होकर थीब्स पर आक्रमण किया। फिर कोरिंथ में एक सभा की जिसमें सब यूनानी रियासतों ने स्पार्टा के अतिरिक्त उसे अपने पिता के स्थान पर मान लिया। इस पर वह अपने देश को लौट आया। परन्तु थीब्स में फिर उसके मर जाने की खबर उड़ी और वहाँ विद्रोह आरम्भ हुआ। सिकन्दर को लौटना पड़ा। इस बार भारी युद्ध हुआ जिसमें सिकन्दर की जीत हुई। अब थ्रेसवालों ने थीब्स के लोगों को मारना आरम्भ कर दिया, यहाँ तक कि करीब ६ हजार मनुष्य कत्ल कर दिये गये और ३० हज़ार कैद। कैदियों को दास बनाकर बेचा गया, और सब मकान पृथ्वी से मिला दिये गये। सिकन्दर ने शेष रियासतों को डराने के लिये थीब्स के साथ ऐसा क्रूर बर्ताव किया और इस भाँति जो रियासतें फिर उसके अधीन हुईं उनके साथ बहुत नम्रता का बर्ताव किया गया। थीब्स का नाश

सुनकर अथेंस में हर्ष मनाया गया और सिकन्दर को इस विजय पर बधाई दी गई। वहाँ वाले इतने पतित हो गये थे !

इस भाँति अपने देश में शान्ति स्थापित करके उसने ३३४ ई० पू० में एशिया विजय करने का विचार किया, और ३५,००० सेना लेकर उसने प्रस्थान किया। रास्ते में लीडिया और आयोना के लोगों ने उसका मार्ग रोका। सिकन्दर ने बड़ी वीरता से एक नदी पार की और स्वयं सब से आगे बढ़कर लड़ाई आरम्भ कर दी। एक बार वह मरते २ बच गया, परन्तु उसकी सेना ने जोश में आकर शत्रुओं को हराकर भगा दिया। अब गाँव पर गाँव उसके अधीन होते गए। टायर नगर के निवासियों ने बड़ी वीरता से युद्ध किया और सात महीने तक वे सिकन्दर की सेना से लड़ते रहे। पर अन्त में थककर उन लोगों ने हार मान ली। इसके पीछे सिकन्दर मिश्र में पहुँचा और वहाँ के शासक को अपने रथ के पीछे बँधवाकर नगर में घसीटा, जिससे वह मर गया। सिकन्दर के चरित्र में क्रूरता का यह एक बड़ा धब्बा है। यहाँ उसने नील नदी के किनारे एक नगर बसाया जो शीघ्र ही अच्छी जगह पर होने के कारण साहित्य और व्यापार का केन्द्र हो गया। यह नगर उसीके नाम पर सिकन्दरिया (अलेकजेंड्रिया) कहलाता है।

मिश्र-विजय करके कास्पियन समुद्र (कश्यप सागर) होता हुआ वह फारस पहुँचा। फारस इस समय एक निर्बल राज्य था। राजमहल में सदा चुगलिया षड्यन्त्र चलते रहते थे, रक्तपात होता था, और सैनिक-प्रबन्ध भी बहुत बुरा था। यूनान से युद्ध होने के समय से इसने कुछ उन्नति नहीं की थी। उधर मेसेडोन

की सेना सुसंगठित और सुशिक्षित थी। वहाँ युद्ध तथा क़वायद के नियमों में बहुत सुधार हो गए थे और उनमें विजय के लिये उत्साह था। इनका सैन्य-रचना का क्रम भी विचित्र था। भाला हाथ में लिये हुए सिपाही घनी पंक्तियों में खड़े कर दिये जाते थे। वे इतने पास २ खड़े होते थे कि यदि कोई शत्रु सीधा आक्रमण करे तो इनके भालों से नहीं बच सकता था। यह क्रम 'फेलेंक्स' कहलाता था। इसके अतिरिक्त सिकन्दर के पास सवार सेना भी थी; जिसका सेनापति वह स्वयं था। इसी सेना के बल अब तक वह कई युद्धों को जीत चुका था। फिर इन्हें सुरंग लगाना भी आता था, यद्यपि उन्होंने इसका उपयोग बहुत कम किया।

सिकन्दर की सेना ने आरम्भ से ही फारसी सेना के सम्मुख अपनी श्रेष्ठता दिखाना आरम्भ कर दिया। एशिया माइ-नर में घुसने के पहले, हेली-कारनेसस स्थान पर वह एक फारसी सेना को हरा चुका था, जहाँ पर उसने पहली ही बार सुरंग लगा कर संसार को युद्ध के नये तरीक़े का परिचय दिया। जब मिश्र-विजय करके वह लौटा तो अर्बेला स्थान पर फिर एक सेना खड़ी मिली, परन्तु वह भी हार गयी (३३१ ई० पू०) और बादशाह दारा भाग गया। फारस के बड़े २ नगर बेबीलन, सूसा, पर्सीपोलिस आदि उसके अधीन हो गये। उसने और किसी नगर को हानि न पहुँचाई परन्तु पर्सीपोलिस का महल जला दिया।

सिकन्दर दारा (डेरियस) को जीवित ही क़ैद करना चाहता था परन्तु इतने में उसीके एक अफ़सर ने दारा को मार डाला। सिकन्दर ने इस हत्याकारी को भी मृत्युदण्ड दिया। (३३० ई० पू०)

अब सिकन्दर ने फारसी प्रजा को सन्तुष्ट और शान्त रखने के उपाय निकाले, क्योंकि वह फारस को अपने साम्राज्य में मिलाना चाहता था। उसने अपने बहुत से सिपाहियों की वहाँ की स्त्रियों से शादियाँ कराईं, स्वयं भी वहाँ की पोशाक धारण की और अन्य कई बातें भी मानने लगा और पूर्वी विचार के अनुसार वह अपने में ईश्वर का बहुत अधिक अंश मानने लगा। कुछ २ गर्व तो उसे मिश्र से ही हो गया था। जब वहाँ पर वह जीयस के मन्दिर में गया तो वहाँ की पुजारिन ने उसे ईश्वर-पुत्र जान कर बड़े आदर से प्रणाम किया और उसने भी इस विश्वास को सदा उत्तेजना देने का प्रयत्न किया। अपना प्रभाव जमाने के लिये वह इसे आवश्यक समझता था। उसके पुराने साथियों ने, जो अब तक बराबरी के पद के समझे जाते थे, इस नयी युक्ति से अपनी पुरानी स्वतन्त्रता नष्ट होते और अपनी स्थिति पतित होते देख कर सिकन्दर का विरोध किया। इस भाँति सिकन्दर बहुत दिनों तक फारस में रहा।

परन्तु अभी उसका कार्य समाप्त नहीं हुआ था। उसे अभी ऐसी और कई जातियों से भी लड़ कर अपनी वीरता का परिचय देना था, जिन्हें यूरोपीय संसार बहुत कम जानता था और जहाँ प्रकृति उनका संरक्षण करने में बहुत सहायता देती थी। इस भाँति वह मध्य एशिया होता हुआ अफ़गानिस्तान आया। मार्ग में बर्फ, पहाड़ और पहाड़ी जातियों के कारण उसे बड़े कष्ट उठाने पड़े, फिर भी ३२६ ई० में उसने तक्षशिला के पास आकर सिन्धु नदी पार कर पंजाब में प्रवेश किया।

भारत में प्रवेश करने के समय उसके साथ एक लाख बीस

हज़ार पैदल तथा पन्द्रह हज़ार सवार सेना थी, जिसे वह बीच २ में भर्ती करके का काम सिखाता गया था। तक्षशिला का राजा उसका मित्र हो गया और उसकी सहायता के लिये पाँच हज़ार सेना और भेज दी। अब सिकन्दर झेलम की ओर चला परन्तु उसे वहाँ के वीर राजा पुरु (पोरस) की सेना मार्ग रोके खड़ी मिली। सिकन्दर ने युक्ति से काम लिया। पुरु की सेना का ध्यान इसी ओर रखने के लिये उसने कुछ सेना तो वहीं पर छोड़ दी और एक बड़ी सेना लेकर रात में कुछ दूर उत्तर की ओर जाकर नदी को पार करके दूसरी ओर से पुरु की सेना पर आक्रमण कर दिया। अब बड़ी घमासान लड़ाई होने लगी। पुरु की सेना में बहुत से हाथी भी थे, जिन्हें देखकर यूनानी घोड़े डरकर भागने लगे, परन्तु यूनानी लोग फिर भी लड़ते रहे। इधर स्थान बहुत कम होने से हाथियों ने गड़बड़ मचा दी और वे उल्टे लौट गये, जिससे पुरु की सेना की बहुत हानि हुई। इस भाँति यहाँ भी यूनानी ही विजयी हुए। पुरु के कुल १२००० मनुष्य मरे और ९००० क़ैद किये गये, जिनमें स्वयं पुरु भी थे। हारने पर भी पुरु भयभीत अथवा उदास नहीं हुए। उनकी वीरता का उत्तर प्रत्येक भारतवासी को मालूम ही है, जिससे प्रसन्न होकर वीरों का आदर करनेवाले वीर सिकन्दर ने उन्हें उनका सब राज्य लौटा दिया।

सिकन्दर और भी आगे बढ़ना चाहता था परन्तु उसकी सेना अपने घर से बहुत दूर चली आई थी और थक भी गयी थी। अतः उसने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। यह भी सम्भव है कि वह आगे बढ़ने से डर गयी हो। क्योंकि उसने सुन रखा था

कि भारत सम्राट् चन्द्रगुप्त युद्ध की तैयारी कर रहे हैं। भारतीय वीरता का पता उन्हें एक छोटे प्रान्तीय राजा से ही मिल गया था। अतः एक सम्राट् से युद्ध करने में अवश्य ही वे डरे होंगे। कुछ भी हो, कुछ दिन बाद सिकन्दर ने उन्हें लौटने की आज्ञा दे दी।

जिस रास्ते से वह आया था, उसे उसने कष्टप्रद समझकर दूसरा रास्ता ग्रहण किया। उसने अपनी सेना के दो भाग किये। बड़े भाग को उत्तर होकर स्थल की राह भेजा और दूसरे भाग को लेकर वह सिन्धु नदी के मुहाने की ओर—जिसे वह नील नदी की एक शाखा समझता था—जलमार्ग से चला। (३२७ ई० पू०)।

मार्ग में कुछ लोगों ने उसे कष्ट पहुँचाया। अतः उसने ठहर कर मुलतान के पास के एक किले को भी लेना चाहा। सीढ़ी लगाकर चार अफसरों के साथ वह किले की दीवार पर चढ़ गया कि इतने में सीढ़ी टूट गयी और सिकन्दर की सहायता के लिये लोग न पहुँच पाये। फिर भी साहस करके वह दुर्ग के अन्दर उतर गया। उसमें थोड़े से ही आदमी थे जिनमें से दो को उसने मार डाला पर इसी समय उसको भी एक ऐसा तीर लगा की वह मूर्छित होकर नहीं गिर पड़ा और उसके शरीर से रक्त बहने लगा। उसके साथ के अफसरों ने आकर उसकी प्राण-रक्षा की। इतने ही में उसकी सब सेना किले के फाटक से घुस आयी, किले के अन्दर के सब लोग मार डाले गये और मूर्छित सिकन्दर को लेकर वे लोग उसी मार्ग से आगे बढ़े। रावी के संगम के पास उसे होश आया और उसकी सेना ने बड़ा हर्ष मनाया।

सिंधु-सागर संगम पर पहुँच कर कुछ मनुष्यों को इन प्रदेशों का पूरा हाल जानने के लिये छोड़कर वह समुद्र के किनारे २ स्थल मार्ग से आगे बढ़ा। यहीं उसकी सेना का दूसरा भाग भी आकर मिल गया। अब उसे एक भारी रेगीस्तान पार करना था, जहाँ पानी बिलकुल न था। उसके सिपाही प्यास से मरने लगे। कहते हैं कि उसके लिये एक सिपाही कहीं से खोजकर थोड़ा सा पानी लाया परन्तु उसने यह कह कर कि जो सुख मेरे साथ के सब सिपाहियों को नहीं है उसे मैं भी पाना नहीं चाहता, उस पानी को फैला दिया। इन्हीं गुणों के कारण सिपाही उसके लिये प्राण देने के लिये सदा तैयार रहते थे। उसने सब सिपाहियों के साथ थकावट, भूख, प्यास आदि कष्टों को झेला। इस मार्ग में उसके दो-तिहाई सिपाही भूख, प्यास तथा थकावट से मर गये। शेष साथियों को लिये हुए दो महीने बाद वह फारस की खाड़ी के पास के कार्मेनिया नामक हरे भरे प्रान्त में पहुँचा। फिर कुछ दिन बाद पार्सीपोलिस में आ गया और वहाँ शान्ति स्थापित की।

अब उसने फारस को अपने राज्य में मिलाने के प्रयत्न आरम्भ किये। यूनानी और फारसी मनुष्यों को मिला कर एक करने का उपाय उसे अन्तर्जातीय विवाह करने में सूझा। अतः उसने अपने सिपाहियों के वहाँ की स्त्रियों से विवाह कराये और स्वयं भी एक फारसी स्त्री से विवाह किया—जो राजा दारा की सब से बड़ी पुत्री थी। इस भाँति लगभग १०,००० मनुष्यों ने वहाँ विवाह किये। इस प्रकार दोनों देशों को एक करने के उसने और भी कई उपाय निकाले, परन्तु उसके बहुत से अनुयायियों ने

इसका विरोध किया और विद्रोह भी आरम्भ हो गया। सिकन्दर ने विद्रोही नेताओं को मरवा डाला और शेष को समझा कर कि उसने उनके साथ कैसे २ कष्ट झेल कर उन्हें यूनान और एशिया का मालिक बनाया है। इस तरह उन्हें शान्त किया।

३२३ ई० पूर्व में सिकन्दर ने फिर बेबिलन में प्रवेश किया। इसी समय उसका एक प्यारा मित्र मर गया जिसने उसके हृदय को बड़ा भारी धक्का पहुँचा और वह सदा उदास रहने लगा। अब उसने अरब-विजय की तैयारी की, परन्तु इसी समय उसे बुखार आने लगा जो बढ़ता ही गया। यहाँ तक कि २८ जून को उसका प्राणान्त ही हो गया। मूर्छित अवस्था में उसकी सेना ने अपने वीर नायक के अन्तिम दर्शन किये। इस समय उसकी अवस्था केवल ३२ वर्ष की थी।

निःसन्देह सिकन्दर संसार के सबसे बड़े महापुरुषों में से एक है। इतनी छोटी अवस्थायें और केवल १२ वर्ष के समय में उसने इतनी विजय पाई और इतना साम्राज्य उपार्जन किया। यदि वह जीता रहता तो अवश्य ही नेपोलियन के समान राज्य-प्रबंध में भी वह पटुता दिखाता, जिसका आरम्भ वह कर रहा था।

बारहवाँ अध्याय

सिकन्दर की विजय का महत्व और उसके बाद यूनान की अवस्था

सिकन्दर यूनानी विचारों का प्रशंसक था। अतः यूनानी भाषा, सभ्यता तथा व्यापार का प्रचार सब विजित देशों में हुआ। एशिया माइनर, सीरिया (शाम), मेसोपोटामिया और मिश्र ये सब शीघ्र ही यूनानी देश हो गये। यहाँ यूनानी शिक्षा का खूब प्रचार हुआ। इसका प्रधान केन्द्र सिकन्दरिया रहा। इसने शिक्षा, गणित, वैद्यक तथा ज्योतिष में यूरोप पर अथेन्स से भी अधिक प्रभाव डाला जिसके लिये यूरोप इसका बहुत अधिक ऋणी है। सिकन्दर की विजय के कारण लोगों को अनेक नये देशों का हाल मालूम हुआ जिससे संसार का भौगोलिक ज्ञान बढ़ सका।

सम्भव है कि यदि सिकन्दर जीता रहता तो इन भिन्न २ देशों और जातियों में ऐक्य स्थापित करने की कोई युक्ति निकालता। उसकी आकस्मिक और असामयिक मृत्यु ने उसके साम्राज्य का भंग होना अनिवार्य कर दिया। उसके बाद उसका स्थान लेनेवाला कोई न था और न उसने कोई पुत्र अथवा उत्तराधिकारी छोड़ा यद्यपि उसकी स्त्री गर्भवती थी। अतः उसकी मृत्यु के बाद उसके सैनिक अफसरों ने मिल कर राज्य का बटवारा कर लिया। यह सोच कर कि यदि सिकन्दर के पुत्र हुआ तो उसके लिये भी राज्य का एक भाग अलग कर दिया गया। फिर

कई वर्षों तक इन सेना-नायकों में झगड़े चलते रहे; क्योंकि इनमें से प्रत्येक राजा बनना चाहता था। इस संघर्ष और गड़बड़ी में तीन रियासतें दृढ़ तथा शक्तिमान् होकर प्रधान हुईं—मिश्र, मेसिडन और स्पार्टा। सिकन्दर के एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जिसे एक सेनापति ने मार डाला।

सिकन्दर के एक सेनापति टोलेमी ने मिश्र पर अधिकार कर लिया और उसके वंशज वहाँ पर ईस्वी सन् के आरम्भ होने तक राज्य करते रहे। पृथ्वी की उर्वरा-शक्ति तथा अच्छी व्यापारिक स्थिति ने टोलेमी के राज्य को धनवान् और शक्तिमान् बना दिया। इस वंश के शासन से यहाँ पर भी एक नया युग आरम्भ हुआ। सिकन्दरिया व्यापारिक केन्द्र होने के साथ २ ही यूनानी शिक्षा का भी केन्द्र हो गया। कविता में भी उन्नति हुई। वहाँ के पुराने ढंग के लोगों पर यूनान की नयी कलाओं का बहुत प्रभाव पड़ा, जिससे उनकी सामाजिक स्थिति में भी परिवर्तन हो गया। इस समय के यहाँ के कवियों में थियोक्रिटस का नाम प्रसिद्ध है, जो ईस्वी-पूर्व तीसरी शताब्दी में हुआ। इसने मिश्र के रेतीले मैदानों में सिसली की हरीभरी भूमि के गान गाये। तत्त्वज्ञान और विज्ञान में भी बहुत वृद्धि हुई। गणितज्ञों में यूकलिड का नाम बहुत प्रसिद्ध है, वह और प्रसिद्ध तत्त्व-ज्ञानी फिलो जो यहूदी था—दोनों ये इसी समय हुए। इन्होंने यूरोपीय धर्म तथा सभ्यता पर बहुत प्रभाव डाला। सिकन्दरिया का वैद्यक महाविद्यालय भी बड़े महत्त्व का था जिसने प्राणि-शास्त्र (फायलोजी) और शरीर-शास्त्र (एनेटोमी) में बहुत खोज की। प्रसिद्ध वैद्य गैलन (१३१-२०० ईस्वी) भी यहीं पर हुआ। इसकी पुस्तकें

ने 'रिनाइसेन्स' काल में और फिर नवीन विद्या में महत्व का स्थान पाया और ये यूरोप में, भारत के चरक और सुश्रुत आदि के समान वैद्यक पर सब से आरम्भिक ग्रन्थ समझे जाते हैं।

जिस प्रकार मिश्र में टोलेमी ने अपना अधिकार जमा लिया था उसी प्रकार यूनान में सिकन्दर के एक सेनापति के पुत्र कोसन्दर ने शक्ति प्राप्त कर ली थी। परन्तु यूनान और लोगों ने उसे चैन न लेने दिया। अतः उसे १०-१२ वर्ष युद्ध में ही बिताने पड़े। इसी ने सिकन्दर महान के पुत्र को उसकी माता सहित कैद कर रक्खा था। वह पुत्र कारावास ही में १६ वर्ष का हो गया था। कुछ लोग आन्दोलन कर रहे थे कि उसे गद्दी पर बिठाया जाय। यह देखकर कोसन्दर ने एक दिन माता और पुत्र दोनों को मरवा डाला, परन्तु देश में इस घटना से विद्रोह खड़ा नहीं हुआ।

३०१ ईस्वी-पूर्व में इप्सस स्थान पर इन प्रतिद्वन्द्वी सेनापतियों की अन्तिम लड़ाई हुई जिसमें एक शक्तिशाली सेनापति एन्टीगोनस मारा गया। इसका राज्य सेल्यूकस और लिसीमेचस ने आपस में बाँट लिया। इस भाँति यूनान में अब एक मात्र कोसन्दर प्रधान रह गया। परन्तु कुछ दिन बाद वह मर गया और उसका पुत्र, फिलिप चतुर्थ के नाम से, मेसेडोन की गद्दी पर बैठा। परन्तु वह भी २९५ ई० पूर्व० में मर गया और फिर झगड़ा शुरू हुआ। इसी समय एशिया माइनर से लिसीमेचस ने आकर मेसेडोन पर अधिकार कर लिया। २८१ ई० पू० में लिसीमेचस और सिल्यूकस में भी युद्ध हुआ और इसमें लिसीमेचस मारा गया। इस भाँति मिश्र, साइप्रस आदि कुछ भाग छोड़कर सिकन्दर महान के समूचे साम्राज्य पर सिल्यूकस का अधिकार हो गया।

जब सिल्यूकस मेसेडोन को लौटते समय एक स्थान पर प्रार्थना कर रहा था तो टोलेमी ने उसे खड्ग से मार डाला। शीघ्र ही (२७८ ई० पू०) केल्ट जातियों ने आक्रमण किया जिसमें टोलेमी मारा गया। इस भाँति पुराने सब सेनापति मर गये।

इसके पश्चात् वहाँ पर कुछ वर्षों तक अराजकता फैली रही। अन्त में एन्टीगोनस नामक एक दूसरे सेनापति ने फिर शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित की। अब मेसेडोन का विस्तार उतना नहीं रहा जितना फिलिप के समय में था। फिर भी उसके वंश के लोग रोमन लोगों से हराये जाने तक वहाँ राज्य करते रहे। मेसेडोनिया के पूर्व में थ्रेस बहुत दिनों तक स्वतंत्र रहा, परन्तु ईस्वी सन् की पहली शताब्दी में वह भी एक रोमन प्रान्त बना लिया गया। पश्चिम में एपिरस नामका एक और राज्य था जिसने राजा पाइरस के समय में रोमन इतिहास में महत्व-पूर्ण भाग लिया था।

मिश्र और मेसेडोन के अतिरिक्त सिकन्दर के साम्राज्य का तीसरा बड़ा भाग एशिया था। हम देख चुके हैं कि एन्टीगोनस नामक जनरल की मृत्यु पर वहाँ सिल्यूकस का अधिकार हुआ। इसकी सीमा सीरिया (शाम) से लगाकर यूफ्रेटीज नदी तक थी। इससे पूर्व के प्रान्त सिकन्दर के लौटते ही स्वतंत्र हो गये थे। शाम में भी कुछ दिन बाद झगड़े आरम्भ हुए, जिससे इसके भी कई टुकड़े हो गये और उनमें भिन्न २ प्रकार की राज्य-व्यवस्थायें स्थापित हो गयीं। इनके बीच में केल्ट लोगों की एक बस्ती गेलेशिया भी स्थापित हो गयी। ये लोग उसी जाति के थे जो उस समय गॉल (फ्रांस) में रहते थे और जो आजकल

आयर्लैण्ड और वेल्स में पाये जाते हैं। ये लोग पहले बालकन प्रायद्वीप में घुसे और यूनान आदि राज्यों को कुछ हानि पहुँचा कर—जिसका थोड़ा सा वर्णन हम पढ़ चुके हैं—अन्त में एशिया माइनर में स्थायी रूप से बस गये।

इसी समय पश्चिम में रोम और कारथेज के युद्ध संसार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने लगे थे। अब यह भी प्रत्यक्ष था कि इस समय यूनान, जो विद्रोह और कलह से जर्जर हो रहा था, उन दोनों (रोम और कारथेज) में से जो विजयी होगा उसके हाथ में चला जावेगा। इस समय तक रोमन लोग अधिक सफल हो रहे थे। अतः मैसेडोन के राजा फिलिप पंचम ने (जो २२० ई० पू० में वहाँ की गद्दी पर बैठा) रोम से एक सन्धि करने का विचार किया, परन्तु इसी समय केनी के बड़े युद्ध में रोमन हार गये और फिलिप ने इस युद्ध में सम्मिलित होकर कुछ लाभ उठाने की आशा से कारथेज के प्रसिद्ध वीर जनरल हैनीबाल से सन्धि कर ली। इसका उद्देश यह था कि रोमन लोगों को पूर्व की ओर न बढ़ने दिया जाय। उसने स्वयं भी एक सेना लेकर इटली पर आक्रमण किया, परन्तु रोमनों ने उसे हराकर भगा दिया। (२१३ ई० पू०)

२०० इस्वी-पूर्व में, द्वितीय प्युनिक युद्ध (रोम-कारथेज-युद्ध) की समाप्ति पर, रोमन लोगों ने फिर यूनान की ओर ध्यान दिया; क्योंकि उन्होंने शत्रुओं को सहायता दी थी। यूनानियों के कई दल रोमनों के साथ बड़ी वीरता से लड़े और कई बार उन्हें हराया भी। अन्त में १९७ ई० पू० में वे थिसली में बुरी तरह से हार गये और फिलिप ने सन्धि कर ली।

१७९ ई० पू० में मेसेडोन का अन्तिम राजा फिलिप पंचम का पुत्र पर्सियस, अपने पिता के मरने पर, गद्दी पर बैठा। फिलिप एक और युद्ध के लिये तैयारी करते २ मरा था। अतः पर्सियस के पास पर्याप्त सेना और धन भी था। फिर भी उसने सात वर्ष तक शान्ति रखी, किन्तु इसी बीच वह यूनान और एशिया की रियासतों को अपनी ओर मिलता रहा, जिससे रोम को ईर्षा हुई और अन्त में १७२ ई० पू० में एक रोमन के मेसेडोन में कत्ल किये जाने का बहाना लेकर उसने युद्ध की घोषणा कर दी। इतनी बड़ी शक्ति के विरुद्ध लड़ने के कारण किसी दूसरे राज्य ने पर्सियस को सहायता न दी, परन्तु वह फिर भी वीरता से तीन वर्ष तक लड़ता रहा और उसी की विजय भी होती हुई ज्ञात हुई। परन्तु इसी समय (१६८ ई० पू०) एमीलियस पालस नामक एक रोमन जनरल ने आकर अवस्था पलट दी और पिडना स्थान पर यूनानी सेना को हरा दिया। पर्सियस भागा, पर पकड़ लिया गया और पालस की विजय के चिन्ह-स्वरूप वह रोम भेज दिया गया। वहाँ वह अल्बा में अन्त समय तक कैद में रखा गया। इस भाँति मेसेडोन राज्य का अन्त हुआ और वह रोम में मिला लिया गया।

रोमन लोग केवल मैसेडोन पाकर ही सतुन्ष्ट नहीं हुए, वे सब यूनान को अधिकृत करना चाहते थे। अतः बोटिया, एपिरस आदि में भी सहस्रों मनुष्यों का वध करके उन्होंने अपना अधिकार जमाया। शीघ्र ही कोरिंथ और स्पार्टा को, आपस के कलह के कारण, नष्ट करने का मौका रोमनों को मिला। अनेक मनुष्य मारे गये, स्त्री और बालक दास बनाये गये और फिर सब यूनान एकाया के नाम रोम का एक प्रान्त बना लिया गया।

तेरहवाँ अध्याय

रोम का इतिहास

सरकार और साधारण लोगों में कलह

रोम के इतिहास का संक्षिप्त वृत्तान्त यह है कि इटली के मध्य में स्थित एक नगर के लोगों ने धीरे २ अपने को उस समस्त प्रायद्वीप का अधिपति बना लिया, जिसमें उनका नगर स्थित था। फिर उनका एक के बाद दूसरी बलवान जातियों से युद्ध हुआ और वे विजयी होकर समस्त भूमध्य-सागर के पास के देशों के भी मालिक बन गये। हमें इनकी इस वृद्धि और इनकी विजयों के कारणों पर भी विचार करना है। जिस समय वे इस भाँति वृद्धि कर रहे थे, उनमें आन्तरिक कलह भी उत्पन्न हो रहे थे, जिससे विदेशी जातियों ने उन्हें हरा कर उनके साम्राज्य के खण्ड २ कर दिये।

फिर भी रोम का इतिहास केवल भूतकाल का ही इतिहास नहीं है, वर्तमानकाल से भी उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। यहाँ की सभ्यता का यूरोप की सभ्यता पर बहुत प्रभाव पड़ा। यहाँ के राज-नियमों (कानूनों) से यूरोप ने बहुत कुछ लाभ उठाया और यहीं

के गिरजे ने समस्त यूरोप को एकता के सूत्र में बाँधा। रोमन साम्राज्य के नाम का भी सन् १८०६ तक पूर्णतया अन्त नहीं हुआ था। रोमन लोगों की बनाई हुई कई सड़कें अब तक विद्यमान हैं। यूरोप के प्रायः प्रत्येक देश के शासन-प्रबन्ध में रोम की सीनेट (परामर्श-समिति) की झलक है। इस भाँति रोम का इतिहास यूरोप के भूतकाल का इतिहास है।

रोम के इतिहास का आरम्भ भी ईसवी सन् के ८०० वर्ष पहले से होता है। इस समय उत्तर इटली में पो नदी की घाटी के आस पास केल्ट जाति से मिलते हुए कुछ लोग रहते थे, तथा लिगूरियन और यूट्रस्कन जाति के लोग भी थे। दक्षिण प्रायद्वीप में इटैलियन लोग थे जिनमें अम्ब्रियन, सेमनाइट और लैटिन आदि जातियाँ थीं।

लैटिन जाति प्रायद्वीप के दक्षिण में टाइबर नदी के मुहाने के पास खेती का काम करती थी। यहीं पर सात छोटी २ पहाड़ियों के बीच में एक नगर की उत्पत्ति हुई। परन्तु यह पता नहीं चलता कि इसकी उत्पत्ति कब और कैसे हुई। यही नगर रोम था।

रोमन लोग कुछ दिन बाद शक्तिशाली हुए तो उन्होंने प्रचलित किम्बदन्तियों के आधार पर अपनी उत्पत्ति के विषय में एक कथा बनायी। कथा इस प्रकार है। रोम के पास ही अल्बा नामक नगर में रोम्यूलस और रोमस नाम के दो भाई थे जो वहाँ के राजा की भतीजी के पुत्र थे। राजा ने इन दोनों भाइयों को टाइबर नदी में फेंकवा दिया। वे डूबे नहीं, बल्कि तैरकर नदी के किनारे लग गये। वहाँ से एक भेड़िया उनको उठा लेगया

और पालता रहा। फिर वे जंगल में घूमते हुए एक गड़रिये के हाथ पड़ गये जो उन्हें अपने घर ले गया। उसकी स्त्री ने ही इनके नाम रखे और उनको पाला। जब ये बड़े हुए तो इन्होंने वहाँ के क्रूर राजा को मार कर अपने नाना को गद्दी पर बिठाया और फिर अपने लिये टाइबर नदी के पास एक स्वतंत्र नगर बसाना आरंभ किया। इसी समय इन दोनों भाइयों में झगड़ा हो गया और रीमस मारा गया। रोम्यूलस ने इस नगर का नाम रोम रखा और वही इसका पहला राजा हुआ। इसने अपने पास बसने वाले लैटिन जाति के लोगों को परास्त किया और कई छोटे २ ग्रामों को रोम की सीमा में सम्मिलित किया। इसने ७५३ ई० पू० से ७१६ ई० पू० तक राज्य किया। उसके पीछे इसी के वंश के सात राजा और हुए जिन्होंने ५१० ई० पू० तक राज्य किया। उनके समय में रोम की सातों पहाड़ियों के चारों ओर एक भारी दीवार बनवाई गयी जो कई शताब्दियों तक रोम नगर की सीमा का काम देती रही। इन राजाओं के समय से ही रोम में नियंत्रित शासन-प्रथा का आरम्भ हो गया। राजा की सहायता के लिये राज्य के सौ मुखियाओं की एक परामर्श-समिति थी और नागरिकों की एक बड़ी सभा भी थी। इनमें सातवाँ राजा सुपर्बस बड़ा दुराचारी और क्रूर था। अतः लोगों ने अप्रसन्न होकर उसे गद्दी से उतार दिया और भविष्य में किसी को राजा न बनाने की शपथ खाई। (५१० ई० पू०)

अब रोम में प्रजातन्त्र स्थापित हुआ जो कई सौ वर्षों तक चला। राजा की जगह दो मजिस्ट्रेट नियत किये गये जो 'कोन्सल' अथवा 'प्रीटोर' कहलाते थे। ये केवल एक वर्ष के लिये चुने

जाते थे। एक साथ दो कोन्सल होने से और उनकी सहायता के लिये परामर्श-समिति होने से शक्ति विभाजित थी। अतः इनमें से कोई भी निरंकुश नहीं हो पाता था। एक साल के बाद इन्हें अपने पद से अलग होना पड़ता था, परन्तु अपने समय में वे अनुत्तरदायी होते थे। ये लोग सर्वसम्मति से प्रायः बड़े घरानों में से ही चुने जाते थे। यही यहाँ की आरम्भिक शासन-व्यवस्था के मूल-नियम थे। परन्तु कुछ दिन बाद कोन्सल बनने का अधिकार बड़े घरानों तक ही परिमित न रहा क्योंकि छोटे लोगों ने असन्तोष प्रकट कर विद्रोह कर दिया।

जिस समय ब्रूटस एक कोन्सल था उस समय बहिष्कृत राजा सुपर्बस ने आस पास के राजाओं से मिल कर और एक बड़ी सेना लेकर रोम पर आक्रमण किया। परन्तु होरेशस नामक एक वीर ने रोम के द्वार पर—टाइबर नदी के पुल पर—खड़े होकर बड़ी देर तक शत्रुओं का सामना किया और अन्त में उन्हें लौटा दिया। इस विद्रोही दल में—जो रोम की गद्दी पर बहिष्कृत राजा का पुत्र बैठाना चाहता था—कोन्सल ब्रूटस के दो पुत्र भी सम्मिलित थे; जिन्हें ब्रूटस ने राजद्रोह का अपराधी ठहरा कर प्राणदण्ड दिलवाया। ऐसे ही कार्यों के कारण उस समय रोम के लोग स्वदेश-भक्ति, न्याय, वीरता आदि में बहुत प्रसिद्ध थे। कर्तव्य के आगे वे अपने पिता, पुत्र आदि का पक्षपात न करते थे।

यद्यपि रोमन लोग एक साथ रहते, एक साथ लड़ने जाते और एक साथ समितियों में बैठते थे, फिर भी उनमें जन्म के अनुसार दो श्रेणियाँ थीं। पहली में वे लोग थे जो कुछ धनवान थे, राजाओं के समय के अधिकारियों के वंशज थे और इस

कारण अपने वंश का उनको गर्व था । ये लोग पेट्रीशियन कहलाते थे और इन्हें कुछ विशेषाधिकार भी प्राप्त थे । शेष साधारण लोग दूसरी श्रेणी में समझे जाते थे और प्लेबियन कहलाते थे । इन्हें केवल कोन्सलों को चुनने का अधिकार प्राप्त था, परन्तु इनमें से कोई भी कोन्सल नहीं चुना जा सकता था । इसके अतिरिक्त उनकी और भी कई शिकायतें थीं । उनके लिये ऋण के नियम बहुत कड़े थे । यदि वे नियत समय पर उसे न चुका सकते तो उन्हें ऋणदाता का दास बनना पड़ता था । युद्धों में जीती हुई भूमि केवल पेट्रिशियन लोग ही आपस में बाँट लेते थे और इन्हें कुछ भी न मिलता था । पेट्रिशियन अथवा सरदार लोग इन लोगों से विवाह शादी भी न करते थे । इस भाँति उन्होंने अपनी अलग एक सरदारी जाति बना ली थी । प्लैबियन लोग मजिस्ट्रेट अथवा पादरी भी नहीं हो पाते थे अतः वे केवल एक शासित जाति के लोग थे ।

इन सब बातों से दुखी होकर प्लैबियन लोगों ने अपने दुख दूर करने के लिये अधिकारियों से प्रार्थना की और उनके मना करने पर वे रोम से बाहर एक अलग पहाड़ी पर जाकर रहने लगे । (४९४ ईस्वी पूर्व) रोम उनके बिना रह नहीं सकता था क्योंकि लड़ाई के समय अधिकांश ये ही लोग काम में आते थे । अतः सीनेट (परामर्श-समिति) ने दो सरदारों को उन्हें मनाने के लिये भेजा । दूसरे वर्ष सन्धि हो गयी, जिसकी शर्त यह थी कि उनके लिये उन्हीं की जाति के मजिस्ट्रेट अलग बनाये जायँगे । ये नये बने हुए मजिस्ट्रेट 'ट्रिब्यून' कहलाये । प्लैबियनों की इस विजय का रोम के इतिहास पर बड़ा प्रभाव पड़ा । आगे चल कर ये ही ट्रिब्यून

सम्राट् बने और सम्राट् पद के लिये उनका अधिकार कोन्सलों से भी अधिक समझा जाने लगा। यह प्लैबों की पहली विजय थी। कुछ दिन बाद ट्रिब्यूनों की संख्या दस नियत की गयी। इनके अधिकार अनिश्चित तथा विचित्र थे। ये किसी पहले के मजिस्ट्रेट के निर्णय को रद्द कर सकते थे, जन-समूह की सभा अथवा कमिटियों के आगे किसी प्रस्ताव को रखने से रोक सकते थे, मुकदमे भी तय करते थे और अपने अधिकार से प्रत्येक जाति के मुखियाओं की सभा बुला सकते थे। परन्तु इस सभा के निर्णय केवल प्लैबों के लिये ही होते थे। इस भाँति रोम रियासत के भीतर इन लोगों की एक अलग रियासत बन गयी। सुप्रबन्ध के कारण यह द्वैध-शासन-प्रथा भी रोम में प्रजातन्त्र के अन्त समय तक चलती रही।

४८६ पूर्व में दूसरा झगड़ा आरम्भ हुआ, जिसका अन्त १११ तक नहीं हुआ। रोमन लोगों का यह नियम था कि विजित भूमि का दो-तिहाई भाग वे स्वयं ले लेते थे। इस भूमि पर सरदार लोग बिना निश्चित शर्तों के, जोतने बोने का अपना अधिकार कर लेते थे, परन्तु सेना में अधिकांश लोग प्लैब थे। अतः उन्होंने प्रस्ताव किया कि ऐसी भूमि गरीबों में बाँटी जाना चाहिये। कोन्सल केशियस ने ऐसा करना भी चाहा, परन्तु पैट्रिशियों अथवा सरदारों ने उसे मार डाला। प्लैबों की अधिकार-वृद्धि के लिये यह पहली बलि हुई, परन्तु १५ वर्ष बाद बाहरी शत्रुओं से डर कर सरदारों को प्लैबों के अधिकार बढ़ाने पड़े।

४६२ ई० पू० में प्लैबों के एक ट्रिब्यून ने यह प्रस्ताव किया कि यदि रोम के सब राजनियम क़लमबन्द करके प्रकाशित कर दिये

जायँ तो सब लोग उनसे अवगत हो जायँ और दोनों दलों के बहुत से झगड़े मिट जायँ। अब तक प्रत्येक मजिस्ट्रेट को अपने विचार और अपनी इच्छा के अनुसार न्याय करने का अधिकार था, जिससे प्लेबों को बहुत असुविधाएँ होती थीं। धीरे २ यह प्रस्ताव सब को उचित मालूम पड़ा और ४५५ ई० पू० में इसके लिये दस सभासदों की एक कमेटी बना दी गयी जिसने ४ वर्ष बाद बहुत से नियम प्रकाशित किये। नियम यों थे—पिता अपने पुत्र को किसी का दास बना कर बेच सकता है परन्तु इसके पश्चात् पुत्र पिता के अधिकार से बाहर हो जायगा और पिता के मरने पर उसका उत्तराधिकारी वह होगा जिसका नाम वसीयतनामे में लिखा हो। किसी नागरिक को यह अधिकार न होगा कि बिना कर दिये भूमि का मालिक बन जाय। कोई विदेशी रोम में भूमि का मालिक न हो सकेगा। ऋण का सूद १० प्रतिशत से अधिक न होगा। अन्तर्जातीय विवाह निषिद्ध है, आदि। इसी कानून-संग्रह में धीरे २ सुधार होते गये और फिर इसी के आधार पर यूरोप के अन्य देशों ने अपने२ कानून बनाये।

इसी समय अनेक बातों में समानता न होने के कारण प्लेबों ने फिर अलग होने की धमकी दी और उन्हें दूसरी विजय प्राप्त हुई। सब रोम को अब जाति के अनुसार चुने हुए प्रतिनिधियों की सभा के निर्णय को मानना आवश्यक हो गया। इस भांति कमिटियों का—जिन पर धनी लोग अपना प्रभाव जमा लेते थे—प्रभाव कम हो गया और दोनों दलों में बहुत कुछ समानता हो गई। ४४५ ई० पूर्व में एक ट्रिब्यून के प्रस्ताव पर दोनों दलों में विवाह होना भी उचित मान लिया गया और कानून से इसको

आज्ञा मिल गयी। प्लैबों ने अब उत्साहित होकर शेष एक असमानता को भी दूर करने का प्रयत्न किया। अर्थात् अब उन्होंने अपनी श्रेणी के लोगों को कोन्सल बनाने का भी प्रस्ताव किया। इस पर यह नियम बना कि दो कोन्सलों के स्थान पर एक सैनिक ट्रिब्यून (सभा) स्थापित की जा सकती है, जिसके तीन मेम्बर हों। ये दोनों श्रेणियों में से हो सकते हैं। कुछ दिन बाद यह भी नियम हो गया कि दोनों कोन्सल प्लैब भी हो सकते हैं और दो में एक का प्लैब होना तो आवश्यक ही है। फिर भी २८० ई० पू० तक किसी प्लैब का चुनाव कोन्सल पद पर नहीं हुआ।

इस भाँति ईस्वी सन् के लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व रोम के दोनों दलों का झगड़ा दूर हो गया। बिना रक्तपात के सब नागरिकों के अधिकार समान हो गये और राज्य सुदृढ़ और सुसंगठित हो गया जिससे रोम को अपने शत्रुओं पर विजय पाने में पूर्ण सफलता मिली। इतिहास में ऐसे महत्व-पूर्ण परिवर्तन इतनी शान्ति से बहुत कम हुए हैं।

चौदहवाँ अध्याय

इटली में रोमनों की विजय; समनाइत युद्ध

अब तक रोम इटली में प्रमुख नहीं था। वहाँ पर सब से प्रबल जाति यूट्रस्कन थी जो रोम के उत्तर और दक्षिण में बसी हुई थी। इस जाति के लोग धन, कला-कौशल आदि अनेक बातों

में रोमनों से बढ़े हुए थे और रोमनों ने उनसे बहुत कुछ सीखा भी था। यदि ये लोग मिल कर रोम से लड़ते तो अवश्य विजयी होते, परन्तु वे अनेक छोटी २ रियासतों में बटे हुए थे जो नाम-मात्र के लिये एक थीं।

रोम को अपनी प्रधानता प्राप्त करने के लिये युट्रस्कन तथा अन्य कई जातियों से अनेक युद्ध करने पड़े। रोम अपने पास की लैटिन रियासतों का मित्र था और उन्हींसे मिल कर यूट्रास्कन लोगों से लड़ा। शत्रुओं में दृढ़ ऐक्य न होने से रोम को अपनी विजय का पूर्ण अवसर मिला। लैटिन रियासतों के दक्षिण में उसी जाति के लोगों से मिलती जुलती और भी कई जातियाँ बसती थीं, परन्तु ये भी आपस में द्वेष रखती थीं। रोम का सिद्धान्त था 'विजय पाने के लिये शत्रुओं को विभाजित रखो।' अतः रोम ने उनमें से एक से सन्धि करके, उसके साथ दूसरी रियासतों से युद्ध आरम्भ कर दिया और इस भांति साठ वर्ष में बहुत विजय प्राप्त की। परन्तु इसी समय उसे एक और प्रबल शत्रु की ओर ध्यान देना पड़ा। उत्तर के गाल लोग बहुत दिनों से यूट्रस्कनों पर आक्रमण कर रहे थे। अब उन्हें हरा कर वे रोमनों से भिड़ गये। ३७० ई० पूर्व में रोम से ग्यारह मील पर आलिया नदी के किनारे भारी युद्ध हुआ जिसमें गालों ने अपनी भारी २ तलवारों की मार से सब रोमनों को भगा दिया। रोम के फाटक उनके लिये खुल गये और वे लोग जब रोम के सीनेट-भवन में घुसे तो वहाँ पर उन्हें अनेक दाढ़ी वाले वृद्ध सभासद मूर्तिवत् बैठे दिखाई दिये। वे लोग इन्हें पत्थर की मूर्तियाँ समझ कर रोमनों की कारीगरी पर बड़े चकित हुए और सोचने ही लगे

थे कि एक सैनिक अधिकारी ने एक सभासद् की दाढ़ी खींच ली। इस पर सभासद् ने सैनिक को एक थप्पड़ मारी। यह देख कर गाल सैनिक उन सभासदों की धृष्टता पर बड़े क्रुद्ध हुए और उन्होंने उन सब को वहीं कत्ल कर दिया। परन्तु वे लोग रोम में अधिक समय तक न रह सके वहाँ की जल-वायु भी उनके अनुकूल न हुई और उत्तर में भी उनकी आवश्यकता थी। अतः वे रोमनों से एक सहस्त्र सुवर्ण मुद्रा लेकर अपने देश को लौट गये।

गालों के लौटने पर यूट्रस्कन और रोमन लोगों ने फिर गयी हुई शक्ति प्राप्त कर ली। रोम नगर फिर बसाया गया। और दो तीन उपनिवेश भी बसाये और फिर आस पास की रियासतों को जीत कर और अधिक विस्तार बढ़ाने का विचार किया। यूट्रस्कन भी अपने निर्बल शत्रुओं से लड़ रहे थे। अतः रोम ने भी यूट्रस्कनों से युद्ध घोषणा कर दी और पहली ही बार एक प्लैब को युद्ध के लिये डिक्टेटर नियत किया। इसने यूट्रस्कनों को हराया और विजयी होकर रोम में प्रवेश किया। इसी समय गालों ने फिर इटली पर आक्रमण किया, परन्तु इस बार रोमनों ने उन्हें हरा कर लौटा दिया। इन युद्धों में रोमन इतिहास-लेखकों ने अपनी वीरता का खूब वर्णन किया है।

अब भी इटली में रोम से प्रधानता के प्राप्त करने लिये प्रतियोगिता करने वाली एक पड़ोसी जाति थी। यह बार २ हार कर भी शक्तिमान् होती रही। इसने इटली में कुछ काल के लिये एक दूसरा रोम नगर बसाया। वहाँ सीनेट और कोन्सलों की नियुक्ति की, परन्तु इसे अन्त में सुला की निष्ठुर तलवार के नीचे इसे नष्ट होना पड़ा। यह जाति सेमनाइट्स कहलाती है।

३५४ ई० पू० में रोम और सेमनाइतों में सन्धि थी, परन्तु शीघ्र ही कम्पैनिया नामक प्रान्त के लिये दोनों में झगड़ा हो गया। केम्पैनिया एक बहुत उपजाऊ प्रान्त था। यहाँ की राजधानी कैपुआ पर कुछ सेमनाइत लोग अधिकार कर स्वतन्त्र होगये और वहाँ अपना अल्पजन-सत्ताक राज्य स्थापित कर लिया। जब सेमनाइत राज्य ने इस पर अपना अधिकार करना चाहा तो इन्होंने रोम की सहायता मांगी। रोम को अपनी राजनीति दिखाने का अच्छा अवसर मिल गया। कैपुआ में कुछ लोग प्रजातन्त्र स्थापित करने के पक्षपाती भी थे, जो अधिकारी सरदारों से द्वेष रखते थे। रोम ने सरदारों का पक्ष लिया और प्रजासत्तावादियों को राजद्रोही ठहराया। अतः कैपुआ के इन लोगों ने सेमनाइत राज्य से मिल कर रोम से युद्ध आरम्भ कर दिया, परन्तु रोमनों ने उन्हें हराकर कैम्पेनिया में अपना अधिकार जमा लिया। यह पहिला सेमनाइत युद्ध है। (३४३-३४१ ई०)

परन्तु ज्यों २ रोम का प्रभाव बढ़ता जाता था, लैटिन-संघ--जिसका रोम मुखिया था—ढीला पड़ता जाता था। शेष लैटिन रियासतों को यह मालूम होने लगा कि वे रोम से मित्रता न रख कर पूर्णतया उसके अधीन हो जायँगी। अतः कुछ रियासतों ने रोम और सेमनाइतों की संधि को अस्वीकार करके सेमनाइतों से युद्ध जारी रखा। यह देखकर रोम को लैटिनों के विरुद्ध भी लड़ना पड़ा। दो बन्धु-जातियों का यह युद्ध बड़ा भयंकर हुआ। विजय-प्राप्ति के लिये एक रोमन कौन्सल को किसी देवता के गुप्त आदेशानुसार अपनी बलि देनी पड़ी। मुख्य युद्ध विसूवियस पहाड़ी पर हुआ, जिसके अन्त में रोमनों की विजय हुई

रोम ने अपनी नीति के अनुसार लैटिन संघ तोड़ दिया और प्रत्येक रियासत से अलग २ संधि की और इस भाँति केवल दो नगरों को छोड़कर समस्त लेटियम प्रदेश रोम के अधीन हो गया, परन्तु उसे नागरिकता के अधिकार फिर भी न मिले। (३३८)

दस वर्ष बाद दूसरा सेमनाइत युद्ध आरम्भ हो गया। इसका कारण यह था कि सेमनाइतों की सेना ने एक यूनानी उपनिवेश पेलोपोलिस पर अधिकार कर लिया था और वहाँ वालों ने रोम से सहायता की प्रार्थना की थी। एक रोमन सेना दो कोन्सलों सहित युद्ध के लिये भेजी गयी, जिसने जाकर शत्रुओं की पहाड़ी को चारो ओर से घेर लिया। इसी समय दोनों कोन्सल सेना-सहित एक पहाड़ी की घाटी में घुस गये जिसमें केवल एक ही मार्ग था। सेमनाइतों के सुयोग्य नेता पौंटियस ने यह देख लिया और उन्हें घेरने की सलाह दी, परंतु धर्मात्मा सेमनाइतों ने उन्हें इस तरह नष्ट करना उचित न समझा। उन्होंने रोमनों से केवल शस्त्र रखवा लिये और अधीनता स्वीकार करा ली और इस सन्धि की गारन्टी के लिये कुछ लोगों को अपने यहाँ रख कर शेष चालीस हजार सेना को निकल जाने दिया। (३२१) परन्तु रोम की सीनेट ने इस सन्धि को अस्वीकार किया और दोनों कोन्सलों को फिर सेमनाइतों को समर्पण करना चाहा, परन्तु उदार पौंटियस ने उन्हें अपने यहाँ बन्दी बना कर रखना अस्वीकार किया। फिर युद्ध आरम्भ हुआ जिसमें कई जगह रोमन जीते, परंतु ३१५ ई० पूर्व में सेमनाइतों ने लाटुली स्थान पर रोमनों को फिर हरा दिया। रोम के उपनिवेश भी ले लिये गये और रोम को इस भाँति

निर्बल देख कर उसे नष्ट करने की इच्छा से और रियासतें भी सेमनाइतों से मिल गयीं। अतः अब यह झगड़ा एक ओर केवल रोम और दूसरी ओर मध्य इटली की सब शक्तियों के बीच में रह गया।

परंतु ३१४ से रोम का भाग्य फिर पलटा। केपुआ, यूट्रूरिया, हर्नीसी आदि के विद्रोह रोमन सेनाओं ने दबा दिये और अन्त में ३०६ ई० पू० में सेमनाइत लोग भी एक बड़े युद्ध में हार गये जिसमें कहते हैं कि तीस हजार सेमनाइत कत्ल किये गये। ३०४ ई० पू० में सेमनाइत लोगों ने सन्धि कर ली और अगले छः वर्ष तक शान्ति रही। २९८ में तीसरा सेमनाइत युद्ध आरम्भ हो गया।

अब इटली में पूर्णतया रोम की प्रधानता स्थापित हो गयी थी। इस वैभव को पास की रियासतें सहन न कर सकीं। उत्तर की ओर से गॉल लोग भी यूट्रूरिया तक बढ़ आये थे। अब सेमनाइतों ने गॉलों से लिखा पढ़ी करके मित्रता कर ली और यूट्रस्कन भी उन्हीं की ओर मिल गये। रोम की सीनेट ने इनका सामना करने के लिये अपने पुराने वीर फेबियस को कोन्सल बनाया।

इसी संकट के समय बेलोना देवी की मूर्ति बहुत नीचे उतर आयी, और जूपिटर के मन्दिर से रक्त-मिश्रित दूध और शहद बहने लगा। इन घटनाओं से भय के कारण उनमें वीरत्व का संचार हुआ और सब स्वतंत्र नागरिक भी सेना में भर्ती होकर मरने को तैयार हो गये। २९५ ई० पू० में कई जगह युद्ध आरम्भ हो गए जिसमें बड़ी कठिनाई के बाद रोमन लोगों की विजय

हुई। उन्होंने सेन्टियम स्थान पर गॉलों को और कम्पैनिया में यूट्रस्कनों को हरा दिया और २९० में गॉलों से सन्धि हो गयी। परन्तु यूट्रस्कन फिर भी लड़ते रहे और उन्होंने गॉलों को फिर अपनी सहायता के लिये बुलाया, और सेमनाइट्स आदि कुछ जातियाँ भी उनकी ओर थीं। दो वर्ष बाद शत्रुओं का प्रसिद्ध जनरल पौन्टियस रोमनों के हाथ पड़ गया, जिसे उन्होंने मरवा डाला। उसकी मृत्यु होते ही उन लोगों का उत्साह मन्द पड़ गया। वेडि-ओनियन झील पर भारी लड़ाई हुए जिसमें रोम की श्रेष्ठता पूर्ण-तया स्थापित हो गयी और सब शत्रु रियासतों ने आपस की मित्रता छोड़ कर रोम से अलग २ सन्धियाँ कर लीं। गॉल फिर पीछे हटा दिये गये और उनकी बहुत सी भूमि पर रोमनों ने अपना अधिकार कर लिया। इस प्रकार रोम का विस्तार बढ़ता गया और वहाँ की जातियाँ भी बढ़ीं, यहाँ तक कि इस शताब्दी के अन्त तक जातियाँ इक्कीस के स्थान पर इकतीस हो गयी थीं। रोम के उपनिवेश भी धीरे २ बढ़ते गये। इन सब अधिकृत भागों के निवासियों को स्थानीय नागरिकता के अधिकार दे दिये गये थे, परन्तु वे रोम की कमेटियों में न बैठ सकते थे और न कौन्सल बनाये जा सकते थे।

इस भाँति सेमनाइट युद्ध समाप्त हुआ और रोम इनमें विजयी हुआ और उसका विस्तार बढ़ा।

पन्द्रहवाँ अध्याय

रोमन-संसार और यूनानी-संसार

इन विजयों के बाद भी रोमन लोग शान्ति से न रह सके। अब उन्हें यूनानी संसार का सामना करना पड़ा। जिस समय रोम सेमनाइतों से लड़ रहा था उसी समय सिकन्दर महान अपनी विश्वविजय में लगा था। परन्तु जब रोम ने सेमनाइतों को हरा कर अपना राज्य संगठित किया, उस समय तक सिकन्दर के साम्राज्य का पतन हो चुका था और उसके जनरलों ने भिन्न २ देशों पर अधिकार कर लिया था, जिसका हाल हम पहले पढ़ चुके हैं। यूनान में सिकन्दर के वंश का ही राज्य रहा, यद्यपि उसका विस्तार बहुत कम हो गया था। २५४ ई० पू० में वहाँ पर पाइरस नाम का राजा हुआ। इसने अपनी युवावस्था में बड़ी २ वीरता के काम किये थे। वह अपने समय का सब से अच्छा और वीर जनरल था, तथा सिकन्दर के छेड़े हुए महत्त्वपूर्ण कार्य—अर्थात् यूनानियों द्वारा विश्वविजय को पूरा करना चाहता था।

इस समय तक यूनान के पुराने बसाये हुए अनेक उपनिवेशों और यूनानी रियासतों यथा—सिराक्यूज़, थर्ली, क्रोटन, रेजियम आदि पर रोमनों ने अपना अधिकार कर लिया था और कुछ स्थानों पर अन्य राज्यों ने अपना दखल जमा लिया था। अब तक

यूनानी रियासतें इन सब घटनाओं को चुपचाप देखती रहीं, परन्तु अब उन्हें रोम की वृद्धि देखकर भय हुआ। २८२ ई० पू० में रोम ने टेरेन्टम नामक एक यूनानी रियासत में, सन्धि की शर्तों के विरुद्ध, प्रवेश किया। इस पर टेरेन्टम ने एपिरस अर्थात् यूनान से सहायता की प्रार्थना की। इसे सुनकर राजा पाइरस फौरन ही २०,००० पैदल, २००० धनुर्धर और ३००० सवार और २० हाथी लेकर इटली को चल दिया। रोम ने भी अपनी सेनाएँ टेरेन्टम की ओर भेजीं। अब रोमनों को यूनानी फैलेंक्स का सामना करना था। रोमन सेनाओं ने सात बार फैलेंक्स पर आक्रमण किया परन्तु बार बार उन्हें पीछे लौटना पड़ा। अन्त में यूनानी सेना के हाथियों ने बढ़ कर, जिनको रोमनों ने अब तक कभी न देखा था और जिन्हें इस युद्ध में देखकर वे बहुत डर गये थे, थकी हुई रोमन सेनाओं को कुचल दिया जिससे ७००० रोमन सैनिक मर गये और २००० बन्दी बना लिये गये। परन्तु यूनानियों के भी ४००० वीर सैनिक इस हेरेक्ली के युद्ध में काम आये। यद्यपि इस विजय के बाद कई रियासतें यूनान से मिल गयीं, और कइयों ने रोम के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया, परन्तु यूनान की भारी हानि हो चुकी थी, उसके लिये यह विजय बड़ी महँगी थी। अतः पाइरस ने रोमनों के पास एक दूत भेजा कि यदि रोमन सेनाएँ सब यूनानी नगरों से हट जाँय और सेमनियम, ल्यूकेनिया तथा ब्रूटियम उपनिवेशों को खाली कर दें तो वह सन्धि के लिये तैयार है। रोम की सीनेट इस पर तैयार थी, परन्तु एक वृद्ध सभासद क्लाडियस ने इसके विरुद्ध एक बड़ी ओजस्वी वक्तृता दी। इसके प्रभाव से सीनेट ने उत्तर दिया कि जब तक पाइरस इटली की

भूमि पर रहेगा तब तक रोमन लोग बराबर युद्ध करते रहेंगे। पाइरस अब तीन वर्ष के लिये सिसली चला गया, जहाँ पर कारथेज की सेनाएँ वहाँ बसे हुए यूनानियों को कष्ट दे रही थीं। उसने उन सेनाओं को हराकर पीछे हटा दिया पर वह उन्हें पूर्णतया सिसली से बाहर न निकाल सका। इस बीच में रोमन लोगों ने अपनी सेना फिर संगठित कर ली थी और जब पाइरस सिसली से लौटा, तो २७५ ई० पू० में बेनीवेन्टम स्थान पर उसे अच्छी तरह हरा दिया। पाइरस देश को लौट गया और वहाँ कुछ दिन बाद मर गया। इस भाँति रोमनों ने अपनी सैनिक चतुरता, दृढ़ता, और प्रगाढ़ देश-भक्ति के कारण वीर यूनानियों पर भी विजय पायी। उनकी ऐसी चतुरता देखकर ही एक बार पाइ-रस ने कहा था—'यदि मैं रोमनों का राजा होता तो संसार को जीत लेता।' अब रोम ने सब रियासतों पर फिर अधिकार कर लिया। बेनीवेन्टम एक लैटिन उपनिवेश बना और टैरेन्टम भी रोम के अधिकार में आ गया। यह देखकर कारथेज, मिश्र आदि ने भी रोम से सन्धि कर ली।

इन युद्धों के साथ ही साथ रोम के प्राचीन सदाचारमय धार्मिक और सच्चे जीवन का अन्त होता है। यह युग रोमन इतिहास में 'सुनहरा युग' (गोल्डन एज) कहलाता है। इस समय तक उनकी रहन-सहन बिलकुल साधारण थी, उनमें छल-कपट का भाव नहीं था, उनमें वीरता और देश-भक्ति थी और कर्त्तव्य-पालन के आगे वे अपने बन्धु-बान्धवों तथा पिता-पुत्रों का भी मोह छोड़ देते थे। अपनी विजय के लिये कई रोमन कौंसल, एक गुप्त विश्वास के कारण, युद्ध में सब से आगे बढ़ कर बलिदान हो गये।

अब तक सब रोमन भाई-भाई थे और कन्धे से कन्धा मिला कर लड़ते थे। इन सब गुणों के विषय में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। कहते हैं कि जब पाइरस रोम से युद्ध कर रहा था और विजय प्राप्त कर रहा था तो पाइरस का एक वैद्य रोमनों से आकर मिल गया और उनसे उसने प्रस्ताव किया कि यदि वे कहें तो वह राजा पाइरस के विष खिला सकता है। रोमनों ने उस वैद्य को पाइरस के पास भिजवा दिया और सब भेद खोल दिया। उनकी इस सत्य-प्रियता पर पाइरस बहुत प्रसन्न हुआ। परन्तु इस समय से आगे रोमन अपने शुद्धाचरण से गिरते गये। यद्यपि आगे भी वे बड़ी वीरता से लड़े और अनेक युद्धों में विजयी हुए, परन्तु कहीं २ पर वे छल, क्रूरता तथा निर्दयता से भी काम लेने लगे थे।

रोम की आगे की विजयों को देखने से पहले हमें यहीं कुछ ठहर कर उसके राज्य-प्रबन्ध और उसकी विजय के कारणों को भी देखना चाहिये।

हम पहले पढ़ चुके हैं कि ५१० में रोम में प्रजातन्त्र का आरम्भ हुआ और राजा के स्थान पर दो कोन्सल नियत किये जाने लगे जिनका कार्य-काल केवल एक वर्ष होता था। वर्ष समाप्त होने पर अपने अधिकार छोड़ कर उन्हें अलग हो जाना पड़ता था। कुछ दिन बाद ऐसे भी अवसर आये जब कोन्सलों ने एक वर्ष के बाद अपने अधिकार छोड़ने से इनकार कर दिया अथवा युद्धादि के समय सीनेट ने ही उनके कार्यकाल बढ़ा दिये। एक बार एक कोन्सल लगातार ४-५ वर्ष तक अपने पद पर रहा। कार्य-समिति के लिये इन कोन्सलों के नीचे बहुत से छोटे २ अधिकारी होते थे और ट्रिब्यून अर्थात् प्लैब लोगों के मजिस्ट्रेट भी

शासन-कार्य में भाग लेते थे। युद्ध के समय ये कोन्सल ही सेना-पति भी बना दिये जाते थे परन्तु विशेष अवसरों के लिये जैसे युद्धादि के समय जब शीघ्र निर्णय की आवश्यकता होती थी और सीनेट आदि में विवाद करने का समय नहीं होता था, तो सीनेट किसी एक बलवान् और योग्य मनुष्य को 'डिक्टेटर' अर्थात् पूर्ण स्वतन्त्र अधिकारी नियत कर देती थी। इसका कार्य-काल केवल छः मास का होता था परन्तु अपने समय में वह पूर्ण स्वेच्छाचारी और निरंकुश रहता था। वह परिमित समय के लिये मानों निरंकुश राजा था।

कोन्सलों की सहायता के लिये दो सभाएँ होती थीं। पहली सीनेट अथवा परामर्श-समिति थी जिसमें नगर के बड़े, अनुभवी तथा उच्च घराने के आदमी आजन्म के लिये सभासद बना दिये जाते थे। इस समिति का काम कोन्सलों को सलाह देना और नये कोन्सलों अथवा डिक्टेटरों को नियत करना था। दूसरी सभा के सब नागरिक सभासद थे और इसे भी बहुत से अधिकार प्राप्त थे। यदि कोई मनुष्य कोन्सलों के निर्णय से असन्तुष्ट होता तो वह अपने मुकद्दमे की अपील इस बड़ी सभा में कर सकता था और नये कानून भी इसी सभा में बनते थे। यह बड़ी सभा 'कमिटिया' कहलाती थी। पहले इसमें केवल रोम नगर के निवासी ही, जिन्हें नागरिकता के अधिकार प्राप्त थे, सभासद हो सकते थे; परन्तु रोम के विस्तार के साथ २ बाहर के मनुष्यों को भी इसमें बैठने का अधिकार मिला, जिससे धीरे २ इसका प्रभाव कम होता गया। इन तीन शक्तियों—कोंसल अथवा डिक्टेटर, सीनेट और कमिटिया में बहुत काल तक प्रतिद्वन्द्विता होती

रही। नागरिक सभा अथवा कमिटिया का अधिकार थोड़े ही दिन रहा, फिर सीनेट प्रबल हो गयी जिसके अन्त में साम्राज्य का उद्भव हुआ। इन झगड़ों में लगभग ५०० वर्ष लगे।

अब हमें उन कारणों को भी जानना चाहिये जिनके कारण सात पहाड़ियों के बीच का एक छोटासा नगर समस्त इटली और भूमध्यसागर का भी मालिक हो गया।

यूरोप पर रोम साम्राज्य का प्रभाव जैसा स्थायी हुआ वैसा सिकन्दर के यूनानी साम्राज्य का नहीं हुआ था। यूनानी साम्राज्य स्थापित होते ही नष्ट हो गया, परन्तु रोमन साम्राज्य स्थापित होने से यूरोप में सार्वजनिक व्यवस्था और संगठन का आरम्भ हुआ।

रोम की इस विजय का पहला कारण तो उसका सैन्य-संचालन और युद्ध-कला में उसकी निपुणता है। उसकी सैनिक शिक्षा स्पार्टा के मुकाबले की थी। लड़ाइयों में हार जाने पर भी अन्त में रोमनों की ही विजय होती थी क्योंकि वे अन्त तक दृढ़ रह कर लड़ने के लिये तैयार रहते थे।

दूसरे रोम में सड़कें होने से भी उन्हें सहायता मिलती थी। वे अति शीघ्र शत्रु-सेना पर आक्रमण कर सकते थे। उनकी सेनाएँ शत्रु-दल के मध्य में घुस सकती थीं, विद्रोहों के बढ़ने के पहले ही दबा सकती थीं और व्यापार आदि भी इन्हीं से हो सकता था। शत्रुओं को इन सड़कों से होकर रोम में आने से रोकने के लिये कुछ रोमन लोग विजित देशों में रख दिये जाते थे जिनका व्यय विजितों से ही लिया जाता था। इस प्रकार नियत किये हुए लोग भी रोमन नागरिक समझे जाते थे और उन्हें अपनी सैनिक शक्ति कायम रखनी पड़ती थी। इन्हीं बस्तियों को वे

'कालोनी' अथवा उपनिवेश कहा करते थे, जिसका कुछ हाल हम पहले पढ़ चुके हैं और इन्हीं से कई रोमन नगरों की स्थापना हुई।

तीसरा कारण यह था कि रोमन लोग विजित देशों को अपने देश में नहीं मिलाते थे, बल्कि केवल उन्हें मित्र कहते थे। परन्तु ऐसे देशों को रोम की सहायता के लिये अपनी कुछ सेना देनी पड़ती थी और कुछ कर भी। इस उदारता के कारण विजित देश रोम के प्रति भक्त रहे और अनेक प्रलोभन मिलने पर भी उसके विरुद्ध न हुए।

अन्तिम कारण डिक्टेटर नियत करने की प्रथा थी। वैसे तो रोमन लोग स्वतंत्रता को बहुत पसन्द करते थे, परन्तु आवश्यकता के समय अपनी स्वतंत्रता छोड़ कर डिक्टेटर को पूर्ण स्वतंत्र बना देते थे। सब में समानता और देशभक्ति होने के कारण उन्हें यह भी विश्वास था कि छः मास का काल समाप्त होने पर डिक्टेटर अपने अधिकार त्यागने से इनकार न करेगा और यही हुआ। इन्हीं कारणों से रोम ने इतनी महत्ता प्राप्त की।

सोलहवाँ अध्याय

रोम और कार्थेज

प्यूनिक युद्ध

हम देख चुके हैं कि रोम ने सिसली के कुछ भाग तक अपना अधिकार कर लिया था। यहाँ आकर आस पास के देशों

पर भी अधिकार करने की इच्छा हुई जिससे रोम को और कई युद्ध करने पड़े।

सब से पहले उसे उत्तर अफ्रिका के एक बड़े और प्रसिद्ध नगर कारथेज से सामना करना पड़ा। यह पहले फोनेशी लोगों का एक उपनिवेश था, परन्तु शीघ्र ही अपना व्यापार खूब बढ़ाकर स्वतंत्र हो गया। इसकी वृद्धि और शक्ति का एकमात्र कारण उसका व्यापार ही था। समस्त उत्तर अफ्रिका, स्पेन का आधा दक्षिणी भाग, कोर्सिका, सार्डिनिया तथा सिसली के बहुत से भागों में उसका अधिकार था। उसकी व्यापारिक बस्तियाँ समस्त भूमध्यसागर में फैली हुई थीं जिनका केन्द्र माल्टा था। व्यापारिक नगर होने से यहाँ का शासन-प्रबंध भी कुछ (१०४) व्यापारियों के ही हाथ में था।

ज्यों २ रोम की वृद्धि हुई त्यों २ कारथेज के व्यापारियों को अपने व्यापार की चिन्ता होने लगी। दूसरे यह बात भी निश्चित होने को थी कि सिसली का मालिक कौन होगा और भूमध्यसागर पर किसका आधिपत्य रहेगा। इन्हीं बातों का निर्णय करने के लिये दोनों शक्तियों का सिसली की सुन्दर भूमि पर युद्ध हुआ।

इटली और सिसली के बीच में मेसिना नाम का एक छोटा सा नगर है, जो उस समय यूनानी लोगों के अधिकार में था। कम्पैनिया के कुछ सैनिकों ने उसे छीनकर अपना बनाना चाहा। यह देख कर एक ओर से कारथेजवालों ने और दूसरी ओर से सिराक्यूज नामक एक प्राचीन यूनानी उपनिवेश ने उन सैनिकों पर आक्रमण किया। इस पर उन सैनिकों ने अपने बान्धव—रोमनों से सहायता की प्रार्थना की और रोमन सेना लेकर चल दिये।

इस भाँति २६४ ई० पू० में युद्ध आरंभ हो गया। आते ही रोम की ३५,००० सेना ने विजय प्राप्त की और सिराक्यूज का राजा दो सौ टैलेण्ट क्षति-पूर्ति का देकर रोम का मित्र हो गया। २६२ ई० पू० से उनका कार्थेजीय सेना से सामना हुआ जिसको हराने में रोमनों को सात महीने तक कठिन परिश्रम करना पड़ा। अतः उन्हें यह अनुभव हो गया कि कारथेज वालों को बाहर निकालने के लिये एक दृढ़ बेड़े की आवश्यकता है। फलतः शीघ्र ही उन्होंने एक भारी बेड़ा तैयार करके २६० ई० पू० में कार्थेजीयन सेना को मीली स्थान की बड़ी लड़ाई में हरा दिया।

कार्थेजीयन सेना की हार का कारण यह था कि रोम के पास नागरिकों की ही देश-भक्त सेना थी, परन्तु कार्थेजवालों की सेनाएँ किराए की थीं, जो अपने वेतन की ही अधिक चिन्ता करती थीं। वे अच्छे जनरल के अधीन वीरता से लड़ती थीं, परन्तु संकट नहीं सह सकती थीं और न उनमें ऐक्य तथा संगठन था। वे उन विजित जातियों में से भर्ती की गयी थीं जो कार्थेज के प्रति भक्त न थीं और शत्रु से मिल जाने को तैयार थीं। दूसरे वहाँ पर हारे हुए जनरलों को प्राण-दण्ड दे दिया जाता था जिससे वे अनुभव प्राप्त करने के पहले ही यमलोक पहुँच जाते थे। यह भी एक बड़ा दोष था।

२५६ ई० पू० में रोमनों ने उन्हें एक बार और हराया, परन्तु अब उन्हें एक योग्य वीर जनरल हेमिल्कार मिल गया था। इसने दूसरे वर्ष रोमन सेनाओं को पूर्णतया पराजित किया और अपने देवता पर सैकड़ों रोमनों को भेंट में चढ़ा दिया। हारे हुए लोगों की सहायता के लिये जो जल-सेना भेजी गयी वह भी तूफान के

कारण नष्ट हो गयी। इससे रोम की सीनेट को बड़ी निराशा हुई। फिर भी धैर्य रखकर उसने २५१ ई० पू० एक बड़ी सेना और भेजी जिसने पेनोर्मस स्थान पर कार्थेजीयन सेना को हराकर उनके १२० हाथी छीन लिये जिनसे डरकर पहली बार रोमन सेना हार गयी थी। फिर भी संधि न हुई और दस वर्ष तक रोमन सेना लिलीबियम स्थान पर घेरा डाले रही। दो बार वह हरायी गयी। २४९ ई० पू० में उसकी सहायता के लिये जो सेना आयी वह ऐसी नष्ट की गयी कि उसका एक तख्ता भी फिर काम के योग्य न रहा! अन्त में रोम के स्वतंत्र नागरिकों ने स्वेच्छा से सेना में भर्ती होकर युद्ध के लिये प्रस्थान किया और २४२ में उन्होंने कार्थेजीयन सेना को लिलीबियम के पास हरा दिया जिससे थक जाने के कारण कार्थेजवालों को दूसरे वर्ष सन्धि करनी पड़ी। इस सन्धि के अनुसार उन्होंने क्षतिपूर्ति के लिये ३२०० टैलेन्ट दस वर्ष के अन्दर देना, रोमन कैदियों को मुक्त करना, और सिसली को खाली करना स्वीकार कर लिया। इस भाँति सिसली और कुछ दिन बाद सार्डिनिया रोम के हाथ में आये, जो समुद्र पार के उनके पहले ही उपनिवेश थे। इनके प्रबन्ध के लिये एक २ रोमन मजिस्ट्रेट—प्रीटोर—रहने लगा। इस भाँति २६४ से २४१ ई० पू० तक पहिला प्यूनिक अथवा कार्थेजीय युद्ध हुआ। इसमें रोम के लगभग ५०,००० मनुष्य मारे गये।

इसके बाद २१८ ई० पू० तक कार्थेज के साथ शान्ति रही। इस समय में रोम ने आल्प्स पर्वत तक अपना विस्तार बढ़ा लिया था और फ्रांसवालों को हराकर वहाँ भी अधिकार कर लिया था। इस समय सार्डिनिया में कुछ कार्थेज-निवासियों ने विद्रोह किया।

इस बहाने को लेकर रोम ने वहाँ पर आक्रमण कर दिया और बहुत से निवासियों को मारकर वहाँ अपना अधिकार जमा कर सैकड़ों कार्थेजीयों को दास बना लिया। जब कार्थेज ने इस बात की निंदा की तो घमंडी रोम ने उसे अपना अपमान करना कहकर कार्थेज से बलपूर्वक एक सहस्र टैलेन्ट और वसूल किये। रोम के इन क्रूर कार्यों से कार्थेज के वीर जनरल हेमिल्कार को उनके प्रति बड़ी घृणा हो गयी और उनसे बदला लेने के लिये वह चल पड़ा। उसने अपने नौ वर्ष के पुत्र हनीबाल से भी वेदी पर हाथ रखवाकर शपथ कराई कि जब तक वह जीवित रहेगा बराबर रोम से शत्रुता रखेगा और युद्ध करके उनसे बदला लेगा। (२३८ ई० पू०)

२२५ ई० पू० लगभग गॉल लोगों के आक्रमण करने का समाचार रोम में पहुँचा। इससे उन्हें बड़ा भय हुआ और प्राचीन प्रथा के अनुसार उन्होंने एक गॉल और एक यूनानी स्त्री-पुरुष के जोड़े को एक देवता को भेंट चढ़ाकर उसीके मन्दिर के नीचे जीवित गाड़ दिया। गॉल लोग आगे बढ़ आये और उन्होंने रोमन सेनाओं को हरा कर भगा दिया, परन्तु इसी समय दो कोन्सल नयी सेना लेकर आ गये और उन्होंने गॉलों को हरा-कर पीछे लौटा दिया।

दूसरी ओर कारथेज भी अपना विस्तार बढ़ा रहा था। जनरल हेमिल्कार ने स्वयं स्पेन में सेना ले आकर उसे अपने अधीन किया, परन्तु इसी समय वह मर गया और उसके सुयोग्य वीर पुत्र हनीबाल ने उसका कार्य अपने हाथ में लिया। वह बचपन में अपने पिता के साथ कई युद्धों में अनुभव प्राप्त कर चुका था

और उसे पिता के सामने खाई हुई शपथ अब तक खूब याद थी। वह रोमनों से बदला लेने के लिये व्याकुल था। २२१ ई० पू० में २६ वर्ष की आयु में वह अपने पिता की सेना का नायक हुआ और दो वर्ष बाद ही उसने स्पेन की सीमा के पास के सेगन्तुम नामक नगर पर आक्रमण करके उसे नष्ट कर दिया। वहाँ के रोमन निवासी एक चिता बनाकर उसमें भस्म हो गये। हनीबाल का यह कार्य अनुचित था क्योंकि रोमनों ने हेमिल्कार से सन्धि करके यह शर्त ठहरा ली थी कि वह स्पेन की एब्रो नदी के पूर्व की ओर आगे न बढ़ेगा।

यह समाचार सुनकर रोम की सीनेट में युद्ध करने या न करने पर बड़ा विवाद हुआ। प्लैब अथवा साधारण जनता युद्ध के विरुद्ध थी परन्तु सरदारों की सम्मति के अनुसार युद्ध करना ही निश्चित हुआ और सीनेट ने एक प्लैब कोन्सल को सेना सहित सीधे कारथेज पर आक्रमण करने के लिये सिसली की ओर भेजा। एक दूसरे पैट्रीश कोन्सल को स्पेन इसलिये भेजा कि वह हानीबाल को स्पेन से आगे न बढ़ने दे। यह कोन्सल मार्सलीस ही तक पहुँच पाया था कि उसने सुना कि वह युवक स्पेन से बहुत दूर चला आया है और पैरेनीज पर्वत श्रेणी, रोन नामक तीव्र नदी और आल्प्स सरीखे दुर्गम पर्वत को भी पार कर इटली में प्रवेश करना चाहता है। अवश्य ही हानीबाल बड़ी २ आपत्तियों को सह कर युक्तिपूर्वक आल्प्स के इस पार आ गया था, यद्यपि उसकी बहुत सी सेना वहाँ नष्ट हो चुकी थी।

अब रोम को ऐसे भारी युद्ध में प्रविष्ट होना पड़ा जैसा उसने आज तक कभी नहीं किया था। यह दूसरा प्यूनिक अथवा कारथे-

जीयन युद्ध था, जो रुक २ कर २१८ से २०२ ई० पू० तक चला।

हनीबाल स्पेन से ९०,००० पैदल, १२००० सवार, तथा ३७ हाथी लेकर चला था परन्तु थोड़ी दूर चल कर उसने १०,००० पैदलों को—जो निर्बल-हृदय होने के कारण इस महाप्रस्थान की कठिनाइयाँ न सह सकते थे—लौटा दिया और १०,००० पैदल तथा १,००० सवार उसने अपने और स्पेन के बीच में सम्बन्ध बनाये रखने के लिये रोन नदी के पास छोड़ दिये थे। शेष को लेकर उसने रोन नदी पार की। परन्तु जब वह आल्प्स की घाटियों में से गुज़र रहा था तो पहाड़ी जातियों ने उसकी सेना पर भारी २ पत्थर बरसाना शुरू किया जिनसे उसने अपनी सेना की बड़ी कठिनाई से रक्षा की। कुछ लोग जो पीछे रह गये थे, वे पत्थरों तथा जंगली जानवरों से मारे गये और कुछ थक-कर मर गये। इस भाँति जब वह इटली के समीप पहुँचा तो उसके पास केवल २०,००० पैदल और ६००० सवार थे। उधर रोमन सेना १२०,००० थी और समय पर और भी बढ़ायी जा सकती थी।

रोमन कोन्सल सिपियो जो हनीबाल को रोकने के लिये स्पेन की ओर भेजा गया था अब उसका मार्ग रोकने के लिये टिसिनस नदी के पास पहुँचा। यहाँ पर दोनों दलों की पहली मुठभेड़ हुई। वीर कारथेजी सैनिक बिना जीन तथा बिना लगाम के घोड़ों पर बैठे हुए, एक हाथ में ढाल और एक हाथ में तलवार लिये हुए और कन्धे पर केवल एक व्याघ्रचर्म डाले हुए—जो दिन में उनका वस्त्र और रात में एक मात्र बिस्तर था—शत्रु दल के बीच में घुस गये और उन्हें तितर-बितर करके पीछे भगा दिया। कोन्सल सिपियो बुरी तरह घायल हुआ और मारा गया होता यदि उसके

१७ वर्षीय वीर पुत्र ने—जो कुछ दिन बाद हनीबाल को भी हराने वाला था—आकर उसकी रक्षा न की होती।

अब अनेक गॉल लोग—जिनसे सहायता मिलने की हनीबाल को बहुत आशा थी, उसकी ओर आकर मिलने लगे। एक गॉल सेना ने जो रोम के अफसरों के अधीन थी, उन्हें मारकर हनी-बाल से मिलने के लिये प्रस्थान कर दिया, परन्तु कुछ गॉल रोम की ओर भी मिले रहे।

अब ऐपेनाइन पर्वत-श्रेणियों के बीच में ट्रेबिया नदी के पास हनीबाल ने कुछ सैनिक छिपाकर और कुछ को अपने साथ लेकर रोमन सेनाओं पर आक्रमण कर दिया। जब रोम की सेनाएँ पार होकर आगे बढ़ीं तो दूसरी ओर से छिपी हुई कार्थेजी सेना ने उन पर हमला कर दिया जिससे डरकर ४००० की एक रोमन सेना भाग गयी और शेष १०,००० की सेना को कारथेजियों ने दूसरी लड़ाई में हरा दिया। यह रोम के लिये बड़े संताप और संकट का समय था, उसके सैकड़ों सैनिकों का रक्त नदी की धार की तरह बह निकला।

रोम ने फिर भी धैर्य रखा। सिसली, सार्डिनिया आदि को शान्त रखने के लिये उसने वहाँ सेनाएँ भेज दीं और चार नयी सेनाएँ भर्ती करके नये वर्ष के दो कोन्सलों के साथ हनीबाल से सामना करने के लिये भेजीं।

उधर हनीबाल अपने व्यवहार के कारण गॉलों को भी भक्त बना लेने में समर्थ हुआ और अब बढ़ कर यूट्रस्कन देश तक आ गया। २१८ ई० पू० में ट्रेसीमीन झील पर फिर भारी युद्ध हुआ जिसमें हनीबाल ने युक्ति से रोमनों को तीन ओर से घेर लिया।

और चौथी ओर झील थी। बारूद के धुएँ में खूब युद्ध हुआ, यहाँ तक कि जब धुआँ दूर हुआ तो मालूम हुआ कि १५,००० इटलीवासी समर-भूमि में पड़े हैं, जिनमें सेनानायक कोन्सल भी था। इस भारी पराजय का समाचार बड़ी शीघ्रता से रोम में फैल गया और जब युद्ध से भागे हुए मनुष्य वहाँ पहुँचे तो समस्त नगर में शोक छा गया।

अब हनीबाल रोम से केवल ८० मील के फासले पर था। अतः रोमवालों ने भय से उसके रक्षा का और अधिक प्रबन्ध किया, परन्तु हनीबाल रोम में नहीं आया क्योंकि वह जानता था कि 'इटलीवालों को इटलीवालों द्वारा ही जीता जाना सम्भव है।' इस विचार से रोम में प्रवेश करने के पहले उसने इटली की कुछ रियासतों को अपनी ओर करना चाहा। इस समय हनीबाल केनी नामक एक स्थान पर आ गया था। यहीं पर रोम ने उसके मुकाबले के लिये फिर उससे दूनी सेना भेजी। हनीबाल के पास अब भी पुराने दो हज़ार वीर सवार थे। रोम की सेनाएँ कोन्सल वेरो तथा और कई जनरलों के अधीन थीं। युद्ध आरम्भ हुआ। इसी समय स्पेन से हनीबाल का भाई हेसड्रूबाल अपने अधीन एक सेना लेकर वहाँ आ गया। रोमनों ने घिर कर खूब घमासान युद्ध किया। आठ घण्टे तक बराबर उन पर चारों ओर से तलवारें चलीं। सूर्य नारायण अस्ताचल की ओर जाने लगे परन्तु जाते जाते उन्होंने देख लिया कि रोम के ५०,००० वीर सैनिक ६० सीनेट के सभासद तथा अनेक सरदार कट कर रक्तमय समर-भूमि में पड़े हैं। कोन्सल वेरो बचे हुए सैनिकों को लेकर एक सुरक्षित स्थान पर चला गया। रोमन लोगों ने इस हारे हुए

सेनापति को कारथेजियों की भाँति प्राण दण्ड नहीं दिया बल्कि उसे आश्वासन दिया। रोम पर ऐसी भारी २ विपत्तियाँ एक साथ कभी नहीं पड़ी थीं। समस्त नगर में हाहाकार मचा था। स्त्रियों का चीत्कार सुन कर हृदय पिघल जाता था।

परन्तु रोमन लोगों में धीरता और वीरता थी। इतने पर भी वे निराश नहीं हुए। हनीबाल ने उनके २०,००० कैदियों को रोम वापस भेजा और यह कहलवाया कि यदि रोम उन कैदियों के बदले का रुपया दे दे तो वह (हनीबाल) सन्धि करने को तैयार है। रोमनों ने उत्तर दिया कि हम लोग ऐसे मनुष्यों को सुवर्ण देकर मोल नहीं ले सकते जो युद्ध में मरने के स्थान पर शत्रुओं की अधीनता स्वीकार कर लेते हों। इस उत्तर को पाकर हनीबाल कुछ उदास भी हुआ और रोमनों की वीरता पर कुछ प्रसन्न भी।

सत्रहवाँ अध्याय

रोम और कार्थेज

प्यूनिक-युद्ध; भाग्य-परिवर्तन

सीनेट के खाली स्थानों को भरने के लिये डिक्टेटर फेबियस ने उन सब को सभासद बनने का अधिकार दे दिया जो पहले नीचे के पदों पर काम कर चुके थे, अथवा जिनके घर में युद्ध में

शत्रुओं का लूटा हुआ कुछ सामान था अथवा जिन्होंने युद्ध-स्थल में अपने किसी जाति-बन्धु की जान बचाई थी। इसी समय यह समाचार पाकर रोम में बहुत हर्ष मनाया गया कि सिपियो के अधीन सेना ने हेसड्रूबाल की सेना को जो इटली की ओर बढ़ रही थी हरा दिया है।

केनी युद्ध में विजय पाकर हनीबाल ने कम्पैनिया के प्रधान नगर केपुआ पर अधिकार कर लिया। परन्तु वे लोग हनीबाल के अधीन नहीं हुए। हनीबाल जाड़े की ऋतु में वहीं ठहरा रहा। इसके बाद उसने इटली के नगरों के उन दलों को जो रोम से सदा असन्तुष्ट रहते थे, अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया। इसमें उसे कुछ सफलता मिली भी।

उधर रोम बराबर धन और जन का संग्रह कर रहा था। शीघ्र ही वहाँ आठ नई सेनाएँ तैयार हो गईं। हनीबाल ने १२०,००० रोमन कत्ल कर दिये थे, परन्तु फिर भी उनका अन्त होता दिखाई न दिया। २१४ ई० पू० में वहाँ पर फेबियस मेक्सिमस और क्लाडियस मार्सेलस कोन्सल हुए। जब सिसली ने रोम से विद्रोह करके हनीबाल की ओर होने की घोषणा की, तो मार्सेलस ने वहाँ पहुँच कर नागरिकों को भारी दण्ड दिया और दो वर्ष बाद सिराक्यूज़ में पहुँच कर बड़े अत्याचार किये। इस भाँति रोमन सेनाएँ केपुआ को भी बहुत दिनों तक घेरे पड़ी रहीं। अन्त में २११ ई० पू० में उसे जीत कर वहाँ भी अमानुषिक अत्याचार किये। एक २ करके वहाँ के सब सीनेटरों को बाज़ार में ला २ कर मरवा डाला।

हनीबाल रोमनों से केपुआ को न बचा सका। प्रकट था

कि वह अब निर्बल होता जाता है। १२-१३ वर्ष यहाँ रहकर लड़ते लड़ते उसकी सेना भी थक गयी थी और कई अफसर लौटने की भी सलाह दे रहे थे। परन्तु हनीबाल ने—जिस कार्य के लिये वह इतनी दूर आया था—उसे अधूरा छोड़कर लौटना उचित न समझा। अवश्य ही उसे यह मालूम हो गया था कि रोम को जीतना सहज नहीं है। क्योंकि रोम अब तक इतनी हानि सहकर भी दृढ़ था। बारह उपनिवेशों ने धन-धान्य से रिक्त होकर उसे सहायता देना बन्द कर दिया, परन्तु शीघ्र ही लैटिन उपनिवेश उसकी सहायता को आ गये। हनीबाल को मालूम होने लगा कि यहाँ एक रोम नहीं, बल्कि तीस रोम हैं, जिनको धन-जन-हीन करना प्रायः असंभव है। स्वयं हनीबाल की सेना दिन २ घटती जाती थी,। कारथेज से केवल एक बार सेना सहायता के लिये आयी जो पर्याप्त नहीं थी। अतः सब लक्षण ऐसे थे जिनसे प्रतीत होता था कि उसका भाग्य पलट गया।

२०७ ई० पू० में हनीबाल रोम के बिलकुल पास आ गया। उधर उसका भाई हेसड्रूबाल स्पेन से फिर उसकी सहायता के लिये बढ़ रहा था। यदि ये दोनों मिल जाते तो अवश्य ही रोम को अपनी स्थिति सम्हालना बहुत कठिन हो जाता। रोम के लिये फिर संकट का समय उपस्थित था। परन्तु सौभाग्य से एक वीर और चतुर सैनिक क्लाडियस नीरो कोन्सल चुना गया जो हनीबाल का सामना करने को चला और दूसरा कोन्सल हेसड्रू-बाल को रोकने के लिये सिज़ाल्पाइन गॉल की ओर भेजा गया। हनीबाल को अपने पास बुलाने के लिये हेसड्रूबाल ने जो दूत भेजा वह नीरो के हाथ में पड़ गया और हनीबाल के बजाय

नीरो स्वयं हेसड्रूबाल से मिलने चल दिया। हेसड्रूबाल की स्पेनीय सेना इसी बात में थी कि हनीबाल आता होगा। मेटारस स्थान पर इन दोनों रोमन कोन्सलों ने उसे घेर लिया। फिर भी वे लोग बड़ी वीरता से लड़े। नीरो ने चुपचाप अपनी सेना एक ओर ले जाकर शत्रुओं पर आक्रमण कर दिया और अन्त में स्पेनीय सेना हार गयी और हेसड्रूबाल भी वहीं मारा गया। उसका सिर रोमनों ने हनीबाल के पड़ाव में फिंकवा दिया, जिसे देख-कर हनीबाल की निराशा और उसके दुख का ठिकाना न रहा। रोम में इस समाचार से बड़ा भारी हर्ष मनाया गया।

मेटारस की यह विजय रोम के लिये बड़ी महत्वपूर्ण थी। हेसड्रूबाल के साथ ही स्पेन की सब शक्ति नष्ट हो गयी और युवक सिपियो ने बड़ी सरलता से वहाँ के कई नगरों पर अधिकार कर लिया और अपने उदार व्यवहार से स्पेनीय लोगों को अपना भक्त बना लिया। वहाँ कार्थेजियों का अधिकार अब न रहा।

२०५ में सिपियो कोन्सल बनाया गया। परन्तु सीनेट ने उसे कारथेज विजय करने के लिये अफ्रिका की ओर भेज दिया। वह धीरे २ सिसली आदि में ठहरता हुआ दो पल्टनों और तीस जहाजों के साथ २०४ ई० पू० में अफ्रिका के किनारे पर उतरा और शीघ्र ही एक कार्थेजीय सेना को हरा दिया जिसमें ४०,००० मनुष्य मारे गये। अब कार्थेजवालों ने सिपियो को देश से बाहर निकालने के लिये हनीबाल को वापस बुलाया। इसी समय रोम की सीनेट ने—जब तक यह युद्ध समाप्त न हो तब तक के लिये—सिपियो को कोन्सल नियत कर दिया था क्योंकि सीनेट का उस पर विश्वास था।

हनीबाल १५ वर्ष तक इटली में रहा, परन्तु किसी भी बड़ी लड़ाई में वह इतने दिन तक न हारा। अब उसे इटली छोड़ते देख-कर सब नगरों में बड़ा हर्ष मनाया गया।

एक साल बाद २०२ ई० पू० में हनीबाल अफ्रिका पहुँच गया और जामा स्थान के पास उसका सिपियो की सेना से सामना हुआ। हनीबाल के पास तीन सेनायें और ८० हाथी थे और सिपियो के पास भी इतनी ही सेना थी, जिसका उसने बड़ी चतु-रता से प्रबन्ध किया। परिणाम यह हुआ कि बड़े जोर का युद्ध हुआ जिसमें कारथेज के २०,००० मनुष्य मारे गये और इतने ही कैद कर लिये गये। उनकी पूर्ण पराजय हुई और हनीबाल कारथेज को भाग गया जिसे उसने आठ वर्ष की आयु में छोड़ा था। अब हारकर कारथेज को सन्धि की प्रार्थना करनी पड़ी।

सन्धि के अनुसार कारथेज राज्य की सीमा अफ्रिका तक ही परिमित कर दी गयी। उसे स्पेन तथा भूमध्यसागर के सब द्वीप छोड़ देने पड़े। कारथेज से दण्डस्वरूप १०,००० टैलेन्ट लिये गये (एक टैलेन्ट २४४ पौंड अथवा लगभग ३६६० रुपयों के बरा-बर होता है)। और सबसे कठोर शर्त यह थी कि कारथेज को अपना बेड़ा—जिसके बल पर उसने आज तक इतनी उन्नति की थी और जो उसे बहुत ही प्यारा था—रोम के हवाले कर देना पड़ा जो उनके सामने ही आग में भस्म कर दिया गया।

कारथेज की सीनेट फिर इस बात पर विचार करने के लिये बैठी कि युद्ध करना चाहिये या नहीं। एक सभासद ने मंच पर जाकर बड़े जोर से कहा कि युद्ध अवश्य जारी रहना चाहिये, परन्तु हनीबाल ने उसे पकड़ कर खींच लिया और कहा कि हम

को मान लेना चाहिये कि रोम की शक्ति हमसे प्रबल है क्योंकि हम उसे हराने के लिये भरसक प्रयत्न कर चुके हैं, अब युद्ध से कोई लाभ नहीं।

इस भाँति इस महान द्वन्द्वयुद्ध में भी रोम विजयी रहा। रोमन लोग हनीबाल को पकड़ना चाहते थे परन्तु वह उनकी कैद में रहनेवाला न था। अतः इधर उधर भागता फिरा और अन्त में ९८३ में उसने आर्मीनिया में जाकर विषद्वारा आत्महत्या कर ली।

हनीबाल यूरोप के सब से प्रसिद्ध वीर जनरलों—सिकन्दर जूलियस सीज़र, नेपोलियन आदि की श्रेणी में गिना जाता है। परन्तु एक बात में वह सब से बढ़कर है कि उसने अपने से अधिक शक्तिवालों को कई बार हराया। सिकन्दर ने निर्बल फारस और कुछ पूर्वी जातियों को ही हराया था। जूलियस सीज़र ने असंगठित गॉलों को हराया और नेपोलियन की विजय का कारण फ्रांसीसियों में क्रान्ति का जोश और यूरोप के अन्य देशों में सैनिकता का अभाव होना था। परन्तु हनीबाल ने रोम को उस समय हराया जब वह अपने संगठन और बल के उच्च शिखर पर था, जब वहाँ का सैन्य-संगठन अद्वितीय था और जब वहाँ बड़े २ वीर जनरल और युद्ध-कला-विशारद थे।

हनीबाल के पास न कोई नक्शा था, न भौगोलिक ज्ञान। पास की जातियाँ शत्रु थीं। वे लोग स्वयं अफ्रिका के उष्ण देश के रहने वाले थे, फिर भी उसने इतनी बड़ी सेना और कुछ हाथी लेकर शीत के घर, आल्प्स को पार कर लिया और रोमनों को बार २ हराया। अवश्य ही वह बड़ा वीर था।

अब हमें यह भी देखना चाहिये कि इन विदेशी युद्धों का रोम पर क्या प्रभाव हुआ। इन युद्धों के कारण रोम के धर्म, आचार तथा शासन-प्रबन्ध आदि अनेक बातों में परिवर्तन हो गया। यूनान, फ्रिज़िया आदि के बहुत से देवता रोम में माने जाने लगे।

शासन-व्यवस्था में भी परिवर्तन हो गया। यद्यपि नाम के लिये अब भी यही सिद्धान्त प्रचलित था कि सब शक्ति जन-समूह के हाथ में है, मजिस्ट्रेट अथवा कोन्सल केवल उनके नौकर हैं और सीनेट एक परामर्श देनेवाली सभा है। परन्तु असल में युद्धों में सफलता प्राप्त करने के बाद सब शक्ति सीनेट के ही हाथ में आ गयी थी। रोम का विस्तार अब बहुत बढ़ गया था। यह असंभव था कि दूर २ से सब लोग आ आकर प्रत्येक मामले पर विचार किया करें। अतः 'कमिटिया' अब असम्भव होगयी और सीनेट ही सब कुछ होगयी। सीनेट इस समय ३०० सभासदों की एक स्थायी समिति थी। ये सब सभासद आजन्म के लिये सीनेटर नियत कर दिये जाते थे और प्रायः ऐसे लोग होते थे जो पहले रोम में किसी न किसी अधिकारी का काम कर चुके हों। अतः ज्ञान और अनुभव होने से उनका प्रभाव भी जनता पर पड़ता था। कारथेज युद्ध के समय कार्य-संचालन इसी ने किया था और इसमें सफलता मिलने के बाद उसका प्रभाव और भी बढ़ गया था। कोन्सल सिपियो भी युद्धों के बाद बहुत आदर की दृष्टि से देखा जाने लगा। परिमित आयु से बहुत छोटा होने पर भी वह कोन्सल बना लिया गया और अनिश्चित काल के लिये उसे अफ्रिका में कोन्सल कर दिया गया।

अठारहवाँ अध्याय

रोम की विस्तार-वृद्धि

मेसेडोन और सीरिया से युद्ध; तीसरा प्यूनिक युद्ध

सिसली, भूमध्यसागर तथा स्पेन पर अधिकार कर लेने के बाद अब रोमनों को पूर्व की ओर ध्यान देना शेष रह गया। यूनानी संसार अब तक रोम के कृषक, प्रजातंत्र और कारथेज के व्यापारी प्रजातंत्र के युद्धों को उदासीनता की दृष्टि से देखता रहा था। वहाँ उनकी तीन बड़ी रियासतों—मिश्र, एशिया माइनर और मेसेडोन—में प्रधानता के लिये प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी कि इतने में रोम भी वहाँ आ गया।

इस समय पूर्व में सब से प्रबल रियासत टोलेमी के वंशजों की अर्थात् मिश्र थी। इसने पास के साइप्रस तथा ईजियन सागर के अनेक द्वीप अपने अधिकार में कर लिये थे। यहाँ की भूमि बहुत उपजाऊ थी। परन्तु वहाँ के निवासी मिश्री और शासक यूनानी होने से उनमें राष्ट्रीयता के विचार अब तक न थे। एशिया माइनर अथवा सीरिया (शाम) बहुत विस्तृत था, और यहाँ कई समृद्धिशाली नगर थे। तीसरी रियासत मेसेडोन खनिज आदि द्रव्यों के कारण धनवान थी। यहाँ इस समय फिलिप तृतीय राज्य कर रहा था जो अपने को सिकन्दर महान् के पिता

फिलिप के बराबर समझता था। अब यूनान में अथेन्स, स्पार्टा अथवा कोरिन्थ का प्रभाव न था, बल्कि छोटे २ नगरों के अनेक संघ स्थापित हो गये थे और इसी भाँति एशिया माइनर में भी अनेक छोटी २ रियासतें उत्पन्न हो चुकी थीं।

रोम का पहला झगड़ा मेसेडोन से हुआ। मेसेडोन के राजा फिलिप ने केनी-युद्ध के बाद हनीबाल से सन्धि कर ली थी और जामा में भी कुछ मेसेडोनियन सिपाही कारथेज की ओर से लड़े थे। इस समय फिलिप एटिका प्रदेश पर आक्रमण कर रहा था। रोम अब और सब झगड़ों से निपट चुका था। अतः कोष आदि खाली होने पर भी उसने फिलिप की ओर ध्यान देना आवश्यक समझा।

दूसरे, फिलिप सीरिया के राजा एण्टिओकस से मिल कर रोडस द्वीप और मिश्र—जहाँ पर इस समय एक बालक राजगद्दी पर बैठा था—को जीत कर आपस में बाँट लेना चाहता था और इन देशों ने रोम से सहायता की प्रार्थना भी की थी। इन कारणों से सीनेट ने १९८ ई० पू० में कोन्सल फ्लेमिनिनस को २४,००० सेना देकर फिलिप से लड़ने के लिये भेजा। फिलिप की सेना इसी के लगभग थी, परन्तु रोमनों ने उन्हें घेर कर उनके ८,००० सिपाही मार डाले और ५,००० कैद कर लिये। रोम के केवल ५०० मनुष्य मरे। इसका कारण यह था कि रोमन फिलिप की सेना को ऐसी जगह ले आये थे जहाँ फेलेंक्स न बन सकें क्योंकि फेलेंक्स के आक्रमण के आगे रोमनों का ठहरना बहुत कठिन था। इस भाँति रोमनों की विजय हो गयी। फिलिप को सन्धि करनी पड़ी, जिस के अनुसार उसे सब यूनानी नगरों को स्वतंत्रता देनी पड़ी। उसकी

सेना घटा कर केवल ५००० कर दी गयी और सीनेट की आज्ञा बिना उसे कोई युद्ध करने का अधिकार न रहा। उसे अपना जहाजी बेड़ा रोमनों के हवाले कर देना पड़ा और दण्ड-स्वरूप १००० टैलैन्ट देने पड़े। यूनानी सभ्यता और कला आदि को देखकर रोमन लोग बड़े चकित हुए। प्लेमिनिनस स्थान २ के मन्दिर, ऐतिहासिक स्थान और कला के स्थान देखता फिरा। यूनानी साहित्य, धर्म तथा विचारों में जो राष्ट्रीयता थी, उसे त्याग कर शेष सबको रोमनों ने स्वीकार कर लिया, परन्तु रोम मेसेडोन को अपने राज्य में मिलाना नहीं चाहता था क्योंकि उत्तर की गाल आदि जातियों को रोकने के लिये वहाँ एक रियासत की आवश्यकता थी। अतः उन्होंने मेसेडोन को स्वतंत्र छोड़ दिया।

ऐसा ही उन्होंने यूनान में भी किया। यूनानी समझ रहे थे कि मेसेडोन के बजाय अब रोम का जुआ उनके सिर पर रखा जायगा परन्तु १९६ में प्लेमिनिनस ने कोरिंथ में यह घोषणा की कि समस्त यूनान स्वतंत्र है। बड़े हर्ष से यह घोषणा सुनी गयी और प्रेरिक्लीज के समय के दिन फिर आने की आशायें बाँधी गईं।

परन्तु मेसेडोन का सहायक सीरिया का राजा एण्टिओकस अभी बाकी था। उसे बिना दबाये रोम का पूर्व की ओर से भय दूर नहीं हो सकता था। इसी समय हनीबाल भी कारथेज की सीनेट से मतभेद होने के कारण सीरिया में आ गया था और वहाँ के राजा ने उसका स्वागत किया। हनीबाल के नाम का भय अब भी वैसा ही बना हुआ था। अतः रोम में फिर घबराहट उत्पन्न हुई। हनीबाल ने एण्टिओकस की ओर से रोम से लड़ने के लिये १०,००० सेना मांगी, परन्तु एण्टिओकस हनीबाल

सरीखे वीर का विजयी होना—क्योंकि उसे आशा थी कि हनीबाल अवश्य विजयी होगा—पसन्द नहीं करता था । उसे हनीबाल से भय था । अतः उसने हनीबाल को सेना न दी ।

बड़ी तैयारी के साथ ४०,००० रोमन सेना पूर्व की ओर भेजी गयी, जिसने सीरिया की थोड़ी सी सेना को पीछे हटा दिया । थर्मापोली मुहाने के पास १९१ ई० पू० में फिर भारी लड़ाई हुई, जिसमें फिर सीरिया की सेना हार गयी, और राजा भी अपने देश को भाग गया । अब सिपियो ने अपने भाई सहित एक सेना लेकर उसका पीछा किया । मार्ग में फिलिप ने उसे एशिया माइनर पहुँचने में बहुत सहायता पहुँचाई । यूरीमेडन नदी के पास हनीबाल एक सेना लेकर आया परन्तु सिपियो ने उसे हरा दिया । अन्त में मेगनेशिया स्थान पर एशिया के भाग्य का निर्णय हो गया । राजा एन्टिओकस की अरब आदि जातियों की अपार सेना तिहाई रोमनों के हाथ से रणभूमि पर कत्ल कर दी गयी । ७०,००० में से केवल २०,००० मनुष्य बचे । राजा ने दण्ड स्वरूप १५,००० टैलैन्ट देना स्वीकार करके सन्धि कर ली । सीरिया साम्राज्य इतने शीघ्र नष्ट हो गया । अब उसकी गिनती बहुत छोटी रियासतों में हो गयी । रोम के मित्रों को बहुत धन मिला, तथा बहुत सा प्रदेश भी ।

विजयी सिपियो बन्धुओं का प्रभाव बहुत बढ़ गया । वास्तव में रोम उनका बड़ा कृतज्ञ था । एक अधिकारी ने उन पर एन्टिओकस से सन्धि की शर्तें ढीली करने के लिये रिश्वत लेने और दण्डस्वरूप पाये हुए द्रव्य में से कुछ खा जाने का अभियोग लगाया । परन्तु जन-समूह ने उसके हाथ में से अभियोग-पत्र

छीन कर सब के सामने फाड़ कर फेंक दिया और कहा कि—क्या तुम ईश्वर के प्रिय-पात्रों से इस प्रकार हिसाब मांगने का साहस करते हो? तुम्हें इसका क्या अधिकार है? १८३ ई० में पू० विजयी सीपियो मर गया।

अब रोम को मेसेडोन से फिर तीसरा युद्ध करना पड़ा। फिलिप रोम की सीनेट के दबाव से उकता गया था क्योंकि उसने फिलिप का अपना विस्तार बढ़ाने की सख्त मनाई कर दी थी। फिलिप के एक पुत्र था, परन्तु वह रोमनों का प्रशंसक था। अतः फिलिप ने उसे मरवा डाला और अपने एक जारज पुत्र पर्सियस को अपना उत्तराधिकारी बनाया जो १७९ ई० पू० में गद्दी पर बैठा। वह सुन्दर, उदार, देश-भक्त तथा स्वतंत्रताप्रिय था। अतः रोम के प्रभुत्व को वह स्वीकार नहीं कर सकता था। पड़ोसी परगेमस के राजा यूमीनीज ने पर्सियस के बुरे व्यवहार की रोम से शिकायत की। अतः पर्सियस ने यूमीनीज को—जो रोम का मित्र और सहायक था—मारने का प्रयत्न किया। इस पर रोम ने फौरन युद्ध-घोषणा कर दी और दो कोन्सलों को उधर भेजा। पर्सियस ने थिसली पर आक्रमण किया परन्तु उसके चारों ओर शत्रु सेना थी; क्योंकि एपिरस, थिसली, बोटिया आदि सब ने अपनी २ सेनाओं से रोम को सहायता दी, और यूमीनीज भी एक बड़ी सेना लेकर रोम की सहायता को आ गया। इस भाँति सब मिलाकर रोमन कोन्सल के अधीन ७०,००० सेना थी और पर्सियस के पास, पैदल तथा सवार मिलाकर चालीस हज़ार से कुछ ऊपर थी। शीघ्र ही युद्ध आरम्भ हो गया। मेसेडोन के तेज सवार रोम की सेनाओं के बीच में घुस गये और हज़ारों सैनिकों को मारकर

सब सेना को पीछे भगा दिया। अब क्रोधित होकर रोमन सैनिकों ने उन कई नगरों को जो रोम के मित्र न थे बिलकुल नष्ट कर दिया। १७० ई० पू० में फिर युद्ध हुआ जिसमें पर्सियस ने रोमनों को फिर हराया। इससे रोम में फिर चिन्ता और निराशा हुई। अन्त में दूसरे वर्ष विजयी सिपियो का मित्र और सम्बन्धी एमिलियस पालस कोन्सल बनाया गया और उसे लगभग पचास हजार सेना देकर मेसेडोन की ओर भेजा गया। पर्सियस की सेना पीडना स्थान पर आ गयी थी। रोमन सेनाएँ भी वहीं पहुँचीं। इसी समय एक दिन चन्द्रग्रहण हुआ। इससे दोनों सेनाओं में बड़ा भय फैला क्योंकि दोनों ने उसे अशकुन माना। रोमन सैनिक डायना देवी (चन्द्रमा) को ग्रास करने वाले राक्षस को डरा कर भगाने के लिये पीतल के बर्तन ज़ोर २ से बजाने लगे और बड़ी २ मशालें लेकर चिल्ला २ कर ऊपर को उछलने लगे। तब एक मनुष्य ने ग्रहण का रहस्य समझा कर उन्हें शान्त किया। दूसरे दिन उन्होंने मेसेडोन की सेना पर अकस्मात् आक्रमण कर दिया, जब कि वह अपने युद्ध क्रम के अनुसार फैलैंक्स नहीं बना पाई थी और उसके सहस्रों सैनिकों को कत्ल करके उन्हें भगा दिया। राजा भी अपने देश को भाग गया। उसके साथियों ने उसका साथ न दिया। एक धोखे से उसका सब धन हरण कर लिया गया। अतः उसे आत्म-समर्पण करना पड़ा और रोमन उसे क़ैद करके अपने देश को ले गये। यह तीसरा मेसेडोनीयन युद्ध १६८ ई० पू० में हुआ। रोम में चार दिन तक खूब हर्ष मनाया गया, खूब खेल-कूद हुए और देवताओं के आगे खूब यज्ञ हवन आदि किये गये।

परन्तु अब प्रश्न यह था कि इस विजित देश का क्या प्रबंध किया जाय। उनकी भाषा, शासन-व्यवस्था, उनका धर्म तथ आचार व्यवहार आदि सब भिन्न थे। अंत में एक कमेटी की सम्मति के अनुसार उसके चार भाग कर दिये गये और प्रत्येक प्रजातंत्र के सिद्धान्त पर शासन-व्यवस्था स्थापित कर दी गयी और पर्सियस जितना कर उनसे लिया करता था उससे आधा उन्होंने अपने लिये नियत कर दिया क्योंकि उसकी रक्षा के लिये रोम को अलग सेना रखने की आवश्यकता न थी। इलीरिया तथा यूनानी रियासतों में भी ऐसा ही प्रबन्ध किया गया। अब उन्होंने ऐसे लोगों को ढूँढना आरम्भ किया जिन्होंने पर्सियस को सहायता दी थी और हजारों को देशनिकाला दे दिया गया। १६७ ई० पू० में रोमन सैनिकों ने एपिरस में खूब लूट की। सत्तर नगर बिलकुल नष्ट कर दिये गये। रोमन सिपाहियों को वेतन देने के लिये हजारों मनुष्य दास बनाकर बेचे गये और यह सब रोम की सीनेट की आज्ञा से हुआ। यहाँ पर हमें पहले के और इस समय के रोमनों का भेद मालूम पड़ जाता है।

इन युद्धों के बाद दस वर्ष तक रोम में शान्ति रही परन्तु १५७ ई० पू० से फिर युद्धकाल आरम्भ हो गया। इस वर्ष कारथेज और उसके पड़ोसी न्यूमीडिया में कुछ मतभेद हुआ अतः रोम का कोन्सल केटो उसके निबटारे के लिये कारथेज भेजा गया। केटो ने वहाँ जाकर देखा कि कारथेज ने कला-कौशल तथा उद्योगों में फिर पहले जैसी उन्नति कर ली है, देश खूब समृद्धिशाली हो रहा है, बन्दरों में अनेक जहाज व्यापारिक सामान से लदे खड़े हैं और देश में धान्य आदि भी खूब उत्पन्न होता है। जब उसने

यह समाचार रोम में आकर सुनाया तो रोम के लोग बहुत जले। उन्हें भय था कि वहाँ पर कहीं कोई दूसरा हनीबाल न उत्पन्न हो जाय जो रोम की कसर निकाले। कारण यह था कि रोम को सदा स्पेन आदि से युद्ध में लगा रहना पड़ता था। इसी समय रोम के मित्र कारथेज के पड़ोसी न्यूमिडिया के राजा ने कारथेज की भूमि पर अधिकार कर लिया। रोम से कारथेज वालों ने इस बात की शिकायत की, परन्तु रोम ने कुछ उत्तर न दिया। इस पर कारथेज ने न्यूमीडिया से युद्ध-घोषणा कर दी। रोम कारथेज को समूल नष्ट करने को उतावला हो रहा था। अतः उसने ऊपर के युद्ध को रोम और कारथेज की संधि के विरुद्ध बताकर स्वयं भी १४९ ई० पू० में कारथेज के साथ युद्ध-घोषणा कर दी और एमिलियस पोलस को फिर अफ्रीका भेजा। कारथेज की सीनेट, जिसमें प्रायः व्यापारी सभासद थे, सदा शान्ति के पक्ष में रहती थी। इसी कारण उसने युद्धप्रिय हनीबाल को इटली में सहायता नहीं पहुँचाई थी। अब भी वह रोम से युद्ध करना नहीं चाहती थी। अतः उसने युद्धप्रिय दल के नेता हेस्ड्रूबाल को रोम के सिपुर्द करना चाहा।

क्रूर रोमन युद्ध करके कारथेज को नष्ट करने पर तुले हुए थे। अतः उन्होंने कोई बात न सुनी और युद्ध आरम्भ कर दिया। कारथेजी लड़े परन्तु हार गये। अब रोम ने कड़ी शर्तें उपस्थित कीं। कारथेज अपने ३०० प्रमुख मनुष्यों को गारन्टी के लिये रोम में रहने को दे और रोम की सीनेट आगे जो आज्ञा दे उसे मानने के लिये तैयार रहे। सेनाओं ने भयभीत होकर अस्त्र रख दिये और रोमन बहुत सा सामान लूटकर अपने डेरों में ले

गये। अब शीघ्र ही वज्रपात के समान कारथेजीयों ने यह आज्ञा सुनी की कारथेज नगर समुद्र से दस मील पीछे हटाया जायगा। यह सुनकर उनमें भारी शोक छा गया। कारथेज को वे देवताओं का बसाया मानते थे। वहाँ उनके देवताओं के अनेक प्राचीन मन्दिर थे। ये देवता नये नगर में कैसे पहुँचाये जाँयगे! वहीं पर उनके पूर्वजों की कबरें थीं। क्या उन्हें खोदकर नई जगह ले जाया जायगा? ये सब बातें सोचकर उन्होंने फिर निराशामय साहस धारण किया। नये अस्त्र-शस्त्र शीघ्र ही तैयार होने लगे। हेसड्रूबाल-जो देश से निकाल दिया गया था—फिर देश में बुलाया गया और जब रोमन कोन्सल कारथेज लेने आया तो उसे वहाँ के फाटक बन्द मिले। (१४६ ई० पू०)

रोम ने एमिलियस पालस के पुत्र को—यह भी सिपियो के नाम से ही प्रसिद्ध है—एक बड़ी सेना के साथ कारथेज भेजा दृढ़ चहार-दीवारी के आगे सिपियो की कुछ न चली। उधर हेसड्रूबाल ने कैद किये हुए रोमनों को सब के सामने मृत्यु-दण्ड दिया। कई महीने तक श्रम करके दीवाल तोड़कर रोमनों ने कारथेज में प्रवेश किया। हेसड्रूबाल की सेना हार गयी और वह भाग गया। बहुत से मारे गये और शेष ५०,००० ने आत्म-समर्पण कर दिया। रोमन सैनिकों ने नगर खूब लूटा और अन्त में आग लगाकर अपने इस प्राचीन वीर प्रतिद्वन्द्वी को नष्ट कर दिया। उसके खँडहर अब तक उसके प्राचीन गौरव की याद दिलाते हैं।

उन्नीसवाँ अध्याय

रोम में क्रान्ति

सीनेट का पतन और पुनरुत्थान

अब रोम का विस्तार बहुत बढ़ गया था। लोग सीनेट के शासन से थक गये थे; क्योंकि वास्तव में अब सब शक्ति उसी के हाथ में थी। अब वे रोम का विस्तार बढ़ाने के बजाय अपनी पुरानी स्वतंत्रता और अपने अधिकार पुनः प्राप्त करना चाहते थे। अतः रोम में जैसी एकता प्यूनिक युद्धों के समय में थी, वैसी अब न रही।

वहाँ की सामाजिक स्थिति भी बदल गयी थी। युद्धों में क़ैद किये हुए दासों से इधर उधर खानों में काम कराया जाता था। इनके सामने रोम के लोग खानों में काम करना तथा हल चलाना अपनी शान के खिलाफ़ समझते थे। इसके परिणाम-स्वरूप खेती का काम छोड़कर वे भेड़ बकरे पालने लगे और बहुत से ग्रामीण चारों ओर से आ आकर रोम में जमा होने लगे। क्योंकि वहाँ मिश्र, सिसली, अफ्रिका आदि देशों से जहाजों में लदकर खूब अनाज आता था और प्रायः ऐसे सरदारों की ओर से जो जानता में प्रतिष्ठा अथवा लोकप्रियता प्राप्त करना चाहते थे। अन्न मुफ्त अथवा बहुत कम दामों में बेचा जाता था। अतः खेती अब

लाभदायक न रही, फिर युद्धों से भी हानि होती ही रहती थी। इन कारणों से बहुत लोगों ने खेती करना छोड़ दिया। परिणाम स्वरूप वे पहले जैसे बलवान तथा हृष्ट पुष्ट न रहे, बल्कि दुर्बल होने लगे।

यूनान के सम्पर्क का प्रभाव भी रोम के लिये हितकर न हुआ। उससे रोमनों में साहित्यप्रियता तो बढ़ती गयी, परन्तु साथ ही स्वतंत्रता की लहर बढ़ने के कारण उनमें पहले के आज्ञा-पालन, राजभक्ति आदि गुण कम होने लगे। उनमें और विशेष कर स्त्रियों में विलासप्रियता अधिक बढ़ गयी और इसे रोकने के लिये सीनेट को कानून बनाने पड़े।

सीनेट में भी श्रेणी तथा जाति के विचार उत्पन्न हो गये थे। भूमिकर आदि का भी प्रबन्ध दूषित हो गया था। जोतने वाले भूमि को अपनी ही समझते थे और कर का कुछ भाग कार्यसमिति के मंत्रियों के हाथ में चला जाता था।

टाइबीरियस ग्रेक्स नामक एक बुद्धिमान मनुष्य ने-जो पहले कोन्सल तथा जनरल भी रह चुका था-साधारण लोगों की शोचनीय दशा का अनुभव किया। १३३ में जब वह ट्रिब्यून बनाया गया तो शीघ्र ही उसने उन सरदारों के हाथ से-जो बहुत थोड़ा कर देते थे--भूमि लेकर उसके छोटे २ टुकड़े करके समस्त नागरिकों में बाँट देने का आयोजन किया। स्वभावतः धनाढ्य भूपतियों की ओर से इसका विरोध किया गया। इसी समय परगेमस प्रान्त का राजा रोम को अपना उत्तराधिकारी बनाकर निःसन्तान मर गया, और टाइबीरियस ने उसका धन भी दीन रोमनों में बाँट देना चाहा, परन्तु सीनेट ऐसे कार्यों से बहुत अप्रसन्न हुई और

उसने टाइबीरियस पर अवधि समाप्त हो जाने पर अभियोग लगाने का विचार किया। इससे बचने के लिये उसने दूसरी बार ट्रिब्यून बनाये जाने का प्रयत्न किया जो नियमविरुद्ध समझा जाता था। इसकी सम्मति प्राप्त करने के लिये सब इटलीवालों को रोम की नागरिकता के अधिकार देने का वचन दिया। इसका अर्थ यह समझा गया कि टाइबीरियस सीनेट को दबाकर और स्वतंत्र होकर राजा बनने का प्रयत्न कर रहा है। सीनेट ने उसे मार डालने का विचार किया।

समस्त जन-समूह के आगे चुनाव का समय आया। टाइ-बीरियस को कई अशकुन हुए परन्तु फिर भी वह सीनेट-भवन तक पहुँच गया। जनता के सामने अपने सिर की ओर इशारा करके बताया कि उसका जीवन इस समय संकट में है, उसे मृत्यु का भय है परन्तु उसके शत्रु चिल्ला उठे 'देखो वह सिर पर मुकुट पहनने के लिये कह रहा है।' बहुत गड़बड़ मची। सीनेटरों ने टूटी बेंचों और मेजों से मार २ कर ३०० साथियों समेत उसे वहीं बिछा दिया और लाशों को बटोर कर टाइबर नदी में डाल दिया। इस प्रकार रोम के एक हितकर्ता का अन्त हो गया।

सीनेट के इस कार्य से जनता उस पर कुछ अप्रसन्न हो गयी। लग भग दस वर्ष तक झगड़े चलते रहे। अन्त में १२४ ई० पू० में टाइबीरियस का भाई कायस ग्रेकस ट्रिब्यून चुना गया। उसके हृदय में भाई की मृत्यु का घाव अब तक था। वह सीनेट से बदला लेना चाहता था। उसकी वीर माता ने भी उसे लिखा था—'बदला लेना अच्छा है परन्तु उससे रियासत को कुछ हानि न पहुँचना चाहिये।'

कायस अपने भाई से अधिक साहसी, दृढ़ और देशभक्त था। वह अपने प्रभाव के कारण दूसरे वर्ष भी ट्रिब्यून चुन लिया गया जो अब तक शासन-व्यवस्था के विरुद्ध समझा जाता था। वह प्रभावशाली वक्ता भी था और सरदारों के बजाय साधारण लोगों की ओर अधिक ध्यान देता था।

कायस ने बहुत से क्रान्तिकारी प्रस्ताव किये। भाई के बहुत से कानूनों को प्रचलित किया। नया अनाज-नियम बनाया गया जिसके अनुसार रोम के सब नागरिकों को एक खास खाने के लिये अनाज आधी कीमत पर मिलता था और इस प्रकार उसने बहुतों को भूखों मरने से बचाया। फिर उसने यह नियम प्रचलित कराया कि रोम के किसी नागरिक की हत्या करनेवाले को प्राण-दण्ड मिलेगा। इस भाँति अपने भाई और उसके साथियों की हत्या का बदला लिया। इसी भाँति उसने और भी कई नियम बनवाकर सीनेट की शक्ति को कम किया और जनता की शक्ति को बढ़ाया। परन्तु वह समस्त इटली के लोगों को रोम के नागरिकों के समान अधिकार दिलाना चाहता था। वह जानता था कि रोमन अधिकारी इटली की प्रजा के साथ कैसा व्यवहार करते हैं। उसने बताया कि एक किसान ने एक रोमन सरदार की पालकी के ऊपर कुछ मजाक किया। फौरन उसी पालकी के चमड़े के पट्टों से मार २ कर उसकी जान ले ली गयी। एक रोमन कोन्स- कम्पैनिया में घूम रहा था। उसकी स्त्री को स्नान की आवश्यकता प्रतीत हुई। अतः उसने एक नगर के अधिकारी को वहाँ के एक सार्वजनिक घाट को अपने लिये खाली करा देने की आज्ञा दी। आज्ञा-पालन में कुछ देर होती हुई देखकर फौरन वहाँ के अधिकारी

की [illegible] उपेक्षा की गयी । कायस ने बताया कि इटली के लोग हमारे सब युद्धों में सहायता देते हैं । उन्होंने हमारे साथ रक्त बहाया है फिर भी उनसे ऐसा क्रूर व्यवहार किया जाता है। परन्तु रोम के लोग जो कायस के अन्य सुधारों को बड़े जोर से समर्थन कर रहे थे, अपने विशेषाधिकारों को छोड़ना नहीं चाहते थे। अतः उन्होंने इस प्रस्ताव का विरोध किया । इसी समय कायस के कुछ साथियों ने टाइबीरियस को मारने वाले की हत्या कर दी । इस पर बड़ा ऊधम मचा । वहीं पर युद्ध आरम्भ हो गया । कायस के दल के अनेक लोग मारे गये । अतः उसने स्वयं भी मर-जाना उचित समझा । इस भाँति लगभग तीन हजार आदमियों की हत्या हो गयी । (१२१ ई० पूर्व)

सीनेट फिर पूर्ववत् हो गयी और भूमि के छोटे २ टुकड़ों को फिर सरदारों ने ले लिया । इस भाँति ग्रेकस बन्धुओं का सब कार्य व्यर्थ हो गया; परन्तु उनका बलिदान व्यर्थ नहीं हो सकता था । यद्यपि दस बारह वर्ष तक सीनेट और सरदारों ने खूब आनन्द किया, परन्तु अन्त में सुधार होकर ही रहा ।

११८ ई० पू० में एक और झगड़ा आरम्भ हुआ । अफ्रीका के पश्चिमी प्रान्त न्यूमीडिया का राजा, दो पुत्रों और एक जारज भतीजे जुगुर्था में अपने राज्य को बाँट कर मर गया । जुगुर्था ने दो भाइयों में से एक को मार डाला और दूसरे से भी युद्ध आरम्भ कर दिया । उसने रोम से सहायता माँगी । अतः एक रोमन सेना वहाँ पर भेजी गयी । इस सेना ने वहाँ के दो भाग करके एक २ भाग दोनों को दे दिया । परन्तु यह प्रबन्ध चार वर्ष तक चला । ११४ में जुगुर्था ने दूसरे भाई पर भी आक्रमण कर दिया । रोम

ने इसका विरोध करने के लिये कुछ आदमी वहाँ भेजे परन्तु जुगुर्था ने उनके सामने ही अपने उस भाई को मरवा डाला।

इस समाचार से रोम में बड़ा क्रोध और बहुत उत्तेजना फैली परंतु जुगुर्था से रिश्वत पाकर कुछ सरदार उसकी ओर मिले हुए थे। इनके प्रभाव से सीनेट भी जुगुर्था के विरुद्ध कुछ न कर सकी। जन-समूह इन बातों को न देख सका। सीनेट को एक ओर रख कर उसने अपनी ओर से जुगुर्था से युद्ध-घोषणा कर दी। इस प्रकार सीनेट और सरदारों का अपमान हुआ।

फिर भी सरदारों ने अपनी ओर से एक सेना अफ्रिका भेजी, परन्तु जुगुर्था ने रिश्वत देकर उसके सेनापति को अपनी ओर मिला लिया। जन-समूह की ओर से जुगुर्था रोम चला आया और वह भी इस आशा से कि वहाँ सीनेटरों को रिश्वत देकर अपने को समस्त राज्य का मालिक बना ले। वास्तव में कुछ अधिकारियों को अपनी ओर करके न्यूमीडिया के एक राजकुमार को—जो रोम के अधिकार में था और जिसे रोमवाले आधे न्यूमीडिया का अधिकारी बनाना चाहते थे—रोम में ही मरवा डाला। इसके बाद जन-समूह के भय से वह अपने देश में भाग गया। एक सेना उसके पीछे भेजी गयी जिसे उसने ११० ई० पू० में हरा दिया। अन्त में १०९ ई० पू० में मेटेलस जनरल बना कर अफ्रिका भेजा गया। इसे भी जुगुर्था ने दो बार हराया और एक बार तो इसके सहायक मेरियस ने उसकी प्राण-रक्षा की। परन्तु मेटेलस साहसी था, वह रिश्वत के लोभ में आनेवाला न था। अतः उसे दृढ़ देख कर जुगुर्था ने संधि करनी चाही और अनेक नगर और ऐसे सिपाही—जिन्होंने युद्ध में

रोम का साथ छोड़ दिया था—उसके हवाले किये। रोमवालों ने उन्हें कमर तक पृथ्वी में गाड़ कर अपने सैनिकों की गोली का लक्ष्य। बनाया। इसी समय यह सुन कर कि मेटेलस जुगुर्था से भी आत्म-समर्पण करवा लेना चाहता है और उसके मित्रों की की सहायता से उसे मरवा डालना चाहता है, जुगुर्था ने फिर युद्ध आरम्भ कर दिया। रोमन इस समय कितने नीच हो गये थे।

जुगुर्था कि स्थिति अब पहले सी नहीं रही थी। उसके कई मित्र रोम के अधीन हो चुके थे। मेटेलस उसके एक और मित्र को अपनी ओर मिला रहा था कि इसी समय उसे रोम का एक आज्ञापत्र मिला और आँखों से आँसू भर कर उसे सेना का नेतृत्व छोड़ कर देश लौट जाना पड़ा।

अब मेरियस सेनानायक और कोन्सल नियत हुआ (१०८) और एक बड़ी सेना और सुला नामक एक सहायक को लेकर वह अफ्रिका चला। वह वीर, युद्धविज्ञ तथा जन-समूह के पक्ष का आदमी था। अतः इसकी सेना में बहुत से लोग भर्ती हो गये। इसने अपनी सेना का पुनर्सङ्गठन किया और १०७ ई० पू० में युद्ध आरम्भ कर दिया। उसने भी वहाँ के एक नगर पर अधिकार करके सब स्त्री पुरुषों को कत्ल कर दिया और फिर इधर उधर मरुस्थल में भटकता फिरा, परन्तु जुगुर्था का कुछ न बिगाड़ सका। अन्त में जुगुर्था के सहायक और श्वशुर बोकस ने मेरियस को लिखा कि यदि वह किसी ऊँचे दर्जे के मनुष्य को स्वागत करने के लिये भेजे तो वह जुगुर्था को उसके हवाले कर सकता है। मेरियस को इसमें भय और सन्देह हुआ, परन्तु सुला जाने के

लिये तैयार हो गया और न जाने किस प्रकार कुछ दिन बाद जुगुर्था सहित मेरियस के पास आ गया।

इस प्रकार २०६ ई० पू० में इस युद्ध का भी अन्त हुआ। मेरियस जुगुर्था को लेकर रोम पहुँचा। परन्तु सीनेट ने उस वीर को जिसका नाम तीस वर्ष से रोम के घर २ में गूँजता रहा और रोम में भय उत्पन्न करता रहा एक तहखाने में बन्द कर दिया सीनेटरों ने ६ दिन तक उसकी कराह सुनी। अन्त में सब शान्ति हो गयी।

रोम ने न्यूमीडिया को अपने राज्य में नहीं मिलाया। आधा भाग तो बोकस को दिलवाया गया जिसके कारण यह विजय प्राप्त हुई और आधे पर राजवंश का एक निर्बल बालक बैठाया गया जिससे रोम को किसी भाँति का भय नहीं था।

इसी समय उत्तर की ओर से एक और भारी संकट उपस्थित हुआ। रोमवालों ने हाल ही में गॉल के दक्षिणी भाग को छीन कर अपने राज्य में मिला लिया था। वहाँ के ट्यूटन निवासी वीर, सुन्दर और लम्बे कदवाले थे तथा अपने स्त्री बच्चों को साथ लेकर बसने के लिये किसी अच्छी भूमि की खोज में फिरा करते थे। १०९ ई० पू० में इन्होंने रोम के उत्तरी भाग में प्रवेश किया और रोमनों के रोकने पर उन्हें हरा कर थे आगे बढ़ आये। दो तीन साल तक और युद्ध होता रहा। अन्त में १०५ में इन्होंने अरासियों स्थान के एक भारी युद्ध में ८०,००० रोमन सैनिकों को काट कर फेंक दिया। समस्त इटली भय से काँप गया। वहाँ फिर वैसा ही ऐक्य हो गया जैसा हनीबाल के आक्रमण के समय में था। सीनेट और सरदार फिर चुप कर दिये गये और जन-समूह

ने उस समय के कोन्सल को हटा कर—ऐसा पहिले कभी नहीं हुआ था—मेरियस को फिर कोन्सल बनाया और एक बड़ी सेना देकर उसे ट्यूटनों से लड़ने भेजा। उसका सहायक सुला भी उसके साथ था। मेरियस आगे बढ़ा परन्तु अब ट्यूटन लोग पीछे हट गये थे। अतः वह रोम नदी के पास ठहर गया और व्यापार के लिये एक नहर बनाने लगा। उधर जनता ने दूसरे वर्ष और फिर तीसरे वर्ष भी उसीको कोन्सल चुना। ऐसा भी पहले कभी नहीं हुआ था।

ट्यूटन लोग फिर बढ़ने लगे और १०१ ई० पू० में एडिआई के मैदान में इन दोनों का भारी युद्ध हुआ। दिन भर युद्ध होता रहा परन्तु शाम को ट्यूटन लोग पीछे हटने लगे। उनकी वीर स्त्रियाँ यह न देख सकती थीं। उन्होंने अपने पतियों को आत्मसमर्पण करने से बचाने के लिये वहीं मार डाला और स्वयं भी शत्रुओं के हाथों में जाने के बजाय अस्त्र लेकर सम्मुख लड़ना उचित समझा। वे अधिक देर तक इतनी बड़ी रोमन सेना के आगे न ठहर सकती थीं। शीघ्र ही उन्होंने अपने पातिव्रत धर्म की रक्षा करते हुए और अपने उदाहरण से रोम के पुरुषों और वहाँ की विलासप्रिय स्त्रियों को लज्जित करते हुए, परलोक में जाकर अपने २ पतियों का साथ दिया।

बीसवाँ अध्याय

रोम के आन्तरिक युद्ध

सुला और मिथ्रिडेटीज़

ट्यूटनों को हरा कर रोम ने फिर स्वतन्त्रतापूर्वक दम लिया और अगले चार सौ वर्ष तक फिर ऐसा अवसर उपस्थित नहीं हुआ जिससे रोम के समूल नष्ट होने का डर हो।

मेरियस ने रोम की शासन-व्यवस्था में एक नयी बात उत्पन्न कर दी थी। सरदार अथवा धनवान न होते हुए भी वह पाँच बार लगातार कोन्सल नियत किया गया और सीनेट का बल उसके सामने बिलकुल मन्द पड़ गया। इस भाँति भावी रोमन साम्राज्य के लक्षण यहीं से आरम्भ हो गये और यही उसकी नींव कही जा सकती है। आगे भी इसी भाँति कोई सैनिक जन-बल प्रधान शक्तिमान होता रहा। मेरियस के बाद सुला, सुला के बाद पोम्पी, पोम्पी के बाद जूलियस सीजर और जूलियस सीज़र के बाद आगस्टस ऐसे ही शक्तिमान् मनुष्य हुए। इनके बीच २ में सीनेट अपने प्राचीन ढंग पर शासन-कार्य करती रही।

१०० ई० पू० से दस वर्ष तक रोम बाहरी आक्रमण से मुक्त रहा, परन्तु घर में आन्तरिक कलह उत्पन्न हो गया जो दिन २ बढ़ता गया। अन्त में साम्राज्य-स्थापना के साथ उसका

अन्त हुआ। इस युद्ध का कारण यह था कि रोम ने पहले तो विजित देशों के साथ बड़ी उदारता का व्यवहार किया, उन्हें मित्र कहा और शत्रुओं से उनकी रक्षा की। फलस्वरूप ये लोग भी रोम के प्रति भक्त रहे, और युद्ध में सदा उन्हें सहायता देते रहे परंतु कुछ दिन बाद रोम ने अन्य इटलीवालों से क्रूरता का व्यवहार आरम्भ कर दिया। उन्हें कोन्सल आदि चुनने और कामिटिया में सम्मिलित होने का अधिकार तो था ही नहीं, साथ ही उनके लिये और भी अनेक भिन्न २ नये नियम बना दिये। वे लोग अपनी इच्छानुसार विवाहादि नहीं कर सकते थे। उनकी स्थानीय स्वतंत्रता भी रोम की सीनेट की इच्छा पर छीनी जा सकती थी। युद्धादि में उन्हें सब से कठिन कार्य करने पड़ते थे। फिर भी लूट आदि का माल उनके पल्ले न पड़ता था। कला आदि की समस्त वस्तुएँ सीधी रोम पहुँचती थीं और इन सबसे बढ़कर बात यह हुई कि रोमन सरदारों ने रोम में स्थित लैटिन जाति के सब मनुष्यों को रोम छोड़ने के लिये बाध्य किया। वे लोग अधिक दिन तक ऐसे क्रूर व्यवहारों को सह न सके। रोम के प्रति अपनी सेवाओं और रोम के अधिकारियों की अपने प्रति क्रूरताओं का दृश्य उनकी आँखों के सामने आया। अतः उन्होंने रोमनों के साथ समानता के अधिकार प्राप्त करने के लिये फिर आन्दोलन आरम्भ किया। रोम के लोग अपने विशेषाधिकारों को न त्यागने पर दृढ़ थे। ग्रेकस आदि कई मनुष्य पहले भी इसी के लिये प्रयत्न कर चुके थे, परन्तु पूर्ण असफल रहे। अब ड्रूसस नामक एक कोन्सल ने भी उनका पक्ष लिया। परिणाम वही हुआ। ९० ई० पू० में ड्रूसस भी किसी अज्ञात मनुष्य द्वारा गुप्त रीति से मार डाला गया। न

मालूम वह किसी मनुष्य के हाथ से मरा अथवा देवता के।

इस घटना से इटली में बड़ी सनसनी फैली। कई जातियों ने विद्रोह आरम्भ कर दिया और फिर सब ने मिलकर रोम की पहाड़ी की दूसरी ओर एक दूसरा रोम नगर बसाया। वहाँ भी दो कोन्सल और पाँच सौ सभासदों की एक सीनेट स्थापित हो गयी और सिक्के भी अलग ढल गये जो अब तक मिलते हैं।

रोम को फिर युद्ध की तैयारी करनी पड़ी। यह 'सामाजिक युद्ध' था। इसमें रोमवालों को अपने ही जनरलों के सिखाये हुए सैनिकों से, जो अब तक उसके साथ विदेशियों से लड़ते रहे थे, युद्ध करना था। अब तक वह इटलीवालों की सहायता से संसार में विजयी रहा था। अब इटली वालों पर विजय पाने के लिये उसे संसार से सहायता की प्रार्थना करना पड़ी।

युद्ध के लिये रोम ने एक लाख सिपाही भेजे। दक्षिण में कोन्सल जूलियस सीजर (विजयी जूलियस सीजर का पिता) और सुला और उत्तर में रुटिलियस और मेरियस भेजे गये। दक्षिण की सेना को नवस्थापित समनाइट कोन्सल ने हरा दिया और इसी भाँति उत्तर की सेना भी हारी। इससे रोम की बड़ी क्षति हुई।

अब रोम में कट्टर अपरिवर्तनवादियों का जोर घटता जाता था और उदार विचार वाले लोग बढ़ते जाते थे। सीजर रोम लौट आया और उसकी सलाह से २४ मित्र उपनिवेशों को नागरिकता के अधिकार दे दिये गये। दूसरे वर्ष ८९ ई० पू० में यह आज्ञा निकाली गयी कि वे इटलीवासी भी जो अभी रोम से लड़े हैं या लड़ रहे हैं यदि ६० दिन के अन्दर रोम से मिल जाँय तो

नागरिकता के अधिकार पा सकते हैं। इसका इच्छित परिणाम हुआ। प्राय: सब जातियाँ और सब विद्रोही लोग अस्त्र रख कर रोम की ओर आ गये। इस भाँति नागरिकता और समानता का यह लम्बा झगड़ा ८८ ई० पू० में समाप्त हुआ। सेमनाइत आदि कुछ जातियाँ फिर भी लड़ती रहीं। उन्होंने रोम की सेनाओं को बहुत हैरान किया परन्तु अन्त में ८८ ई० पू० में सुला ने उन्हें भी हरा दिया। इस भाँति यह आन्तरिक कलह समाप्त हो गया और सेमनाइतों का नाम भी इतिहास से मिट गया।

फिर भी रोम में दलबन्दी समाप्त नहीं हुई। सुधारों से कट्टर अपरिवर्तनवादी बहुत अप्रसन्न थे और उन्होंने समझ लिया कि शक्ति शस्त्रबल के साथ में है। इस कारण शस्त्र ग्रहण कर उन्होंने एक और कोन्सल को मार डाला। उदार विचार वालों के दल का मुखिया वृद्ध मेरियस था परन्तु उसे चिढ़ाने की इच्छा से दूसरे दल ने सुला को कोन्सल नियत कर दिया (८८ ई० पू०)

रोम को इस भाँति गृहकलह में फँसे देख कर और एशिया माइनर को उनके शासन से असन्तुष्ट देख अर्मीनियाँ के पास की पोन्टस नामक एक रियासत के साहसी राजा मिथ्रिडेटीज ने रोम पर आक्रमण कर दिया और यूनानी लोगों ने भी उसका बड़े हर्ष से स्वागत किया।

अब रोम में प्रश्न यह था कि उससे लड़ने के लिये सेना-नायक किसे बनाया जाय। वे जानते थे कि पूर्वी लोगों को हराना सरल है और उसमें सेनानायक को बड़ी कीर्ति और सम्मान तथा सैनिकों को बहुत सा लूट का सामान मिलने की आशा है। मेरियस वृद्ध होने पर भी कोन्सल और जनरल बनना चाहता था। उसने

रोम के बहुत से लोगों और सीनेटरों को अपनी ओर मिला लिया और कमिटिया में यह प्रस्ताव रखवाया कि सुला को कोन्सल के पद से हटा दिया जाय और उसके स्थान पर मेरियस को नियत किया जाय। इस पर बड़ा झगड़ा मचा। यह मामला यों तय न होता देख कर सुला भी जो रोम से इस समय बाहर था—दो सेनाओं को अपने साथ लेकर रोम के बाजारों में होता हुआ मेरियस की सेना के सामने पहुँचा जिसने रोम पर अपना अधिकार जमा रखा था। युद्ध में मेरियस की सेना हार गयी और मेरियस भाग गया। एक दास ने मेरियस के एक साथी को पकड़ कर सुला के हवाले कर दिया जो मार डाला गया। इस कार्य के लिये दास दास्यता से मुक्त कर स्वतंत्र नागरिक बना दिया गया और उस स्वतंत्र नागरिक को मेरियस के साथी के प्रति विश्वासघात के दण्ड-स्वरूप एक ऊंची पहाड़ी पर झकटवा दिया गया।

यह पहला ही अवसर था कि रोम के एक नागरिक ने विजय प्राप्त करके रोम पर अधिकार किया। अब सुला रोम का ही नहीं वरन् समस्त इटली का मालिक था।

अब सुला को पूर्व की ओर ध्यान देना था। वह जानता था कि मिथ्रिडेटीज पर—जिसने फारस अथवा मेसेडोन से कहीं पराजय नहीं पाई—विजय पाना सरल कार्य नहीं है, क्योंकि वह वीर और साहसी था, यूनान में पैदा हुआ था और शिक्षण भी बहुत कुछ उसी ढंग से प्राप्त किया था। रोम से वह उतनी ही घृणा करता था जितनी हनीबाल। उसने अपने राज्य का विस्तार डान्यूब नदी तक बढ़ा लिया था और समुद्र पर भी उसी का अधिकार था। उसकी सेना में कोई तीन लाख काकेशसी और सोथियन

वीर लड़ाके थे, अर्मीनिया आदि के राजा उसके मित्र थे। वह कई और राजाओं से—न्यूमीडिया, सीरिया, मिश्र आदि से, रोम के विरुद्ध मित्रता कर रहा था। उसकी सेना में विश्वसनीय यूनानी अफ़सर भी थे।

फिर भी सुला बड़े धीरज और बड़ी शान्ति के साथ पाँच पल्टनें लेकर पूर्व की ओर चला और साल भर बाद ८६ ई० पू० में अथेन्स पर आक्रमण करके वहाँ के सब स्त्री पुरुषों को उसने कत्ल कर दिया। यहीं पर उसने सुना कि पोन्टस से एक लाख से ऊपर सेना उसे रोकने आ रही है। वह मित्र थीब्स के राज्य में होकर उत्तर की ओर बढ़ गया और करोनी नामक एक अच्छा स्थान चुन कर वहीं ठहर गया और शत्रुओं के आक्रमण बचाने के लिये अपनी सेना के दोनों ओर उसने खाइयाँ खुदवाईं। पोन्टस की सेना भी यहीं पर आ गई, भारी युद्ध हुआ; परन्तु सुला ने उस समस्त सेना का एक बड़ा भाग कत्ल कर डाला और शेष को बन्दी कर लिया। कहते हैं कि इस युद्ध में उसके केवल पन्द्रह मनुष्य मरे—पर यह विश्वास योग्य नहीं है।

इस विजय के कारण यूनान ने फिर सुला से मित्रता कर ली और मिथ्रिडेटीज का क्रोध बढ़ गया। उसे अपने मित्रों पर सन्देह हुआ। अतः उसने बहुतों को मरवा डाला। इससे बहुत लोग उसका साथ छोड़ कर रोम की ओर चले गये। आर्केलास नामक एक यूनानी अफसर पर उसे अब भी विश्वास था। अतः अब उसी के अधीन एक नयी सेना यूनान में भेजी गयी, परन्तु सुला ने स्वयं सबसे आगे बढ़ कर उसे भी पूर्णतया हरा दिया। जब यह विजयी वीर यूनान का पुनःसंगठन करने आया तो उसे खबर मिली कि रोम

की सीनेट ने उसे कोन्सल के पद से हटा कर एक दूसरे कोन्सल-फ्लेकस को नियत कर दिया है। फ्लेकस भी अब एक सेना लेकर सुला को हटाने चला परन्तु मिथ्रिडेटीज़ ने, जो पराजयों के कारण थक कर निराश हो गया था, फ्लेकस के बजाय सुला से ही सन्धि करना अधिक उचित समझा। सुला ने एशिया में बढ़ कर मिथ्रिडेटीज़ से सन्धि कर ली जिसकी शर्तें यह थीं कि राजा २००० टैलैन्ट और ७० जहाज़ उसे दे। उसे रोम के सब जीते हुए स्थान लौटाने पड़े और यह उसने प्रतिज्ञा की कि अब वह अपने राज्य से बाहर कभी हस्तक्षेप न करेगा। (८४ ई० पू०)

जिस समय सुला इन युद्धों में लगा था, रोम में फिर बहुत उथल-पुथल हो रहा था। हम देख चुके हैं कि सुला से हार कर मेरियस भाग गया। वह एक तालाब में ठोढ़ी तक पानी में खड़ा हुआ पकड़ा गया और उसे प्राण-दण्ड की आज्ञा हुई। फाँसी देने वाला एक दास था जिसे मेरियस सिम्ब्री को विजय करके इटली लाया था। मेरियस ने कहा—'क्या तू मेरियस को फाँसी देने का साहस करता है ?" दास को वास्तव में साहस न हुआ और मेरियस फिर भाग गया। इसी उदार दल के एक और प्रमुख नेता सिना को भी एक बार हटा कर भगा दिया गया परन्तु फिर उसने रोम पर अधिकार कर लिया और मेरियस को भी बुलाया। मेरियस रोम में एक दल के साथ पहुँचा जो उसके साथ हो लिया था। अब इन दोनों का ही रोम पर अधिकार हुआ। समस्त मुख्य २ शत्रु मार डाले गए। पाँच दिन तक रोम के फाटक बन्द रहे और मेरियस ने सिपाहियों सहित गलियों में घूम घूम कर और अपने शत्रुओं को ढूँढ़ २ कर कुत्तों की तरह मर-

धाया। परन्तु ८६ ई० पू० में वह अन्तिम बार कोन्सल रहकर मर गया और उसकी जगह फ्रेकस को दी गयी। इन गृह-युद्धों के समय रोम की शासन-व्यवस्था बिलकुल नष्ट हो गयी थी। सीनेट बिलकुल बलहीन हो गयी थी। रोम में अब ये दोनों कोन्सल-सिना और फ्लेकस प्रधान थे। अब फ्लेकस सेना लेकर सुला की ओर चला; जिसका हाल हम अभी पढ़ चुके हैं। उन्हें भय था कि सुला जब पूर्व से विजयी होकर लौटेगा तो हम सब को कठिन दण्ड देगा। फ्लेकस मार्ग में मार डाला गया और उसकी सेना हार गयी। सुला ने फिर भी देश को लौटने में शीघ्रता न की। उसने विजित देशों का संगठन किया और एशियावालों से पिछले पाँच वर्ष के कर स्वरूप २००० टैलेंट प्राप्त किये। इसी समय सीनेट के कुछ लोगों ने उसकी रोम में विजय की आशा देख कर लिखा—"आप चले आइये, हम आपकी रक्षा का सब प्रबन्ध कर देंगे।" सुला ने उत्तर दिया—"हमें आपकी रक्षा की आवश्यकता नहीं, हम स्वयं शीघ्र ही आपकी रक्षा के लिये आ रहे हैं।" रोम में उसका ऐसा भय छा गया कि कोन्सलों ने उसके विरुद्ध लड़ने के लिये जो सेना तैयार की थी उसीने कोन्सल सिना को मार डाला।

इस भाँति जब सुला रोम में आया तो उदार दलवालों के पास कोई प्रभावशाली जनरल नहीं था। मेरियस का पुत्र कोन्सल बनाया गया परन्तु उसका नाम भी सेनाओं को विजय नहीं दिला सका। कोन्सलों की सेना को सुला ने दो तीन स्थानों पर हरा दिया। सेमनाइट लोग अब भी उदार दलवालों की ओर थे और अबतक दृढ़ थे। रोम के केलाइन द्वार पर उनसे भी भारी युद्ध हुआ, जो एक रात भर होता रहा। परन्तु प्रातःकाल

विजय सुला को ही प्राप्त हुई। मेरियस छोटा, तथा सेमनाइत जन-रल दोनों मारे गये और सुला अब रोम का विजयी और पूर्ण स्वतंत्र अधिकारी हो गया।

अब सुला ने भी अपने विरोधियों से भयंकर बदला लिया। एक दिन जब सीनेट की बैठक हो रही थी तो पास के एक स्थान से बड़े जोर की दुःखभरी चिल्लाहट की आवाज आई, जिससे सभासदों को काम बन्द कर देना पड़ा। सुला बोला—'अपना काम चलने दो, वहाँ तो मेरी आज्ञा से एक दो विद्रोहियों को प्राणदण्ड दिया जा रहा है। उस स्थान पर लगभग पाँच हजार सेमनाइतों को कत्ल किया जा रहा था। एक २ करके इटली के सब नगर ले लिये गये और वहाँ भी यही दशा हुई, हजारों घर-बार नष्ट हो गये। इस भाँति सरदार दलने अपने विरोधियों से जिन्होंने शस्त्र-बल से नागरिकता और समानता के अधिकार प्राप्त कर लिये थे, क्रूर और भयंकर बदला लिया गया। सुला ने आतंक राज्य आरम्भ कर दिया। उसका यह व्यवहार वर्षों तक लोग न भूले।

इक्कीसवाँ अध्याय

सुला की क्रान्तिकारी शासन-व्यवस्था और उसकी असफलता

सुला राजनीतिज्ञ भी था। वह सीनेट और सरदारों की शक्ति फिर पहले के समान करना चाहता था और इस व्यवस्था को स्थायी रखने के लिये वह सीनेट को सैनिक शक्ति देना चाहता था। कार्य आरम्भ करने के पहले दो बातें और आवश्यक थीं। एक तो यह कि विरोधी दल को पूर्णतया कुचल दिया जाय और दूसरे यह कि कानून आदि बनाने और व्यवस्था में परिवर्तन करने के लिये वह कोई पदवी धारण करे। पहले कार्य के लिये उसने समस्त विद्रोही मुखियाओं के नाम की कई सूचियाँ निकालीं कि इनको प्राणदण्ड दिया जाय। बाद में उसके अनुयायियों के व्यक्तिगत शत्रुओं की भी यही दशा हुई। इटली रोम के साथ समानता के अधिकार प्राप्त कर चुका था। पहली समानता इसी बात में देखने आयी कि सब नगरों में बहुतेरे मनुष्यों को प्राणदण्ड मिले। रोम के समान ही सब नगरों ने अपने उदार दलवाले साथियों को सदा के लिये बिदा होते देखा।

फिर उसने 'डिक्टेटर' की पदवी धारण करके रोम की प्राचीन प्रथा—जो २१७ ई० पू० में दो डिक्टेटर बन जाने से

अव्यवस्था के कारण उसी वर्ष से बन्द कर दी गयी थी—को फिर चलाया। भेद यह था कि पहले के समान उसके पद की अवधि नहीं थी और व्यवस्था में परिवर्त्तन करने के अतिरिक्त न कोई विशेष कार्य ही था। कमिटिया ने भी प्रत्येक भाँति के समस्त अधिकार उसे दे दिये। इस भाँति वह बिना मुकुट के पूर्ण स्वतंत्र राजा था।

अब उसने अपनी नयी व्यवस्था आरम्भ की, जिसमें मुख्य बात सीनेट को शक्तिमान् करना और उसे प्रबन्ध, सभायें मजिस्ट्रेट तथा प्रान्तीय प्रबन्ध आदि सबका प्रधान अधिकारी बनाना था। सीनेट में सब जातियों के प्रतिनिधि संख्या के अनुसार रहते थे। जनसमूह अथवा 'कमिटिया' से कानून बनाने का अधिकार छीनकर सीनेट को दिया गया और प्रान्तों पर भी उस का अधिकार प्रधान कर दिया गया। फिर उसने इटली की एकता और दृढ़ता का प्रबन्ध किया। नगरों की पुरानी म्युनिस्पैलिटी आदि संस्थाएँ तोड़ दी गयीं। प्राणदण्ड के कारण जितने नगर खाली हो गये थे वहाँ उसने अपने सिपाहियों को बसने के लिये भेज दिया। इस भाँति नगर भी भर गये और वहाँ शान्ति की भी व्यवस्था हो गयी। इन सब से महत्वपूर्ण काम यह हुआ कि उसने फौजदारी कानून को सुधारा और अच्छे न्याय का प्रबन्ध किया। नौ अदालतें और बढ़ाई गयीं और उनमें पंच-प्रथा द्वारा निर्णय का प्रबन्ध किया गया, जो बहुत अच्छा था।

अब तक ट्रिब्यून बन कर लोग आगे बढ़ने का प्रयत्न किया करते थे, परन्तु सुला ने ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि प्रत्येक अधिकारी एक साल की अवधि के बाद आपने उस वर्ष के आय-

रण का ब्योरा लिखकर सीनेट को दे और कोई भी मनुष्य छोटे पद से एक दम सब से ऊँचा पद प्राप्त न कर सके। उसने कहा कि प्रत्येक मनुष्य को सब से नीचे के पद से धीरे २ बढ़ना चाहिये और प्रत्येक पद पर कुछ वर्ष रहना चाहिये। इस भाँति एक दम कोन्सल अथवा जनरल बनना असंभव हो गया।

इस शासन-व्यवस्था में उसे दो वर्ष लगे। अब उसने अगले वर्ष के लिये अपने को डिक्टेटर नहीं चुनवाया बल्कि सन् ८० ई० पू० में वह एक दिन समस्त शासन-प्रबन्ध और अधिकार छोड़ कर और प्रत्येक को उस पर आलोचना करने का अधिकार देकर सीधा अपने घर चला गया और फिर पास के एक गाँव में जाकर रहने लगा। वह देखना चाहता था कि उसके पीछे उसकी व्यवस्था कैसी चलती है। वहाँ आराम से जीवन व्यतीत करता हुआ, पूर्व से लाये हुए आरस्तू के लिखे ग्रन्थ पढ़ता हुआ और स्वयं भी लिखता हुआ, साठ वर्ष की आयु में ७८ ई० पू० में वह मर गया और बड़ी शान से गाड़ा गया। हजारों मनुष्य उसके लिये रोये।

इस भाँति इस विचित्र मनुष्य, रोमन प्रजातन्त्र के अन्तिम राजनीतिज्ञ अजेय वीर, अथक परिश्रमी और प्रभावशाली नेता का अन्त हुआ। उसका सब जीवन विचित्र है। उसके अन्तिम कार्य ने सब संसार को आश्चर्य में डाल दिया। उसके एक लाख से ऊपर सिपाही समस्त इटली में फैले थे। दासता से मुक्त किये हुए दस हजार मनुष्य उसके भक्त थे। समस्त इटली में उसके विरोधियों का नाश हो चुका था। कोई उससे बोलने वाला न था, परन्तु फिर भी उसने राजा बनने का प्रयत्न कभी नहीं

किया। यद्यपि उसने भयंकर अत्याचार किये, कत्ल कराये और सैकड़ों गाँव नष्ट किये, किन्तु फिर भी यह सोच कर कि ऐसी घटनायें उस समय रोम में साधारण बातें हो गयी थीं, और फिर उसने जो कुछ किया अपने व्यक्तिगत लाभ के लिये नहीं बल्कि जनता के हित के लिये किया, हमें उसके अत्याचारों को भूल जाना चाहिये। उसका एक निश्चित सिद्धान्त शासन-व्यवस्था में सीनेट को प्रधान शक्तिमान संस्था करना था और इसी लक्ष्य की प्राप्ति का उसने प्रयत्न किया, यह विचार छोड़ दिया कि साधन अच्छे हैं अथवा बुरे। अस्तु।

अब हमें यह देखना चाहिये कि सुला की शासन-व्यवस्था की उसके पीछे क्या दशा हुई। यह तो प्रत्यक्ष था कि सुला समय की गति और अधिकांश लोगों की रुचि के विरुद्ध कार्य कर रहा था। उसका कार्य कृत्रिम था। उसके कलम की एक आज्ञामात्र से लोगों के विचार नहीं बदल सकते थे। उसने शस्त्र-बल से अपनी व्यवस्था की स्थापना की थी। अतः शस्त्र-बल से ही उसकी रक्षा हो सकती थी; और अन्त में शस्त्र-बल से ही वह नष्ट की गयी। फिर जिन कारणों से सीनेट पहले अप्रिय हुई थी, वे अब भी उपस्थित थे। इन कारणों में प्रधान अधिकारियों का नीच आचरण था। वे अपनी स्वार्थसिद्धि में लगे रहते थे। इसके अतिरिक्त युद्धों के कारण खेती का काम नष्ट हो गया था, और साधारण लोगों को कुछ व्यवसाय नहीं था। अतः वे अधिकारियों से अप्रसन्न थे। इन कारणों के अतिरिक्त कुछ बाहरी कारण और थे, उन्हें भी हमें यहाँ पर देख लेना चाहिये। सुला की मृत्यु के साल भर बाद ही (७७ ई० पू० में) मेरियस के उन अनुयायियों ने—जो

मेरियस के सुला से हार जाने के समय स्पेन में भाग गये थे—विद्रोह खड़ा किया। पोम्पियस अथवा पोम्पी नामक एक युवक उन्हें दबाने भेजा गया। वह पाँच वर्ष तक वहाँ पड़ा रहा परन्तु उन्हें हरा न सका। अन्त में वहीं के एक मनुष्य ने अपने वीर नेता को मार डाला, जिससे स्पेन की सेना निराश होकर और थक कर हार गयी और विद्रोह दब गया।

इधर दासों की संख्या बहुत बढ़ रही थी। ई० पू० ७३ में उन्होंने भी विद्रोह खड़ा कर दिया और खूब लूटपाट आरम्भ कर दी। रोमन सेनाएँ—जो उनसे लड़ने आईं—हरा कर भगा दी गयीं और समस्त दक्षिण इटली उनके अधिकार में हो गया। शीघ्र ही उनकी संख्या ४०,००० हो गयी और उन्होंने एक वीर पुरुष स्पार्टकस को अपना नेता बनाया। यह ज्ञात हुआ कि विजित देश अपनी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये एक बार फिर भारी प्रयत्न करना चाहते हैं। अब एक धनिक क्रैसस, जिसने सुला के समय में विरोधियों का नीलाम का सामान मोल लेकर अपनी सम्पत्ति बहुत बढ़ा ली थी—उधर भेजा गया और बड़ी कठिनता के बाद वह दास-विद्रोह दबाने में समर्थ हुआ। अब ये दोनों विजयी पोम्पी और क्रैसस ७० ई० पू० में कोन्सलों के लिये खड़े हुए और चुन भी लिये गये। यह बात भी सुला की व्यवस्था के विरुद्ध थी। वे धीरे २ कोन्सल के पद तक नहीं पहुँचे। कोन्सल बन कर उन्होंने सुला की रही सही शासन-व्यवस्था भी नष्ट कर दी। क्योंकि ये दोनों सेना के कारण शक्तिमान थे, सीनेट उनका कुछ न कर सकती थी। पोम्पी प्रजातंत्र तथा उदार दल वालों का मुखिया और क्रैसस धनिकों का प्रतिनिधि था इनके आपस के विरोध

के कारण अवस्था और भी बिगड़ गयी। अब तक कई कार्य सुला की व्यवस्था के विरुद्ध हो चुके थे। ट्रिब्यून प्रथा भी—जिसे सुला ने बन्द कर दिया था—फिर प्रचलित कर दी गयी और सीनेट की आज्ञा के विरुद्ध भी उन्हें कोई कानून बनाने अथवा सुधार करने का प्रस्ताव कमेटिया के सामने रखने का अधिकार मिल गया। अन्त में ७ वर्ष बाद जूलियस सीजर के समय में पुजारियों को भी प्रतिनिधि भेजने का अधिकार मिल गया और इस भाँति सुला की समस्त व्यवस्था का लोप हो गया। केवल न्याय-प्रथा और कुछ म्युनिसिपैल्टियों के नियम शेष रहे।

अब इटली में कारथेज से युद्ध करनेवाले वीर नहीं रहे थे; बल्कि उनके स्थान पर निर्बल, सुस्त, निर्दय तथा विलासी मनुष्य थे जो धन देकर किसी भी ओर मिलाये जा सकते थे। बहुत से मनुष्यों ने उन्हें रिश्वत देकर अपने को कोन्सल चुनवा लिया। अन्त में इसकी बढ़ती रोकने के लिये रोम को नियम बनाने पड़े।

इटली के बाहर भी फिर बड़ी गड़बड़ मची हुई थी जिससे प्रकट था कि रोम की सरकार इतने बड़े देश का प्रबन्ध करने में असमर्थ है। यद्यपि क्रेसस ने दास-विद्रोह दबाकर छः हजार दासों को फाँसी पर लटकवा दिया था, परन्तु दासों की संख्या फिर भी बढ़ रही थी और रोम को फिर भी उनसे भय बना हुआ था।

रोम ने अपनी जल-सेना के ह्रास पर तनिक भी ध्यान न दिया। इससे इस समय भूमध्य सागर में डाकुओं ने अपना अधिकार कर लिया था। क्रीट द्वीप तथा अन्य कई स्थानों पर उनका पूर्ण अधिकार था। उनका शासन-प्रबन्ध और न्याय आदि सब कुछ इन डाकुओं के ही हाथ में था। उन्होंने भूमध्य सागर के

व्यापार को नष्ट कर दिया। किनारे के नगरों को उजाड़ डाला और रोमन प्रजातंत्र के निवासियों को जानबूझ कर खूब तंग किया।

पूर्व की ओर से और भी अधिक भय था। मेसेडोनिया में रोमन शासन के प्रति असन्तोष फैल रहा था और मिथ्रिडेटीज का भय फिर बढ़ रहा था। उसने ८३ ई० पू० में एक बार रोमन सेनाओं को हरा दिया दिया था और अब वह फिर रोम से असन्तुष्ट लोगों को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न कर रहा था। ७४ ई० पू० में उसके विरुद्ध एक सेना भेजी गयी जिसने उसे हरा दिया, परन्तु वह अपने दामाद—अर्मीनिया के राजा के—पास पहुँच गया। उस राजा से जब रोम का एक दूत मिथ्रिडेटीज को माँगने गया तो वह हँस दिया और जब रोम की सेना के एशिया में आने का समाचार उसने सुना तब भी हँसकर कहा—'सेना के हिसाब से तो उनकी संख्या बहुत कम है, परन्तु दूत-मण्डल के हिसाब से देखी जाय तो बहुत अधिक है?" रोमन सेनाओं ने एक बार उसकी सेना को हरा दिया और बहुत सा सोना लूटा, परन्तु ६८ ई० पू० में मिथ्रिडेटीज की सेना ने रोमनों को जेला स्थान पर दबा दिया।

इस भाँति इस समय रोम में ऐसी अवस्था थी जिसे सम्हालने के लिए शक्ति का केन्द्रीभूत होना अवश्यक था। अतः वहाँ केन्द्रित शक्ति अथवा राजप्रथा की ओर प्रवृत्ति झुक रही थी। प्रजातंत्र इतने बड़े विस्तृत देश को काबू में नहीं रख सकता था क्योंकि प्रतिनिधि प्रथा का अब तक वहाँ विकास नहीं हुआ था और सीनेट में लोगों का विश्वास न रहा था। उधर मिथ्रिडेटीज और डाकुओं का भय बढ़ता जाता था। अतः लोगों को किसी शक्तिशाली

मनुष्य की जरूरत हुई जो किसी समर का विजयी हो—क्योंकि विजयी वहाँ पर बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता था। सब की दृष्टि पोम्पी पर पड़ी और सर्वसम्मति से वह कोन्सल बनाया गया। पोम्पी ने भी जनता की आशा को पूरा किया क्योंकि ६६ ई० पू० में उसने सेना लेकर भूमध्य सागर में ऐसा जाल बिछाया, जिससे डाकू निकल न सके। वे घेर कर नष्ट कर दिये गये और आत्म-समर्पण करने वालों को उसने उदारतापूर्वक इटली के नगरों में बसा दिया तथा समाज में मिला लिया। उनके जहाज़ उसने अपने अधिकार में कर लिये। डाकुओं के नष्ट होते ही अनाज एकदम सस्ता हो गया क्योंकि वे लोग अनाज के जहाजों को रास्ते में ही लूट लेते थे। रोम में बड़ी प्रसन्नता हुई और पोम्पी का आदर और बढ़ा। इस भाँति रोम की यह बड़ी आपत्ति भी—जिसकी उसे सदा चिन्ता रहती थी—एक ही खटके में दूर हो गयी।

अब मिथ्रिडेटीज और बचा था। उससे लड़ने के लिये भी अब पोम्पी ही योग्य समझा गया और उसे पूर्ण अधिकार दे दिये गये। इसका विरोध भी बहुत हुआ क्योंकि यह प्रजातंत्र को नष्ट कर देना था। पोम्पी फिर सेना लेकर चला और उसने पार्थीय राजा से मित्रता कर ली, जिसने अर्मीनिया की सेनाओं को मिथ्रिडेटीज की सेनाओं से न मिलने दिया। अर्मीनिया का राजा अब अपने उत्तर और पश्चिम का कुछ भाग देकर रोम से सन्धि करने को तैयार हो गया क्योंकि उसे सन्तोष यह था कि रोमनों से मित्रता हो जायगी।

अब पोम्पी पहली सेना के साथ कुल ५०,००० सिपाही लेकर मिथ्रिडेटीज की ओर चला। इसके आगे मिथ्रिडे-

टीज की सेना न ठहर सकी और मिथ्रिडेडीज स्वयं भाग गया। वह और राजाओं को अपनी ओर करना चाहता था परन्तु पड़ोसी राजा और उसके कुटुम्बी भी उससे अप्रसन्न थे। उसके एक पुत्र ने विद्रोह करके उसे हरा दिया, जिसमें वह मारा गया। पुत्र ने उसकी लाश रोम के प्रति भक्ति दिखाने के लिये, पोम्पी के हवाले कर दी, जिसने उसे उचित आदर के साथ गड़वा दिया। इस भाँति इस बड़े राजा का भी ६८ वर्ष की आयु में—जब वह ५७ वर्ष राज्य कर चुका था—६३ ई० पू० में अन्त हो गया।

अब पोम्पी अर्मीनिया होकर शाम पहुँचा और वहाँ उसने शान्ति और व्यवस्था स्थापित की। अन्त्योक को वहाँ की राजधानी बनाया और उसके एक रोमन प्रान्त होने की घोषणा की। इसी भाँति आस पास के कई नगरों को जीतकर रोम में मिलाया। इन विजयों में उसे धन भी खूब मिला। कहते हैं कि उसने लगभग पाँच करोड़ रुपया अपने सिपाहियों में बाँटा और फिर भी ढाई करोड़ रुपया लाकर रोम के कोष में जमा किया। इन देशों में उसकी विजय का प्रभाव भी बहुत पड़ा।

यहाँ हमें यह भी देखना चाहिये कि रोम में उस समय क्या हो रहा था। इस समय समस्त इटली में अविश्वास फैल रहा था और षड्यंत्र चल रहे थे। वहाँ के लोगों को और विशेष कर सरदारों को भय था कि सुला की भाँति पोम्पी भी विजयी होने से लौटने पर निरंकुश शक्ति चाहेगा। धनवानों को इसकी विशेष चिन्ता थी, क्योंकि पोम्पी उदार, प्रजातन्त्रवादियों का भक्त मनुष्य था। रक्तपात और भय को बचाने के लिये रोम में बहुत से उपाय सोचे जा रहे थे। कोई लोकप्रिय दल को फिर

शक्तिमान् करना चाहता, कोई पॉम्पी के मुकाबले के लिये एक नयी सेना तैयार करना चाहता। कुछ लोग भविष्य में लूटमार की आशा देख कर प्रसन्न थे। केटेलाइना नामक एक धनी—जिस पर बहुत सा ऋण हो गया था—रोम की शासन व्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर के ऋण से बचना चाहता था। अतः उसने असन्तुष्ट मनुष्यों की एक बड़ी सेना इकट्ठी कर ली। उसके कुछ साथी रोम में रहे जो अवसर पाकर वहाँ आग लगा दें और ऐसी गड़-बड़ के समय रोम पर अधिकार कर लें। परन्तु गुप्तचरों ने इसका पता सिसरो को—जो बड़ा प्रभावशाली वक्ता था और इसी के कारण ६३ ई० पू० में कोन्सल के पद पर पहुँच गया था—दे दिया और उसने कड़े साधनों से विद्रोह दबा दिया। षड्यंत्रकारी मार डाले गये और केटेलाइना की सेना हार गयी तथा वह भी मारा गया।

बाईसवाँ अध्याय

जूलियस सीज़र और उसके कार्य

इस समय रोम में कई योग्य और प्रसिद्ध मनुष्य थे। सिसरो एक साधारण घर में उत्पन्न हुआ था और फिर वकील हो गया था। वह रोम का सबसे बड़ा और प्रसिद्ध वक्ता था और उसके समय में और उसके बाद भी उसके व्याख्यानों का रोम की जनता और भाषा पर भारी प्रभाव पड़ा। वह यूनानी साहित्य का विद्वान् था

और उसने कई यूनानी पुस्तकों का अनुवाद भी किया था। वह अनुदार दल का राजनीतिज्ञ था और रोम के दो ऊँचे दलों सरदार और धनिकों को मिलाना चाहता था, जिससे अशांति दूर हो जाय। आरम्भ में उसे सफलता मिली, कोन्सल बन कर वह केटीलाइना का विद्रोह दबाने में सफल हुआ; परन्तु रोम की जनता ने विद्रोह के औचित्य अथवा अनौचित्य का विचार न करके सिसरो पर केटीलाइना के अनुयायियों के वध का अभियोग लगाया और उसे देश-निकाला दे दिया।

केटो सरदारों में सबसे श्रेष्ठ था और क्रेसस बड़ा भारी धनी था। वे दोनों रोम में उस समय प्रसिद्ध मनुष्य थे। इनके अतिरिक्त एक मनुष्य और था जो धीरे २ प्रसिद्ध होता जाता था और जो अब तक कई छोटे २ पदों पर रह चुका था। वह सीनेट का भी सभासद था। यह जूलियस सीजर था जो १०२ ई० पू० में उत्पन्न हुआ और शीघ्र ही प्रसिद्धि प्राप्त करने लगा था। वह जीवन-निर्वाह और वेषभूषा के लिये बहुत सा रुपया व्यय करने वालों का नेता था, चतुर और प्रभावशाली वक्ता था। क्रेसस और सीज़र ने बहुत दिनों तक साथ काम किया था। इन्होंने केटीलाइना को भी सहायता दी थी, परन्तु उसके अराजकता के प्रचार के बाहर थे। अतः अब तक बचे रहे। जब पोम्पी एशिया में था और रोम की सीनेट में भावी व्यवस्था पर विचार हो रहा था तो सीज़र ने पोम्पी को सीनेट में बड़ा स्थान देने और शक्तिमान बनाने का भी प्रस्ताव किया था।

६२ ई० पू० में पोम्पी अपनी विजय से लौटा। रोम में बड़ा भय फैल रहा था कि अब वह क्या करेगा। परन्तु उसने सब

आशंकाओं के विरुद्ध ऐसा आचरण किया जिसे देख कर सब को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने नियम के अनुसार इटली में उतरते ही अपनी सब सेनाओं को भंग कर दिया और फिर अपने गाँव में जाकर रहने लगा। वह महत्वकांक्षी था, शक्तिमान रहना चाहता था, परन्तु रोम की स्थापित व्यवस्था के भीतर रह कर ही सेनाएँ भंग करके उसने केवल यही कहा कि सीनेट उसके लिये दो कार्य करे—एक तो पूर्व में उसके किये हुए प्रबन्ध को स्वीकार करे और दूसरे उसके वीर सिपाहियों को भूमि ईनाम में दे। सीनेट केटीलाइन के विद्रोह को दबा कर फूल गयी थी। फिर वह शक्तिमान हो गयी थी। अतः उसने पोम्पी की सब बातों को न माना। पोम्पी ने विजयी और बलवान होते हुए भी अपने को नगण्य पाया। छोटी २ बातों पर उसका और सीनेट का मतभेद था। सीनेट में उसके कई विरोधी थे। अतः वह सीनेट को तोड़ने का अवसर देखता रहा।

लोकप्रिय दल में उसे ऐसे ही मनुष्य—सीजर और क्रेसस—मिले। सीजर इस समय स्पेन में था। यदि ये तीनों—पोम्पी जिसका बड़ा यश और आदर था; क्रेसस जिसके पास बड़ा धन था और सीजर जिसके पास बड़ी सेना थी—मिल जाते तो सीनेट कुछ न कर सकती थी। यही सोच कर इन तीनों ने अपना गुट बना लिया। ५९ ई० पू० में सीजर कोन्सल बनाया गया। अब पोम्पी की शर्तें स्वीकार की गयीं, और उसके सिपाहियों को भूमि इनाम दी गयी। सीनेट ने इसका विरोध किया। केटो इतना आपे से बाहर हो गया कि सीजर को उसकी गिरफ्तारी की आज्ञा देनी पड़ी, परन्तु सीनेट कुछ कर न सकी।

इसी वर्ष ट्रिब्यून ने एक प्रस्ताव किया कि सीजर को एक सेना लेकर सिजल्पाइन गॉल की ओर जाना चाहिये क्योंकि उस ओर से रोम को फिर भय हो रहा था। इसके लिये दो अथवा तीन वर्ष नहीं बल्कि पाँच वर्ष के लिये वह कोन्सल बना दिया गया। सीजर भी ख्याति पाने के लिये वहाँ जाने को तैयार था, परन्तु जाने से पहले उसने रोम में उचित प्रबन्ध करना चाहा। उसने पोम्पी से अपनी लड़की ब्याह दी और स्वयं दूसरे कोन्सल पीसो की लड़की से ब्याह कर लिया जिससे सम्बन्ध हो जाने के कारण ये दोनों उसकी ओर मिले रहे। फिर उसने अपने दो विरोधियों—केटो और सिसरो—को भी इधर उधर भेज दिया। केटो को उसने साइप्रस भेज दिया कि वह वहाँ के राजा को, जो गद्दी से उतार दिया गया था, फिर गद्दी पर बिठाये। सिसरो को सीजर और पोम्पी की ही युक्ति से देश-निकाला दे दिया गया।

सीनेट को ठीक रखने के लिये पोम्पी को रोम में छोड़ कर सीजर २८ मार्च ५८ ई० पू० में एक बड़ी सेना लेकर गॉल की ओर चला। वह इतनी तीव्र गति से चला था कि आठ दिन में ही स्विट्ज़रलैण्ड के पास आ गया और उन स्विसों को, जो रोम पर आक्रमण की तैयारी कर रहे थे, हरा दिया। अब उसने जर्मनी की ट्यूटोनिक जाति की सेनाओं की ओर ध्यान दिया जो अपने महा नेता एरियोविस्टस की अधीनता में गॉल की उपजाऊ भूमि पर अधिकार करना चाहते थे। राइन नदी के बाँये किनारे के पास भारी युद्ध हुआ जिसमें सीज़र की सेना हारती मालूम पड़ी; परन्तु जर्मन नेता की स्त्री ने एक अन्धविश्वास के कारण

नये चन्द्र-दर्शन के दिन तक किसी को कत्ल न करने की सलाह दी। इस बीच में सीज़र ने अपनी सेना फिर ठीक कर ली। भारी युद्ध हुआ जिसमें सीज़र की सेना का दक्षिणी भाग तो विजयी रहा। परन्तु वाम भाग ट्यूटनों के आगे हार कर भाग गया। इतने ही में सीज़र की बची हुई सेना भी आ गयी, जिसने शत्रुओं को हरा कर राइन नदी के उस पार भगा दिया। इसके बाद वह कुछ दिन मिजल पाइन्ट में ठहरा रहा और अपने व्यवहार और न्याय से उसने सबको प्रसन्न किया। पो नदी की घाटी के लोगों को उसने रोम की नागरिकता और समानता के अधिकार दिलवाने का भी विश्वास दिलाया।

अब तक तो सीज़र ने रोम और रोम के मित्रों के शत्रुओं को हराकर रोम की भलाई की थी परन्तु अब वह केवल अपनी ख्याति और शक्ति के लिये ही आगे बढ़ा।

५७ ई० पू० में वह राइन पार करके उन बेलजियन जातियों के सामने पहुँचा जो गॉल के उत्तर-पूर्व में अपना अधिकार किये हुए थीं। यहाँ पर उसने लाखों की सेनाओं को दो बार हराया, यद्यपि बीच में एक बार उसकी सेना का भी कुछ भाग हार गया था।

इसी समय रोम में सीनेट ने सिसिरो को बाहर से बुलवा लिया था और वह त्रिकूट में फूट डालने के उपाय कर रही थी। ऊपर से उसने सीज़र और पोम्पी का पक्ष समर्थन किया। सीज़र अब फिर रोम के लुक्का नामक एक उपनिवेश में लौट आया और वहाँ उसने रोम का सब समाचार सुना। अतः उसने पोम्पी के साथ दूसरा प्रबन्ध किया जिसके अनुसार पोम्पी

और क्रेसस ५५ ई० पू० के लिये कोन्सल बनाये गये और उनसे कहा गया कि सीज़र की पाँच वर्ष की अवधि समाप्ति होने पर पाँच वर्ष के लिये वे और बढ़वा दें और उसके लौटते समय ऐसा प्रबन्ध रखें जिससे उसकी दशा पोम्पी के समान न हो।

अब सीज़र फिर गॉल में चला और उसने उन विजयों का आरम्भ किया जिनके कारण उसकी गणना विश्व-विजेताओं में की जाती है। पहले उसने वेनेटी नामक एक वीर डाकुओं की जाति को हराया। अब गॉल में उसके सामने लड़ने वाला कोई न था, परन्तु जंगलों में लाखों जंगली मनुष्य रहते थे जिनका सीज़र की सेना से सामना हुआ। इनके आगे सीज़र की घुड़सवार सेना हारकर भाग गयी और सीज़र हार गया। परन्तु अब सीज़र ने नियम के विरुद्ध छल का अवलम्बन किया। जब उनके नेता संधि की बातचीत करने के लिये सीज़र के डेरों पर आये तो उसने उन सबको कैद कर लिया और फिर अपनी सेना को शत्रु-सेना पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। वे लोग नेताहीन थे और साथ ही वे युद्ध के लिये बिलकुल तैयार न थे; क्योंकि उनके नेता तो संधि की बातचीत करने गये थे। अतः रोमन सेना ने उन्हें हरा दिया, यद्यपि उनके भी हजारों मनुष्य मरे।

केटो इस समय साइप्रस में विजय पाकर और बहुत सा धन लेकर रोम लौट आया था और रोम में उसका बड़ी धूमधाम से स्वागत किया गया।

केटो ने सीज़र की विजयों का हाल सुनकर प्रस्ताव किया कि सीज़र ने इतना लज्जा-जनक और धोखेबाजी का काम किया है कि उसे जिन्दा ही शत्रुओं के हवाले कर देना चाहिये। परन्तु पोम्पी

और क्रेसस के आगे वह कुछ न कर सका। सिसिरो भी भय के कारण केटो का समर्थन न कर सका। अब पोम्पी अपनी विजय की स्मृति के लिये एक भारी थियेटर-भवन बनवा रहा था जिसमें खेल देखने के लिये चालीस हजार मनुष्यों के लिये स्थान था। उसको खोलते समय पवित्रता के लिये चार सौ शेरों और बीस हाथियों का बलिदान किया गया।

सीज़र ने अब फिर राइन पार करके जर्मन जातियों को हराया और फिर दो सेनायें और आठ सौ जहाज लेकर डोवर का मुहाना पार कर ब्रिटेन में भी उसने प्रवेश किया और वहाँ भी नाममात्र को अपनी अधीनता स्वीकार करा ली। उसे ब्रिटेन को जीतने का समय नहीं था, क्योंकि जब वह वहाँ पर था तो गॉल में फिर भयंकर विद्रोह आरम्भ हुआ। सीज़र ने बड़ी कठिनाई से उसे भी दबा दिया।

उत्तर में दबाये जाने पर दक्षिण में और भी अधिक ज़ोर से विद्रोह आरम्भ हुआ। अब उनका नेता वीर वर्सिनगेटोरिक्स था जिसने ५२ ई० पू० में सीजर की सेना को हराकर भगा दिया और जिसमें सातसौ से ऊपर रोमन सैनिक मारे गये। परन्तु अब बहुत सी जर्मन जातियाँ गॉल के केल्टों के विरुद्ध सीजर से मिल गई थीं और उन्हीं की सहायता से सीज़र ने ५० ई० पू० में गॉलों को हरा दिया। गॉलीय सरदार वर्सिनगेटोरिक्स ने अपने साथियों को मरने से बचाने के लिये आत्मसमर्पण कर दिया, परन्तु रोमन विजयी ने इस त्याग और वीरत्वपूर्ण कार्य को न समझ कर झट उसे मरवा डाला। इस भाँति यह भयंकर युद्ध भी समाप्त हुआ। इसमें हजारों मनुष्य मारे गये; हजारों गाँव उजाड़े गये; जातियाँ

दास बना कर बेची गयीं और अनेक सैनिक अंगहीन किये गये। इन युद्धों से रोम को गॉल की ओर से चिन्ता जाती रही—जर्मन जातियों के आक्रमण से पश्चिमी यूरोप तीन सौ वर्ष तक बचा रहा। इन्हीं विजयों के कारण फ्रांसीसी राष्ट्र और रियासत की नींव पड़ी। सीज़र उनके साथ अब बड़ी नम्रता का वर्ताव करने लगा। अतः वे लोग भी इसके शासन के अनुकूल होते गये और इन देशों में सभ्यता शीघ्र ही फैल गयी। गॉल ने रोमन प्रभुत्व स्वीकार कर लिया और बाद में उस पर गर्व भी किया।

दूसरा परिणाम यह हुआ कि सीज़र की सेना व्यक्तिगत रूप से सीज़र की भक्त हो गयी, न कि रोम के प्रजातंत्र की। इन युद्धों के कारण वे लोग अनुभवी, शिक्षित, तेज और साहसी हो गये। अतः उनकी सहायता से सीज़र सम्राट् पद पाने में समर्थ हुआ।

इस समय रोम में त्रिकूट की मैत्री ढीली पड़ चली थी। पोम्पी और क्रेसस ने अपने २ को पाँच २ वर्ष के लिये स्पेन और सीरिया का शासक नियुक्त करवा लिया था; क्योंकि वहाँ भी अशान्ति मची हुई थी। ५४ ई० पू० में क्रेसस एक बड़ी पल्टन लेकर शाम की ओर चला। एक अरबी शेख ने धोखा देकर उसे पार्थी सेना से घिरवा दिया। गर्म मरुस्थल में रोमन सेना कुछ न कर सकी। चारो ओर से बाण-वर्षा होने लगी और सब सेना नष्ट हो गयी। जून में क्रेसस भी मार डाला गया। इसके बाद पार्थी जाति सदा अजेय रही और रोम की सीमा पूर्व की ओर कभी न बढ़ी।

दो वर्ष तक रोम में बड़ी अराजकता फैली रही। कौन्सल पद के लिये युद्ध और रक्तपात हुए, जिनसे थक कर सीनेट ने अकेले पोम्पी को ही सब अधिकार देकर ५२ ई० पू० में कौन्सल बना-

दिया। पोम्पी भी ऐसे अवसर की ही ताक में था क्योंकि शासन-व्यवस्था का पूर्ण पालन होने के कारण क्रेसस के मरने के बाद भी वह स्वतन्त्र कोन्सल अपनी इच्छा से न बना।

क्रेसस की मृत्यु से पोम्पी और सीजर को जोड़नेवाली कड़ी टूट गयी। ५४ ई० पू० में पोम्पी की स्त्री और सीजर की पुत्री जूलिया के मरने से उनका सम्बन्ध भी टूट गया। फिर पोम्पी सीजर से द्वेष के कारण जलने भी लगा था क्योंकि पोम्पी अब तक अपनी कीर्ति और शक्ति न बढ़ा पाया था और सीजर अब रोम में सब से बड़ा जनरल समझा जाने लगा था।

सीजर ४९ ई० पू० में गॉल में शान्ति स्थापित करके लौट कर रेवेना स्थान पर आ गया था, परन्तु यहाँ उसने सुना कि रोम में उसका बड़ा विरोध हो रहा है। उसकी जगह सीनेट ने एक दूसरा मनुष्य भी नियत कर दिया है और उसे अधिकार छोड़ने की आज्ञा दे दी है। अतः उसने कहलवाया कि यदि उसकी सेनाओं की रक्षा के लिये ४८ ई० पू० का उसे कोन्सल नियत किया जाय तो वह रोम आ सकता है। परन्तु केटो आदि के प्रभाव के कारण सीनेट उससे बहुत अप्रसन्न थी। ५० ई० पू० में कोन्सल मार्सेलास ने सीजर के अपने उत्तरदायित्व पर बसाये हुए एक उपनिवेश के एक मनुष्य को पकड़ कर बेतों से उसकी खाल उधेड़ दी और कहा—"जा अपने घाव सीजर को दिखा।" ऐसी बातों से प्रकट था कि सीनेट सीजर से कितनी अप्रसन्न थी। मार्सेलास ने पोम्पी के गाँव में आ उसके हाथ में तलवार देकर कहा कि तुम उठकर सीजर से लड़ने के लिये सेना तैयार करो। इस भाँति अब पोम्पी सीनेट का पक्ष-समर्थक और सब से बड़ा

समझा जाने लगा था, यद्यपि वह अब तक सदा सीनेट का विरोधी रहा था। दो ट्रिब्यूनों ने एक गाड़ी किराये पर करके फौरन सब समाचार सीज़र को जाकर सुनाए जो इटली और सीजल्पाइन गॉल की सीमा के पास रुका हुआ था। अब सीज़र प्रजातंत्र और समानता का पक्षपाती बनकर—क्योंकि वह सब प्रान्तवालों को रोम और इटलीवालों के समान अधिकार दिलाना चाहता था—सीनेट के पक्षपाती और अपने पुराने मित्र और दामाद पोम्पी से लड़ने के लिये आगे बढ़ा और आगे के पाँच वर्षों के कार्य अति तीव्र गति और विजय, शासनव्यवस्था आदि ऐसे हुए जिनके कारण सीज़र के समय के बाद के सब इतिहासकारों ने एकस्वर से उसे 'महान्' की पदवी दी।

तेईसवाँ अध्याय

रोम में सीज़र की विजय और व्यवस्था

प्रजातंत्र का अन्त

सीज़र ने इटली में प्रवेश किया और ४८ ई० पू० से सीज़र और पोम्पी का युद्ध—जो गृहयुद्ध कहलाता है—आरम्भ हो गया। बड़ी शीघ्रतापूर्वक सीज़र ने पोम्पी की सेनाओं को हराना आरम्भ किया और कई स्थानों पर उन्हें हरा कर रोम में आ उपस्थित हुआ। पोम्पी और सीनेट की सब आशायें व्यर्थ हुईं। पोम्पी तथा

बहुत से सरदार भागने के लिये ब्रिंडिसी पहुँचे। वहाँ भी सीजर गया और पोम्पी—अपने पुराने विजयस्थान एपिरस को भाग गया। जूलियस सीजर ने दो मास—मार्च और अप्रैल—में ही समस्त रोम और इटली पर अधिकार कर लिया। उसकी सेना दिन २ बढ़ती जाती थी और समुद्र पर भी उसका अधिकार हो गया था।

अब उसे स्पेन की ओर से भय था। अतः शीघ्र ही सीज़र वहाँ पहुँचा और पहाड़ तथा चढ़ी हुई नदियाँ युक्ति से पार करके शत्रु सेना से भिड़ गया और उसे हरा दिया। परन्तु उसने उनके साथ पूर्ण दया का बर्ताव किया। कैद किये हुए जनरलों को बिना किसी क्षति के छोड़ दिया और न कोई महल अथवा गाँव आदि लूटा। इस व्यवहार से—जो पोम्पी के व्यवहार से बिलकुल भिन्न था—लोग बड़े प्रसन्न हुए और उसकी प्रशंसा करने लगे।

अब सीज़र एशियाटिक सागर पार करके पोम्पी के पीछे एपिरस पहुँचा; परन्तु पोम्पी की सेना ने उसे भारी क्षति के साथ हरा दिया जिसमें सीज़र के एक हजार सिपाही मरे। दूसरे वर्ष ४८ ई० पू० में सीज़र ने कुछ नई सेना पाकर पोम्पी की दूनी सेना का फिर सामना किया। थिसली में फार्सेलिया स्थान पर भारी युद्ध हुआ। अन्त में पोम्पी के ६००० सैनिक मारे गये और सीज़र की विजय हुई। पोम्पी की सब कीर्ति उसकी हार के साथ एकदम नष्ट हो गयी। अब उसने एशिया माइनर जाने का विचार किया क्योंकि शायद वहाँ उसको पहली विजय के कारण सैनिक मिल जाते। परन्तु शीघ्र ही उसे समाचार मिला कि वहाँ का बड़ा राजा अण्ट्योक सीज़र की ओर मिल गया है। अतः वह मिश्र को जाने लगा, परन्तु उसीके एक

सैनिक अफसर ने जाते समय तलवार से उसे मार डाला। उसका सर सीज़र के सामने लाया गया। वह अपने पुराने परम मित्र और हाल के परम शत्रु के ऐसे दुःखान्त पर रो पड़ा।

सीज़र पोम्पी के पीछे २ कुछ आदमियों को साथ लेकर मिश्र तक पहुँच गया था। यहाँ पर मिश्र की अशान्ति दूर करने के लिये वह कुछ दिन अलेक्जेंड्रिया (सिकंदरिया) में रहा क्योंकि वह अपने देश के किसी भाग में अराजकता नहीं रहने देना चाहता था। यहाँ एक बार उसके शत्रुओं ने उसे घेर लिया और उसने समुद्र में कूद कर एक कप्तान की सहायता से जान बचाई। इस कप्तान को उसने बास्फोरस का राजा बना दिया।

इसी समय—उसकी अनुपस्थिति में ही—रोम की सीनेट ने ४८ ई० पू० के अक्टोबर मास में उसे पाँच वर्ष के लिये कोन्सल नियत कर दिया। इस प्रकार अब वह विधिपूर्वक रोम का अधिकारी और शासक हो गया।

मिश्र के बाद सीज़र अफ्रीका पहुँचा और वहाँ भी कई बार विजय प्राप्त कर और न्यूमीडिया का बहुत सा भाग रोम में मिला कर अपने देश को लौटा। कुछ दिन बाद एक स्थान पर सीनेट के सभासद उससे यह कहने आये कि उन्होंने उसे दस वर्ष के लिये डिक्टेटर नियत कर दिया है। सीज़र उनके सामने बैठा रहा, उठकर खड़ा न हुआ, जो वहाँ के पुराने नियम के विरुद्ध था। सीनेटर लोग उसके इस अपराध को कभी न भूले और उसकी मृत्यु का यह भी एक कारण हुआ।

अब डिक्टेटर जूलियस सीज़र रोम में प्रधान था। चतुर सिपाही होने के अतिरिक्त वह बड़ा राजनीतिज्ञ भी था। अतः युद्धों

से निपट कर उसने प्रबन्ध और राजनियम आदि की ओर ध्यान दिया—यद्यपि उसे इन कार्यों में अपनी पूरी योग्यता दिखाने का समय नहीं मिला।

रोम नगर जिसमें इस समय चार पाँच लाख के ऊपर मनुष्य रहते थे, कई भागों में बाँट दिया गया और न्यायालयों में भी सुधार किया गया। प्रान्तीय शासकों का कार्य-काल एक वर्ष और कोन्सलों का अधिक से अधिक दो वर्ष नियत किया गया। राज-द्रोह अथवा विद्रोह के लिये देश-निष्कासन का दण्ड नियत कर दिया गया। सीजर ने ज्योतिष में निपुण होने के कारण प्रचलित कलैन्डर (पंचांग) में भी उसने सुधार किया। उसमें ९० दिन जोड़े गये और पहली जनवरी ४५ ई० पू० से वर्ष ३६५¼ का माना जाने लगा जो अब तक ३५५ दिन का माना जाता था। यह पंचांग १६ वीं शताब्दी तक इसी प्रकार चलता रहा।

इसी बीच में पोम्पी के पुत्रों ने सेना इकट्ठी करके स्पेन में फिर विद्रोह किया जिससे लगभग एक वर्ष तक सुधारों का कार्य रुका रहा। इस युद्ध में भी सीजर की विजय हुई। उसके एक हजार मनुष्य मरे, परन्तु शत्रुओं के तीस हजार।

युद्ध के बाद सीजर फिर सुधार करने में लगा। सीनेट में उसने सब प्रान्तों के मुखिया लोग बुलाये और उसके सभासदों की संख्या बढ़ाकर ९०० कर दी गयी और म्युनिसपैलटियों के शासन और संगठन-सम्बन्धी महत्व-पूर्ण कानून बनाये।

४५ ई० पू० में सीजर अकेला ही कौंसल था। साथ ही वह डिक्टेटर भी था। इस भाँति एक प्रकार से वह पूर्ण राजा था। यद्यपि ५२ ई० पू० में पोम्पी भी अकेला कोन्सल रह चुका

था परन्तु वह पाँच सौ वर्ष से स्थापित प्रजातंत्र का अन्त करने में समर्थ न था। सीज़र ने यह कार्य पूरा कर दिया। प्राचीन काल के सात राजाओं की मूर्तियों के पास अब सीजर की आठवीं मूर्ति खड़ी कर दी गयी। पाँच सौ वर्ष के प्रजातंत्र का इतिहास, उसके अच्छे और बुरे तथा लज्जा-जनक कार्य भुला दिये गये और अन्तिम राजा टार्क्विनस सुपर्वस से फिर इतिहास का आरंभ किया गया। परंतु इस दूसरे टार्किनस सुपर्वस (सीज़र) के पीछे एक दूसरा ब्रूटस * भी उपस्थित था। ब्रूटस (जूलियस सीजर के समय का) कट्टर प्रजातंत्र वादी था और यद्यपि इस समय वह सीजर को अधिकारी मान कर उससे मिल गया था फिर भी सीजर के अन्य शत्रु उसे सीजर के विरुद्ध उसकाते रहे और प्रजातंत्र के संस्थापक ब्रूटस की याद दिलाते रहे। वह स्वयं भी सीज़र के बहुत से राजाओं के से कार्य देखकर जल गया था। सीजर ने पुराने राजाओं के समान ही पोशाक धारण करना आरम्भ कर दिया और सिरपर मुकुट रखा। उसने सोने के नये सिक्के चला कर उन पर भी अपनी मुकुट-सहित मूर्ति छपवाई। प्रत्येक वस्तु मोल लेनेवाले को यह बात याद दिलायी जाने लगी कि रोम में पहले एक राजा था और वह एक देवी का पुत्र था। इस भाँति सीज़र देवता भी माना जाने लगा। सीनेट में भी वह एक सोने की कुर्सी पर बैठता था।

सीज़र ने सीनेट को भी वश में कर लिया था। सभासदों के खाली स्थानों को वह स्वयं भर देता था। उसने रोम में कुछ

* ५१० ई० पू० में सातवें और अन्तिम राजा सुपर्वस को ब्रूटस नाम के ही एक मनुष्य ने मारा था।

अच्छी इमारतें बनवाईं और बाढ़ से बचने के लिये टाइबर नदी का प्रवाह भी बदला।

इन सुधारों से जब बहुत लोग प्रसन्न हो रहे थे तो कुछ ऐसे भी थे जो विरोधी थे। कुछ उसकी वृद्धि से जल रहे थे। ब्रूटस और केसियस आदि सीज़र की ऐसी निरंकुशता न देख सकते थे। अतः उन्होंने उसका प्राण लेने के लिये एक षड्-यंत्र रचा।

४४ ई० पू० के मार्च मास में सीनेट द्वारा सीजर को राजा की पदवी दी जाने वाली थी। एक ज्योतिषी ने उस दिन सीजर को भारी अपघात होना बतलाया था। उसकी स्त्री ने भी अशकुनों के कारण उसे रोका, परन्तु सीज़र के पास भय कभी फटका तक न था। अतः वह पालकी में बैठकर सीनेट की ओर चला। षड्यंत्र की खबर चारों ओर फैल रही थी। एक मनुष्य उसकी पालकी के पास आया और एक कागज पालकी के अन्दर फेंककर कह गया 'इसे पढ़ो।' उस कागज में षड्यंत्र का कुल हाल लिखा था, परन्तु सीज़र ने उसे कोई प्रार्थना-पत्र समझ कर बिना पढ़े ही अपने पास रख लिया। जब वह सीनेट-भवन में जाकर बैठ गया तो सिम्बर नामक एक मनुष्य ने उसे लिखित प्रार्थना-पत्र दिया कि उसके भाई को—जिसे देशनिकाला हो चुका था—वापिस बुला लिया जावे। सीज़र के कोई ठीक उत्तर न देने पर सिम्बर ने उस पर शस्त्र-प्रहार किया और इसी समय एक दूसरे सदस्य ने भी खड्ग चलाया। सीज़र की आयु छप्पन वर्ष की थी। फिर भी उसने रक्षा के लिये सम्हलना चाहा, परन्तु शीघ्र ही उसे मालूम हुआ कि आक्रमणकारी दो ही नहीं बल्कि उसके चारों ओर वे ही

लोग हाथ बढ़ाये खड़े हैं। ब्रूटस को भी उनमें देख कर सीज़र को बड़ा दुःख हुआ; क्योंकि वह ब्रूटस को पुत्र के समान प्यार करता था और उसने उसे एक अधिकारी भी बना दिया था। शीघ्र ही चारों ओर से सीज़र पर आक्रमण होने लगे। उसका शरीर घावों से भर गया और थोड़ी देर बाद वह वहीं मर गया। इस भाँति इस सब से प्रथम और महान सम्राट् का अन्त हुआ। समस्त देश उसके लिये रोया और जनता के क्रोध से बचने के लिये हत्यारों को इधर उधर भागना पड़ा।

षड्यंत्रकारियों ने सीज़र को मार कर कोई अच्छा कार्य नहीं किया। वे प्रजातंत्र स्थापित न कर सके, क्योंकि उसकी जड़ खुद चुकी थी। सीज़र की जगह के लिये तीन उम्मेदवार खड़े हो गये। परिणाम-स्वरूप १५ वर्ष तक अशान्ति मची रही। अन्त में सीज़र के ही सिद्धान्तों पर चल कर एक मनुष्य ने शांति स्थापित की।

चौबीसवाँ अध्याय

आगस्टस

सीज़र की मृत्यु के बाद मुख्य शक्ति उसके मित्र जनरल एन्टनी के हाथ में रही, जो कौन्सल भी हो गया था। दूसरा शक्तिमान् मनुष्य लिपिडस था। परन्तु इसी समय एक तीसरा मनुष्य आक्टेवियस भी सामने आया, जो सीज़र की बहन का

नाती था। इसे सीज़र ने अपने जीवन-काल में ही अपना उत्तराधिकारी बना दिया था और कई युद्धों में भी साथ रखा था। इस समय इसकी आयु १६ वर्ष की थी और वह एपिरस में शिक्षा प्राप्त कर रहा था। एन्टनी और लिपिडस के शक्तिमान होने और सीज़र की जगह के उम्मेदवार होने का समाचार सुन कर, ऐसे नाजुक समय में यह भी रोम आया और सीज़र के सिंहासन पर अपना अधिकार बताया। ये तीनों ही उसकी जगह के लिये उम्मेदवार थे।

एन्टनी और लिपिडस समझते थे कि इस बालक को तो वे अपने हाथ का खिलौना कर लेंगे परन्तु उसने राजनीति और षड्यंत्र रचने में बड़ी योग्यता दिखलायी।

रोम में प्रजातन्त्र के पक्षपाती दल ने आक्टेवियस आदि से लड़ने के लिये सेनाएँ तैयार कीं। इनका इरादा सिसिरो को कोन्सल बनाने का था अतः ब्रूटस आदि प्रजातन्त्र दल के नेताओं के अधीन एक सेना का आक्टेवियस की सेना से युद्ध हुआ जिसमें प्रजातन्त्र दल की पराजय हुई। इसी भाँति इधर उधर और भी कई लड़ाइयाँ होती रहीं। परन्तु रोम में एक सीज़र का पक्षपाती दल अब भी उपस्थित था, जो अब तक रक्तपात तथा लड़ाइयों में सम्मिलित नहीं हुआ था। आक्टेवियस को सीज़र का सच्चा उत्तराधिकारी समझ कर और उसमें सीज़र के गुण देख कर बहुत से सिपाही उसकी ओर मिल गये और उन्होंने आक्टेवियस के कोन्सल होने की घोषणा भी कर दी। अब एन्टनी और लिपिडस ने भी उससे जाकर संधि कर ली, जिसके अनुसार फिर एक त्रिकूट की स्थापना हुई और यह निश्चित हुआ कि

एन्टनी गॉल में रहे। आक्टेवियस अफ्रीका, सिसिली और सार्डि-निया का मालिक बने और लिपिडस स्पेन का मालिक बने और अगले वर्ष कौन्सल भी हो। यह भी निश्चित हुआ कि सीज़र की नीति कायम रखी जाय और उसके मारनेवालों तथा शत्रुओं को दण्ड दिया जाय। इसके अनुसार एन्टनी और आक्टेवियस, ब्रूटस और केसियस को दण्ड देने के लिये पूर्व की ओर भेजे गये।

रोम की कमिटिया ने भय के कारण इनके इस प्रबन्ध को स्वीकार कर लिया। अब सीज़र को मारनेवालों और उसके शत्रुओं की सूचियाँ तैयार की गयीं और उन सबको प्राण-दण्ड की आज्ञा दी गयी। सिसिरो भी इन्हीं में था, यद्यपि वह सीज़र की हत्या के षड्यन्त्र में सम्मिलित न था। जब वह पूर्व की ओर पालकी में बैठने जा रहा था तो त्रिकूट की सेनाओं ने उसे पकड़ लिया। ज्यों ही उसने पालकी से सिर निकाल कर बाहर देखा, फौरन एक तलवार से उसका सर धड़ से अलग कर दिया गया। इस समय रोम के इस सर्व-श्रेष्ठ वक्ता की अवस्था ६४ वर्ष की थी, और वह अपना सब कार्य, जिसके कारण आज उसका महत्त्व और आदर है, समाप्त कर चुका था। इसी भाँति और भी लोग मारे गये।

एन्टनी और आक्टेवियस मेसेडोनिया में आये, जहाँ ब्रूटस और केसियस ने एक लाख से ऊपर सेना जमा कर रखी थी। एन्टनी की सेना ने ४२ ई० पूर्व में फिलिप्पी स्थान पर केसियस की सेना को हरा दिया, जिसमें केसियस मारा गया। परन्तु ब्रूटस की सेना ने आक्टेवियस की सेना को हरा कर भगा दिया। दूसरी बार फिर युद्ध हुआ जिसमें ब्रूटस की सेना हार

गयी और निराश होकर उसने अपने एक दास के हाथों अपनी हत्या करा ली। इस प्रकार प्रजातंत्र के इन अन्तिम पक्षपातियों के रक्तपात और अन्त के साथ, प्रजातंत्र का भी पूर्ण अन्त हो गया।

ये तीनों विजयी स्वयं न जानते हुए भी राज-प्रथा के लिये ही युद्ध कर रहे थे परन्तु उस प्रथा में तीन मनुष्यों के लिये गुंजाइश कहाँ थी? अतः इनमें भी फूट पड़ना अनिवार्य था। अब तक इन्हें प्रजातंत्र-दल का भय एकमत किये हुए था। परन्तु अब वह भय दूर हो चुका था। अतः शीघ्र ही इनमें भी कलह आरम्भ हुआ।

फिलिप्पी के विजयियों ने लिपिडस पर यह दोष लगाया कि वह पोम्पी के सम्बन्धियों से गुप्त सन्धियाँ करता रहा है। अतः उसे केवल अफ्रीका देकर अलग कर दिया गया। शेष दो—एन्टनी और आक्टेवियस—में यह निश्चय हुआ कि एन्टनी पूर्व में जाय और आधे पूर्वी साम्राज्य पर शासन करे और आक्टेवियस रोम में रह कर पश्चिमी भाग का मालिक बने। इस भाँति यह विश्वास किया जाता था कि इन तीनों में से अन्त में एन्टनी ही राजा बनेगा, क्योंकि वह अपने समय का सबसे बड़ा जनरल था। उसीकी युक्तियों और निश्चयात्मक बुद्धि के कारण प्रजातन्त्र दल वालों का स्वप्न भंग हो गया था। उसीके कारण फिलिप्पी में विजय हुई और अब भी उसे ही बहुत धनवान भाग मिला था। उसने एशिया के उन सब प्रान्तों से, जो रोम के अधीन हो चुके थे, पिछले नौ वर्ष का कर वसूल किया। अब केवल पार्थीय लोगों पर विजय पाना शेष था, जो अब तक नहीं

हारे थे। यदि उन पर भी वह विजय प्राप्त कर लेता तो फौरन रोम आकर आक्टेवियस को हटा कर राजा हो सकता था। परन्तु शीघ्र ही उसने दूसरा पथ ग्रहण किया। वह कई एशियाई प्रान्तों पर विजय पाता हुआ सिकन्दरिया पहुँचा। वहाँ पर मिश्र की सुन्दर रानी क्लियोपत्रा उससे सन्धि करने आयी। बस अब एन्टनी की केवल यही इच्छा हुई कि यह रानी सदा उसके पास बनी रहे। रानी को प्रसन्न करने के लिये एन्टनी ने रोमन वस्त्रादि उतार कर मिश्र के ढंग के वस्त्र पहनना आरम्भ कर दिया। उसे बहुत सी दावतें दीं और रानी के शत्रु-सम्बन्धियों को मारने के भी उपाय किये।

इधर दूसरा साथी आक्टेवियस अपने कार्य में तन-मन से लग गया। इस समय उसकी अवस्था केवल २१ वर्ष की थी। वह बड़ा जनरल नहीं था, परन्तु उसे दो योग्य मनुष्य—एग्रिया और मेसीनास—मिल गये जिन्होंने उसे अन्त में विजयी बनने में बहुत सहायता दी। ४१ ई० पू० में एन्टनी के भाई और उसकी स्त्री ने रोम में विद्रोह किया, परन्तु जनरल एग्रिया ने उन्हें हरा कर शांत कर दिया। कुछ दिन बाद एन्टनी भी ब्रिंडिसी में आया पर उसे भी हार कर सन्धि करनी पड़ी। इसके अनुसार एन्टनी और आक्टेवियस दोनों अपने २ भागों के स्वतन्त्र राजा मान लिये गये और इस सन्धि को दृढ़ रखने के लिये आक्टेवियस की बहन ने अपनी ओर से एन्टनी से विवाह भी कर लिया; यद्यपि वह मिश्र की रानी के प्रेम में फँसा था।

एग्रिया ने गॉलों को हरा कर फिर एक डाकुओं के दल को— जिसका मुखिया पोम्पी का पुत्र था और जिसने आक्टेवियस को

हरा दिया था—हराया और रोम में फिर अनाज सस्ता किया। लिपिडस ने रोम के कुछ विरोधियों को साथ लेकर रोम पर आक्रमण करने का विचार किया परन्तु आक्टेवियस स्वयं उसकी सेना के आगे पहुँचा और बोला 'तुम लिपिडस का साथ छोड़ दो, रोम पर आक्रमण कर गृह-युद्ध फिर आरम्भ न करो।' सिपाहियों ने उसकी बात मान ली। इसलिये हार के कारण आक्टेवियस की जो अपकीर्ति हो रही थी, वह दूर हो गयी और लिपिडस ने भी उसके चरणों पर गिर कर क्षमा माँगी। लिपिडस अब बिलकुल अलग हो गया। (३५ ई० पू०)

इसी समय एन्टनी और आक्टेवियस में फिर झगड़ा हो गया। रोम के लोग, एन्टनी के मिश्री चाल ढाल स्वीकार करने और वहाँ की रानी से सम्बन्ध जोड़ने के कारण अप्रसन्न थे ही। अब एन्टनी ने क्लियोपत्रा के पहले पुत्र को सीजर का उत्तराधिकारी बनाया और क्लियोपत्रा से उत्पन्न हुए अपने पुत्र को मीडिया और पार्थिया का राजा बनाने के लिये रोम की सीनेट से प्रार्थना की। इससे रोम के लोग एन्टनी से बहुत अप्रसन्न हुए।

३१ ई० पू० में दोनों का झगड़ा बहुत बढ़ गया। दोनों अपनी २ बड़ी सेनायें सजा कर यूनान पहुँचे। पश्चिम और पूर्व का बड़े जोर शोर से फिर सामना हुआ। शीघ्र ही एन्टनी के बहुत से आदमी उसका पक्ष छोड़ कर आक्टेवियस से मिलने लगे। यूनान के पश्चिमी किनारे पर एक्टियम स्थान पर भारी युद्ध हुआ। एन्टनी की सेना हार गयी और रानी क्लियोपत्रा एक जहाज में भाग निकली। एन्टनी भी उसीका साथ देने के लिये भाग खड़ा हुआ। मार्ग में ही इन दोनों प्रेमी और प्रेमिका का अन्त

हो गया। क्लियोपत्रा मिश्र की अन्तिम रानी थी। इसके बाद मिश्र रोम का एक प्रान्त बन गया।

एक्टियम के युद्ध से एक महत्वपूर्ण निर्णय हो गया। एक ही मनुष्य सब रोमन साम्राज्य का पूर्ण स्वतंत्र अधिकारी हो गया। यहीं से आक्टेवियस के राज्य का आरम्भ हो गया, यद्यपि देखने के लिये फिर भी प्रजातन्त्र का ही स्वरूप रखा गया।

रोम के लोग इन लम्बे गृहयुद्धों से ऊब गये थे। सीज़र के समय की सी दशा फिर उपस्थित थी। वे केवल शान्ति, व्यवस्था और अपनी रक्षा के लिये व्याकुल हो रहे थे। राजनैतिक जीवन प्रायः नष्ट हो चुका था। उन्हें चिन्ता न थी कि कौन राजा होता है अथवा शासन-व्यवस्था कैसी होगी। वे केवल शान्ति चाहते थे। आक्टेवियस ने वहाँ शान्ति स्थापित की और रोम साम्राज्य की ८ करोड़ से ऊपर प्रजा ने उसे अपना मालिक मान लिया।

अब विजयी आक्टेवियस सुधारों की ओर लगा। २७ ई० पू० में उसने अपने नाम के आगे 'आगस्टस' की पदवी लगाई जिसका अर्थ 'महान' है। इस समय से वह केवल आगस्टस के नाम से ही प्रसिद्ध हो गया। उसने बहुत सी सड़कें और गलियाँ दुरुस्त कराईं और कई मन्दिर बनवाये, जिनमें बहुत से अबतक वर्तमान हैं।

आगस्टस बड़ा बुद्धिमान था। वह राज्य-व्यवस्था में परिवर्तन करना चाहता था; परन्तु एकदम नहीं क्योंकि इससे जनता में असन्तोष फैल जाने का भय था। उसने स्वयं राजा का पद धारण नहीं किया बल्कि 'एम्परेटर' का। इसका अर्थ

है लोगों की ओर से बनाया हुआ सेनापति। इस भाँति सेना का अधिकार पाकर वह सेन्सर बन गया। इससे उसे सीनेट के सभासद नियत करने का अधिकार मिला, और फिर वह प्रिन्सप अर्थात् सीनेट का मुख्य पुरुष भी हो गया। अन्त में ट्रिब्यून अर्थात् जन-साधारण का मुखिया बन गया। धार्मिक मामलों में भी वह प्रधान हो गया। इस भाँति सब शक्ति वास्तव में उसने अपने हाथ में कर ली, परन्तु कहता यही रहा कि मुझमें जो शक्ति है वह सब जनता की ही दी हुई है। इसी कारण वह लोकप्रिय बना रहा।

आगस्टस ने सीनेट के साथ आदर का व्यवहार किया और उसे सीजर के समय से अधिक शक्ति दी। उसमें रोम में उत्पन्न हुए धनी मनुष्य ही सभासद हो सकते थे। साम्राज्य के आधे प्रान्त, जिनमें सेना की आवश्यकता नहीं थी, प्रबन्धादि के लिये सीनेट के अधीन कर दिये गये। यद्यपि देखने को यह द्वैत-शासन था, परन्तु असली शक्ति सब ऑगस्टस के ही हाथ में थी। उसीकी सलाह से सब काम होता था। फिर भी सीनेट की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी।

सार्वजनिक संस्थाओं को बहुत हानि पहुँची। कमिटिया को कानून बनाने और कोन्सलों के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार अब न रहा। अब जनता का काम केवल कुछ अधिकारियों को चुनना था, परन्तु सरकार द्वारा नियुक्त किये हुए अफसर उन्हें दबा देते थे। प्रान्तों के प्रबन्ध के लिये उसने गवर्नरों की तनख्वाहें नियत कर दीं और अधिक लेने की सख्त मनाई कर दी। इस प्रबन्ध से प्रान्तीय लोग बहुत प्रसन्न रहे।

इस भाँति पचास वर्ष के लगभग राज्य करके यह महान सम्राट् ईस्वी सन् १४ की १९ वीं अगस्त (जो मास उसी के नाम पर प्रसिद्ध है) के लगभग ७५ वर्ष की आयु में मरा। मृत्यु के कुछ दिन पहले उसने अपने जीवन की मुख्य घटनाओं को लैटिन और यूनानी भाषाओं में पत्थरों पर लिखवा कर इधर उधर रखवा दिया था, जिनमें से बहुत से अब तक मिलते हैं।

आगस्टस के समय में रोम का साम्राज्य बहुत विस्तृत हो गया था। उसने राइन और डान्यूब को अपनी उत्तरी सीमा नियत किया था। फिर वह जर्मनी में भी पहुँच गया और उसे भी अधीन कर लिया। इस भाँति रोम साम्राज्य की सीमा यह थी—उत्तर में इंगलिश चैनल, राइन और डान्यूब नदियाँ, काला सागर और काकेशस पर्वत, और दक्षिण में अफ्रिका का मरुस्थल। पूर्व में आर्मीनिया और अरब के देश और पश्चिम में अटलान्टिक महासागर।

आगस्टस के नए शासन-प्रबन्ध से जनता को सन्तुष्ट रखने में तत्कालीन साहित्यिकों ने बहुत सहायता दी, क्योंकि वह मेसिनास के द्वारा साहित्य का संरक्षक बन गया था। उस समय का साहित्य आगस्टस और उसके सुधारों की प्रशंसा से भरा है। इनमें दो कवि बहुत प्रसिद्ध हैं—होरेस और वर्जिल। होरेस ने आगस्टस के पूर्वजों की सेवा, आगस्टस तथा उसके मंत्रियों के प्रबन्ध की प्रशंसा के खूब गीत गाये हैं। वर्जिल ने आगस्टस के प्रत्येक कार्य की और भी अधिक प्रशंसा की। उसने सादा ग्राम्य जीवन की सुन्दरता के भी गान गाये और अपने सब से बड़े काव्य ग्रन्थ 'एनीड' में आगस्टस के कुटुम्ब का रोम के संस्थापक से सम्बन्ध

बसाया है और आगस्टस को रोम का दूसरा संस्थापक कहा है। आगस्टस ने अपना राज्य दृढ़ रखने के लिये ही इन साहित्य-सेवियों पर कृपा की और मन्दिरों को फिर बनवा कर देवपूजा पुनः स्थापित की। इस प्रकार उसने अपनी धार्मिक प्रतिष्ठा बढ़ाई। वह धार्मिक उत्सव, कृषि की उन्नति तथा सरल जीवन का बड़ा पक्षपाती और प्रेमी था।

इस भाँति आगस्टस ने अपना साम्राज्य स्थापित और दृढ़ किया। इस साम्राज्य का संसार के इतिहास पर बहुत प्रभाव पड़ा। इससे शान्ति और सभ्यता का प्रचार हुआ। पश्चिम में लैटिन भाषा राष्ट्रीय भाषा समझी जाने लगी और इस भाँति नवीन फ्रेंच, स्पेनिश और इटालियन भाषाओं की उत्पत्ति हुई। पश्चिमी यूरोप ने रोम के कानूनों से उतना ही लाभ उठाया है जितना यूनान के विज्ञान, साहित्य और कला आदि से। और ये कानून साम्राज्य-स्थापना के समय में ही पूर्ण संगठित हुए। साम्राज्य स्थापना से यद्यपि सीनेट और कमिटिया की स्वतंत्रता जाती रही परन्तु इससे समस्त रोम साम्राज्य की स्वतंत्रता को लाभ पहुँचा। आगस्टस और उसके बाद भी रोम साम्राज्य की नीति स्वशासित नगरों की वृद्धि करने की रही है, और शीघ्र ही यूफ्रेटीज से स्पेन तक और बाल्टिक सागर से सहारा के मरुस्थल तक समस्त देश स्वतंत्र म्युनिसिपल शासन से जीवित हो गया। एक नगर रोम ने जिस स्वतंत्रता को खोया, उसे सहस्रों नगरों ने पाया। आगे चलकर हम देखेंगे कि साम्राज्य के कारण ही यूरोप में ईसाई मत की वृद्धि हुई। रोम साम्राज्य में भिन्न २ जातियों, रियासतों, भाषाओं और धर्मों का संगम था, क्योंकि प्राचीन काल के सब धर्म राष्ट्रीय

होते थे जो केवल एक रियासत तक ही परिमित रहते थे। परन्तु अब इस अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्य के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय धर्म की भी आवश्यकता हुई। चारों ओर से सड़कें आदि होने के कारण किसी धर्म का प्रचार भी शीघ्रतापूर्वक हो सकता था। सब जगह एकसा सिक्का प्रचलित था। सब मनुष्य लैटिन तथा ग्रीक भाषायें समझ सकते थे, और पुराने धर्म में रोमवालों का विश्वास भी घटता जाता था। इस भाँति जब ईसाई धर्म का प्रचार हुआ तो कुछ काल तक तो ईसाई धर्म और रोम साम्राज्य में कट्टर शत्रुता रही। परन्तु फिर एक सम्राट् के उस धर्म को स्वीकार कर लेने पर बड़ी शीघ्रता से साम्राज्य में ईसाई धर्म का प्रचार हो गया। इससे उस धर्म की और सम्राट् की शक्ति और भी बढ़ गयी। इस भाँति इस साम्राज्य-स्थापना ने अन्त में ईसाई धर्म को भी बहुत लाभ पहुँचाया।

पच्चीसवाँ अध्याय

आरम्भिक सम्राट् और एन्टोनाइन्स का समय

साम्राज्य-स्थापना से रोम का इतिहास बहुत सरल हो गया। अतः हम उसे शीघ्रतापूर्वक समाप्त कर सकते हैं। इस समय प्रान्तों की बहुत उन्नति हुई। उनमें शिक्षा, सभ्यता और समृद्धि की वृद्धि हुई, परन्तु साम्राज्य का बल कम हो रहा था। आगस्टस

के उत्तराधिकारियों में उसके समान योग्यता न थी। कवियों ने भी प्रशंसा के स्थान पर उनकी निन्दाएँ की हैं।

अब तक रोम में उत्तराधिकार का कोई नियम था; परन्तु आगस्टस का इतना प्रभाव था कि वह अपना पद और राज्य चाहे किसी को दे सकता था। आगस्टस के तीन ब्याह हुए थे। उसकी तीसरी स्त्री के पहले पति से एक पुत्र टाइबेरियस था। अब उसी को आगस्टस ने उत्तराधिकारी नियत किया। वह आगस्टस के समान प्रसन्नचित्त और दयालु नहीं था, बल्कि उदास और क्रूर था। फिर भी वह शक्तिमान, दृढ़ और शान्ति-प्रिय था। उसने जर्मन जातियों को एक बार फिर हराया परन्तु वहाँ का प्रबन्ध कठिन समझ कर उसे अपने राज्य में न मिलाया। उसके चले जाने के बाद जर्मन जातियाँ आपस में लड़ने लगीं। अतः रोम उस ओर की चिन्ता से बचा रहा।

टाइबेरियस ३७ ईस्वी में मरा। उसके दो सम्बन्धी केलीगुला और क्लाडियस उसके स्थान पर बैठे, जिनमें पहिला निरंकुश और क्रूर तथा दूसरा विद्वान्, चतुर और परिश्रमी परन्तु दुर्बल, विकृत और व्यसनी था। इनके समय में साम्राज्य की प्रायः सब जगह जीत हुई। क्लाडियस ने ४१ ई० से ५४ ई० तक राज्य किया। ४४ ई० में यह एक सेना लेकर फिर ब्रिटेन पहुँचा और इसने उसका दक्षिण-पूर्वी भाग अपने साम्राज्य में मिला लिया।

उसके बाद उसका सौतेला पुत्र नीरो सम्राट् हुआ अर्थात् क्लाडियस ने अपनी विधवा भतीजी एग्रिपिना से विवाह कर लिया था और एग्रिपिना के पूर्व पति से यह पुत्र नीरो था। नीरो को सब ने क्रूर बताया है। उसने पहले पाँच वर्ष बहुत अच्छा राज्य

किया और कर कम कर दिये। इससे लोगों को उससे बड़ी आशाएँ हुईं, परन्तु उसपर उसके शिक्षक वेदान्ती सेनेका का और एक सैनिक बूरस का प्रभाव था। कहते हैं कि उसके शिक्षक ने उसे बहुत से क्रूर काम करने को उत्तेजित किया परन्तु जब वह बूरस को विष देकर और सेनेका को अलग करके स्वतंत्र हुआ तो भी पूर्ण अनुत्तरदायी, व्यसनी और क्रूर होने का परिचय उसने दिया। उसने गायक, नर्तक और सारथी के गुण प्राप्त करके रोम की परम्परा को तोड़कर सब को आश्चर्य में डाला। ६४ ई० में जब रोम में छः दिन तक भयंकर आग लगी रही, तो उसने पास के एक पहाड़ पर जाकर बड़ी प्रसन्नता से यह दृश्य देखा और अपने तम्बूरे में मस्त रहा। ऐसे आचरणों से उसके प्रति असन्तोष बढ़ चला। ६५ ई० में एक विद्रोह रचा गया जिसमें सेनेका भी सम्मिलित था। परन्तु उसका पता लग गया और सेनेका ने लज्जा से आत्मघात कर लिया। शीघ्र ही उत्तर की सेना और राज्य के अफसरों के विद्रोह करने का भी समाचार मिला। जर्मनी और स्पेन के प्रान्तीय लाटों ने सन्धि कर ली और स्पेन के लाट गैलन ने अपने को सम्राट घोषित कर दिया। इन समाचारों को सुनकर नीरो ने भी ६८ ई० में आत्महत्या कर ली। इस समय वह केवल तीस वर्ष का था।

इस भाँति इस समय बड़ी अशान्ति और अव्यवस्था फैली रही। कारण यह था कि सम्राटों की शक्ति कुछ निश्चित न थी। यूरोप के किसी देश में रोम के सम्राटों के समान स्वतंत्र और सर्वोच्च सम्राट् नहीं हुए हैं। यूरोप के बड़े से बड़े सम्राट् के भी बराबरी के शत्रु थे, परन्तु रोम अकेला ही शक्तिमान था।

अव्यवस्था का दूसरा कारण यह था कि सम्राट् अपनी सेना को रोम में न रखकर भिन्न २ प्रान्तों में रखते थे। रोम में अशान्ति रोकने और सम्राट् की रक्षा करने के लिये रोम के द्वार पर इटली में ही भर्ती किया हुआ एक संरक्षक-दल रहता था। इन रक्षकों का वेतन साधारण सैनिकों से अधिक होता था। कुछ दिन तक तो ये राज-भक्त रहे परन्तु पीछे इन्होंने अपनी बड़ी शक्ति और किसी रुकावट के न होने का पता लगा कर स्वयं ही अशान्ति आरम्भ कर दी।

सम्राट् और सीनेट में भी अनबन रहती थी क्योंकि सीनेट सदा अपनी खोयी हुई शक्ति प्राप्त करने की ताक में रहती थी। सम्राटों ने अपनी अंग-रक्षा और सीनेटरों के षड्यन्त्र रोकने के लिये कड़े कानून बनाये। उनके किसी आन्दोलन का पता देनेवालों को भारी इनाम दिया जाता था। परन्तु ऐसे इनाम पानेवालों से भी रोम के लोग बड़ी घृणा करते थे।

ऐसी अव्यवस्था के समय में ही नीरो का मृत्यु हुई जिससे अशान्ति और भी बढ़ गयी। स्पेन और गॉल में स्थित सेनाओं ने विद्रोह आरम्भ कर दिया। इसी भाँति रोम के संरक्षक-दल अथवा गारद ने भी विद्रोह करके रोम पर अधिकार कर लिया और उन्होंने इच्छानुसार दो सम्राटों को गद्दी से उतारा और बैठाया।

प्रान्तीय सेनाएँ गारद की अधिक तनख्वाह के कारण उससे पहले ही से जलती थीं। रोम पर उनका अधिकार देख कर वे और भी अप्रसन्न हुईं। चारो ओर से सेनाएँ आकर रोम में जमा हुईं और बहुत दिनों तक उनमें झगड़ा चलता रहा। पहले जर्मनी की सेना प्रधान रही परन्तु फिर सीरिया की सेना ने आकर उसे

हटा दिया और अपने सेनापति वेस्पेशियन को सम्राट् घोषित कर दिया। इस भाँति रोम में जूलियस सीज़र के घराने का अन्त हो गया और फ्लैवियों के घराने का राज्य आरम्भ हुआ। वेस्पेशियन ने दृढ़ सैनिक शक्ति और अपने उच्च आचरण के बल से रोम में शान्ति स्थापित की। उसके समय में चारों ओर अशान्ति थी, कोष खाली हो गया था। साम्राज्य का अस्तित्व भी प्रत्येक क्षण सन्देह में था। परन्तु उसने दृढ़ता और मितव्ययिता से सब काम ठीक कर लिया। सेना को दबा कर शान्त रखा, सीनेट को भी शान्त किया और कोष की कमी पूरी की।

वेस्पेशियन सीरिया में यहूदियों से लड़ रहा था और रोम में अशान्ति देख युद्ध को अधूरा ही छोड़ कर चला आया था। अब रोम में शान्ति स्थापित कर वह फिर उनसे युद्ध करने गया। यहूदी बड़ी वीरता से लड़े परन्तु उनके पास साधन कम थे और उनमें आपस में फूट भी थी। अतः अन्त में वे हार गये। विजेताओं ने यहूदियों के धार्मिक केन्द्र पवित्र जेरूसलम पर अधिकार करके उसे नष्ट कर दिया और वहाँ के निवासियों को क़त्ल किया।

७८ ई० में वेस्पेशियन का पुत्र टाइटस रोम में राजा हुआ और तीन वर्ष तक रहा। यह दयालु और उदार था। अतः लोग इसे प्यार करते थे। इसने कई सुन्दर इमारतें बनवाईं। इसी के समय में इटली का वीसूवियस पहाड़ फूटा। तीन दिन तक उससे अति उष्ण पदार्थ 'लावा' और राख आदि निकलती रही, जिससे पोम्पी नगर सर्वथा नष्ट हो गया। कुछ दिन हुए पोम्पी नगर खोद कर फिर निकाला गया है और उसमें अनेक आश्चर्य-जनक

वस्तुयें निकली हैं। कुछ ऐसे लेख भी निकले हैं (जले हुए पत्रों पर) जिनसे पता चलता है कि उस समय वहाँ म्युनिसिपल चुनाव हो रहा था। टाइटस के बाद उसका भाई डोमीशियन सम्राट् हुआ। यह क्रूर, उदासचित्त और दुर्बल था। अतः शीघ्र ही पहले की सी अशान्ति सर्वत्र फिर फैल गयी और सम्राट् स्वयं मारा गया। (९६ ई०) इसकी मृत्यु के बाद रोम में फिर अच्छे युग का उदय हुआ क्योंकि आगे लगभग एक शताब्दी तक दृढ़, उदार और स्थायी साम्राज्य रहा। इस नये युग में गृह-युद्ध, क़त्ल, महलों के दुराचार तथा षड्यन्त्र आदि कुछ नहीं हुए। सीनेट से भी कोई झगड़ा नहीं हुआ और रोम साम्राज्य बड़ी शान्ति और समृद्धि में रहा। कुछ लोग इस नये युग को 'एन्टो-नाइनों का समय' कहते हैं क्योंकि अन्तिम दो सम्राटों का नाम एन्टोनाइन था। इस समय प्रान्तों में भी शान्ति रही। प्रान्त यह भूल गये कि वे इटली के अधीन हैं; बल्कि अपने को उसके समान ही समझने लगे। इसका कारण यह था कि इस समय में सम्राट् प्रायः प्रान्तीय लोग ही बनाये गये। म्युनिसिपैलटियों की भी खूब उन्नति हुई और समस्त देश साम्राज्य के अधीन म्युनिसि-पैलटियों का एक गुट बन गया।

साहित्य और कला की भी खूब उन्नति हुई। लैटिन साहित्य की उन्नति का यह दूसरा काल था जिसमें जूवनाल और टेसीटस प्रसिद्ध हैं। शिल्प-कर्म भी इस समय सब से अच्छा हुआ। रोम और बाहर के अजायबघरों में जिन चीज़ों की सबसे अधिक प्रशंसा की जाती है, वे सब इसी समय की हैं और प्रायः सब ही सम्राट् हैड्रियन के महल की हैं। वेदान्त की भी उन्नति हुई; विशेष-

कर यूनान के 'स्टोइक' नामक वेदान्त का प्रचार हुआ। इसी समय ईसाई मत और धर्मों से लड़ कर धीरे २ बढ़ रहा था। परन्तु यह काल सदा एकसा न चला। राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक ऐसी शक्तियाँ उत्पन्न हो रही थीं जिन्होंने अन्त में उसे निर्बल कर ही दिया।

अब उत्तराधिकार के प्रश्न का इस प्रकार निर्णय किया गया कि सम्राट् किसी योग्य और शक्तिमान् सार्वजनिक कार्यकर्त्ता को अपने पुत्र के स्थान पर नियत करे और यदि उसका आचरण ठीक हो तो वही सम्राट् का उत्तराधिकारी बने। यह व्यवस्था बड़ी शान्तिपूर्वक और अच्छे ढंग से चली। परन्तु आश्चर्य यह है कि आगे के पाँच सम्राटों में से किसी के भी औरस पुत्र न था। इसी कारण यह नयी व्यवस्था अच्छी तरह चल सकी।

इनमें पहला सम्राट् नर्वा हुआ जिसने लगभग डेढ़ वर्ष राज्य किया। (९६–९८ ई०) यह दयावान और शान्तिप्रिय था और इसने ग़रीब लोगों को कुछ भूमि बाँट दी। इसने ट्रैजन को अपना उत्तराधिकारी बनाया जो रोम के सबसे अच्छे और बड़े सम्राटों में गिना जाता है। ट्रैजन बड़ा धर्मात्मा और शासन-कार्य में निपुण था। उसने बहुत से कर कम कर दिये। सीनेट को भी उसने शान्ति-पूर्वक रखा और उसका सम्मान किया। जन-संख्या का ह्रास रोकने के लिये उसने अनाथों की सहायता की और मन्दिर, स्तम्भ, आदि कई इमारतें बनवा कर रोम को शिल्प से बहुत सजाया। इसके लिये भी उसने और सम्राटों के समान प्रजा पर कर लगा कर रुपया वसूल नहीं किया। इससे प्रजा उससे बहुत प्रसन्न रही।

ट्रैजन के समय में इटली के बाहर कुछ लड़ाइयाँ हुईं जिनमें रोम की सेनाओं ने फिर अपनी वीरता और सम्राट् की योग्यता साबित की। १०१ ई० में वह सेना लेकर डेन्यूब के पार डेसिया (वर्तमान रूमानिया) में पहुँचा। यहाँ के लोग बहुत दिनों से साम्राज्य की शान्ति भंग कर रहे थे। उस देश में सोने की खानें होने के कारण रोम के लोग वहाँ बसना भी चाहते थे। ट्रैजन ने डान्यूब पर एक पत्थर का पुल, जैसा अब तक किसी ने नहीं किया था, बनवाया। खूब घमसान युद्ध हुआ। अन्त में वहाँ का राजा हारा और डेसिया भी साम्राज्य का एक प्रान्त बना लिया गया।

फिर उसने आगे बढ़ कर प्रबल पार्थिय जातियों को—जो अब तक रोम की सेनाओं को कई बार हरा चुकी थीं—हरा कर मेसोपोटामिया और आर्मिनिया के भी साम्राज्य के प्रान्त होने की घोषणा कर दी और बेबीलोन भी ले लिया। यहीं पर दो वर्ष बाद ११७ ई० में वह मर गया।

उसके बाद हैड्रियन गद्दी पर बैठा जो इस समय का सब से प्रसिद्ध और प्रधान सम्राट् समझा जाता है। वह स्पेन से आया था और बड़ा उदार था। उसने रोम का विस्तार बढ़ाने के स्थान पर शासन में दृढ़ता और सुधार करना अधिक उचित समझा। इसके लिये उसने कई बार प्रान्तों में घूमकर प्रजा की दशा देखी और फिर उन सब करों को माफ कर दिया जिन्हें देने में गरीब लोग असमर्थ थे। अच्छे न्याय के लिये उसने इटली को चार भागों में बाँट दिया और प्रत्येक भाग में एक न्यायाधीश नियुक्त कर दिया। इसने ब्रिटेन में अपने राज्य को शत्रुओं से बचाने के

लिये एक बड़ी दीवाल बनवाना आरम्भ किया जिसे आगे के सम्राटों ने पूरा किया। वह साम्राज्य को अपना नहीं बल्कि रोम की प्रजा का समझता था और अपने कर्त्तव्य पर बहुत ध्यान देता था। इस समय यहूदी विजय की आशा से फिर बढ़ रहे थे। सम्राट् ने साइप्रस और फिलिस्तीन में एक यहूदी विद्रोह दबाया और उसकी सेनाओं ने क्रोधित होकर बहुत से यहूदियों को कत्ल कर दिया। हेड्रियन ने प्रबन्ध में खटका देखकर मेसोपोटामिया और आर्मीनिया प्रान्तों को फिर छोड़ दिया; परन्तु डेसिया को रखा। वह धर्म और वेदान्त आदि के गूढ़ प्रश्नों पर भी बहुत ध्यान देता था। अच्छे प्रबन्ध के लिये उसने एक 'सिविल सर्विस' की स्थापना की जिसमें साम्राज्य के उच्च जाति के लोग भर्ती होने लगे और यह संस्था आदर की दृष्टि से देखी गयी। सौ वर्ष से अधिक यह व्यवस्था चलती रही और उन्नत हुई। स्वामी और दासों का सम्बन्ध भी कानून से नियत कर दिया गया और नगरों की वृद्धि हुई।

हेड्रियन की मृत्यु पर १३८ ई० में उसका चुना हुआ पुत्र एन्टोनाइनस पायस सम्राट् हुआ और २३ वर्ष तक रहा। यह बड़ा सज्जन और दयालु था और लोग इसे पिता के समान समझते थे। इसके लम्बे समय में रोमनों या विदेशियों के रक्त का एक बूँद भी न गिरा; परन्तु इस शान्ति से रोम की सेना निर्बल हो गयी। उसने प्रान्तों को भी इटली के समान अधिकार दिये, कानून सुधारे और शिक्षा में उन्नति की, दार्शनिक तथा साहित्यिक विद्वानों का आदर करके उन्हें उत्साहित किया और दरिद्र कन्याओं के लिये एक पाठशाला खोल दी।

इसके चुने हुए पुत्र मार्कस आरेलियस ने १९ वर्ष राज्य किया। इसके सम्बन्ध में रोम को समृद्धि और शान्ति घट चली। वह विद्या-प्रेमी था परन्तु उसे जर्मन जातियों से युद्ध के कारण समय न मिला। वह अपने धार्मिक और वेदान्ती विचारों के लिये प्रख्यात है, जो उसके बाद लिखे गये। ये सिद्धान्त स्टोइक मत के हैं। इसमें शाही नीति का विरोध और सीजर के हत्यारों के कार्य की प्रशंसा की गयी है। इसके समय इसी वेदान्त की बहुत उन्नति हुई और उसने ईसाई धर्म का बहिष्कार किया। १८० में वह भयंकर प्लेग से मर गया। उसके साथ ही अच्छे सम्राटों की समाप्ति हो गयी। रोम के अच्छे दिन फिर न लौटे।

यहाँ पर हमें एन्टोनाइनों के समय की सामाजिक अवस्था का भी कुछ हाल देखना चाहिये। ग्रान्ट के मत से रोम साम्राज्य की दूसरी शताब्दी यूरोपीय सभ्यता की बीसवीं शताब्दी से बहुत कुछ मिलती है।

सरदारों की दशा बदल गयी थी। वे धनवान थे, शासन प्रबन्ध में भाग लेते थे, परन्तु उनका पूर्व स्वातंत्र्य नष्ट हो चुका था। वे सेनापति भी होते थे, कभी २ प्रान्तों के गवर्नर भी, परन्तु उन्हें सम्राट् के नौकर की हैसियत से ही रहना पड़ता था। कुछ सरदार इस प्रकार नौकरी करना अपनी शान के विरुद्ध समझ कर घर पर ही आनन्दमय जीवन बिताते थे। जूवनाल आदि कवियों ने उनकी विलासिता तथा क्रूरता का खूब वर्णन किया है। दूसरी श्रेणी धनिकों की थी। ये नाइट कहलाते थे। रुपया उधार देने और व्यापार आदि करने के लिये इन्होंने अपने संघ बना लिये थे। पहले ये बहुत ब्याज लेते थे, परन्तु साम्राज्य स्थापना

के समय से ब्याज की दर भी नियत कर दी गयी थी। इनके पास भूमि न थी। और साधारण प्रजा खेती तथा उद्योग धन्धों में लगी रहती थी।

इस समय रोम शिल्प, मूर्ति-निर्माण, साहित्य तथा धर्म का केन्द्र था। रोम के लोग यूनानियों से भी अच्छी मूर्तियाँ बनाते थे, जिनका संग्रह हैड्रियन ने अपने महल में किया। परन्तु फिर भी रोम पेरिक्लीज के समय के अथेंस की बराबरी न कर सका। यहाँ नाटक उच्च दर्जे के नहीं थे और जो नाच-तमाशे होते थे उनका लोगों की बुद्धि पर कोई प्रभाव न पड़ता था। अखाड़े के खेल, कुश्ती आदि ही इनके विनोद के सब से प्रधान साधन थे। इन खेलों के लिये एक विशेष अखाड़ा था जिसमें ५०,००० मनुष्य बैठ सकते थे। छोटे २ अखाड़े जगह २ थे। इसी बड़े अखाड़े को खोलते समय सम्राट् टाइटस ने सहस्रों ज़ीवों की बलि दी थी। मल्लयुद्धों में ही अनेक मनुष्य मरे और स्त्री पुरुष इन्हें बड़े चाव से देखते थे। धर्म अथवा दया के नाम पर किसी ने इनका तीव्र विरोध न किया, यद्यपि कुछ विशेष सुधरे हुए लोग उन्हें देखने न जाते थे। सिसिरो, टाइबेरियस आदि ने इन्हें दबाने का कुछ प्रयत्न किया था। मार्कस आरेलियस ने आज्ञा निकाली कि मल्ल लोग भुथरे हथियारों से लड़ा करें, परन्तु इसके कारण वह अप्रिय हो गया। फिर एक साधु ने इन्हीं खेलों को बन्द कराने के लिये अपने प्राण दे दिये। इस बलि तथा ईसाई धर्म के प्रचार से पाँचवीं शताब्दी में ये खेल बन्द हो गये।

रोम में केवल व्याख्यान देने की ही उच्च शिक्षा दी जाती

थी क्योंकि रोम प्रजातन्त्र में और बाद में भी अदालतों और राजनैतिक सभाओं में प्रभावशाली व्याख्यानों द्वारा सफलता बहुत शीघ्र मिलती थी। यह विद्या यहाँ यूनान से आयी और इसमें सिसिरो सब से प्रसिद्ध हुआ। साम्राज्य-स्थापना से इसका महत्त्व कम होने लगा, क्योंकि अब सफलता के लिये शासन में निपुण और सम्राट् का कृपापात्र होना आवश्यक हो गया। फिर भी बहुत लोग इसे सीखते रहे। प्लूटार्क नामी एक यूनानी भी इसी समय में हुआ जो रोम में पढ़ाता था। इसका लिखा हुआ यूनानियों और रोमनों का तुलनात्मक जीवन बहुत प्रसिद्ध है।

अब तक हमने साम्राज्य और कलाओं के केन्द्र रोम का ही वर्णन किया। इटली और अन्य प्रान्तों की दशा इससे भिन्न थी। म्युनिसिपैलटियाँ तो इस समय इटली और स्पेन, गॉल, उत्तर आफ्रिका आदि के प्रायः सभी नगरों में स्थापित हो गयीं थीं। सीज़र के म्युनिसिपल कानून के अनुसार प्रत्येक नगर के बड़े कार्य एक क्यूरिया अथवा काउन्सिल के हाथ में थे। इसके सभासद नगर के सरदार समझे जाते थे। ऐसे स्वतंत्र नगर सब जगह थे।

प्रान्तों की दशा कुछ बिगड़ रही थी। यूनान की संख्या और समृद्धि घटने लगी थी, परन्तु अफ्रिका खूब उपजाऊ और समृद्ध था। इस समय के सम्राटों ने प्रान्तों की ओर विशेष ध्यान दिया जैसा कि इंगलैण्ड और डान्यूब के पास की बनवाई हुई दीवालों से मालूम पड़ता है। ईसाइयों के साथ भी न्याय और सहिष्णुता का व्यवहार होता था। प्रान्तों का प्रबन्ध सम्राट् स्वयं अपनी देख-भाल में रखते थे।

परन्तु कृषि की अवस्था जाने बिना वहाँ की सामाजिक दशा

अधूरी है क्योंकि अधिकांश भाग का निर्वाह इसी से होता था। इस विषय में प्रान्तों की दशा भिन्न २ थी। इटली में दरिद्रता फैल रही थी और जनसंख्या भी घट रही थी। एन्टोनाइन्स को इसके प्रतिकार के लिये कानून बनाने पड़े थे। फिर भी किसानों की दशा बिगड़ती जाती थी। उनकी स्वतंत्रता नष्ट होती जाती थी। क्योंकि उन्हें किसी जमींदार अथवा सरदार से भूमि लेकर जोतनी पड़ती थी और उसे कर देना पड़ता था। इस भाँति धीरे २ वे एक प्रकार से दास बनते जाते थे। यही प्रथा आगे बहुत बढ़ गयी और सर्फ प्रथा के नाम से प्रसिद्ध हुई और इस भाँति फ्यूडलिज्म (Feudelism) की नींव पड़ी।

छब्बीसवाँ अध्याय

साम्राज्य का पतन

मार्कस औरेलियस की मृत्यु के बाद धीरे २ साम्राज्य गिरता गया। गृह-युद्ध और बर्बरों के आक्रमण फिर आरम्भ हो गये, जो आगे बढ़ते गये। साम्राज्य ने न कोई भारी पराजय पायी, न वहाँ क्रान्ति हुई, न प्रान्तों अथवा सिपाहियों में विद्रोह फैला; परन्तु फिर भी साम्राज्य का पतन होता गया। पतन से तात्पर्य यह है कि वहाँ का सामाजिक संगठन बदल गया। सम्राट् रोम का पुराना धर्म छोड़ कर ईसाई हो गये, और साम्राज्य के बहुत से

भाग बर्बर जातियों के हाथ में चले गये। फिर भी यह कहना बहुत कठिन है कि साम्राज्य का अन्त कब हुआ। ४१० में जब गोथराज एलरिक ने रोम पर अधिकार किया तो उसके बाद भी साम्राज्य बना रहा। ४७६ ई० में साम्राज्य इटली से लुप्त हो गया, परन्तु पूर्वी भाग के सम्राट् अपने को फिर भी रोमन सम्राट् कहते रहे, और साम्राज्य का सबसे महत्व पूर्ण कानून-संग्रह भी—उसके बाद हुआ। ८०० ई० में चार्ल्स महान ने फिर एक साम्राज्य स्थापित किया और यह भी शीघ्र ही रोमन साम्राज्य कहलाने लगा। इस भाँति पुनः दो साम्राज्य स्थापित हो गये। पूर्वी साम्राज्य का १४५३ ई० में तुर्कों द्वारा अन्त किया गया और वास्तव में पुराने रोमन साम्राज्य का यहीं पर अन्त हुआ, जैसा कि प्रसिद्ध इतिहासज्ञ गिबन का मत है। क्योंकि चार्ल्स महान का साम्राज्य जिसका नाम १८०७ तक चलता रहा, वास्तव में 'रोमन' साम्राज्य नहीं था।

अब हमें साम्राज्य के पतन के कारणों को भी देखना चाहिये। पहला कारण तो यही है कि सम्राट् पूर्ण निरंकुश हो गये थे। रोमन स्वतंत्रता धीरे २ नष्ट होती जाती थी। एण्टोनाइनों के समय में अनेक नगरों की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप किया गया। इस भाँति नगर धीरे २ साम्राज्य के आश्रित हो गये। प्रबन्ध के विरुद्ध कुछ कहने या सुधार कराने की आज्ञा लोगों को न थी। यदि सम्राट् ही चाहे तो कुछ सुधार कर सकता था। ऐसे निरंकुश राज्य बहुत दिन नहीं चलते।

दूसरे अब सेना में दूसरे प्रांतों से भी लोग भर्ती किये जाने लगे थे। ये इटली के भक्त बन सकते थे, परन्तु इटालीय नहीं

बन सकते थे। बहुत से बर्बरों ने रोम के सैनिक अफसरों से सैनिक शिक्षा पायी और रोमन सिपाहियों के साथ युद्ध किये। जब नौकरी छोड़कर वे अपने २ देशों को लौटे तो देशवासियों को रोम के सैनिक ढंग, अस्त्र-शस्त्र, युद्ध नियम आदि सब बातें बता दीं। इस भाँति वे लोग और भी अधिक युद्ध-निपुण तथा प्रबल हो गये और अंत में रोमन लोग अपने ही अस्त्र-शस्त्रों और अपने ही सैनिक ढंग से हराये गए। रोम ने अपने शत्रुओं को रोम को हराना सिखाया।

फिर भी पतन का मुख्य कारण राजनैतिक अथवा सैनिक नहीं, बल्कि धार्मिक था। एण्टोनाइनों के समय से ही रोम में वेदान्त का प्रचार बढ़ चला था। साथ २ पूर्व के भिन्न २ धर्मों पर भी उनकी श्रद्धा होने लगी थी। मिश्र के बहुत से देवता इटली में पूजे जाने लगे। इनमें प्रधान मित्र अथवा सूर्य थे। ये वही देवता हैं जिन्हें प्राचीन आर्य लोग पूजते थे। पहले इसका प्रचार फारस में हुआ और वहाँ से मिश्र होता हुआ यूरोप में पहुँच गया।

परन्तु ईसाई धर्म का प्रभाव इन सबसे अधिक हो रहा था, क्योंकि रोम सब धर्मों के प्रति सहिष्णु था। किसी बाहरी संस्था को अपने देश के लोगों पर अधिकार जमाते देख कर, उस देश के राजा को बुरा लगता ही है और इसी कारण रोम के सम्राट् ईसाई गिरजे का विरोध करते रहे। उनका विरोध राजनैतिक था, नकि धार्मिक।

ईसाई लोग रोम के पुराने धर्मवालों से घृणा करते थे और सम्राट् का भी आदर न करते थे। इसी कारण सम्राटों को अन्त

में उनके विरुद्ध कानून बनाने पड़े और नीरो, हेड्रियन, मार्कस, आरेलियस आदि के समय में वे कुछ तंग भी किए गए। दोनों दल स्वतंत्र होने के कारण यह झगड़ा बढ़ता गया। अंत में साम्राज्य को समझौता करना पड़ा।

अस्तु, अब हमें इस वंश के शेष सम्राटों का वर्णन भी शीघ्रता-पूर्वक समाप्त कर देना चाहिये। मार्कस के बाद कमोडस सम्राट् हुआ जो उसका पुत्र था। उसने फिर पुत्र के स्थान पर किसी और योग्य मनुष्य को सम्राट् नियत करने की प्रथा चलायी। वह निरंकुश और व्यसनी था और तमाशों को बहुत पसन्द करता था और स्वयं भी पहलवानों की भाँति लड़ने में बहुत प्रसन्न होता था। उसका एक जीवनी-लेखक कहता है कि वह ७८५ बार लड़ा। वह अपने को ईश्वर कहलवाना भी पसन्द करता था। धन की आवश्यकता के कारण सीनेट से उसका झगड़ा हो गया। उसकी क्रूरता तथा उसके मंत्री के अत्याचारों से समस्त प्रजा तथा सेना भी अप्रसन्न थी। अतः वह एक षड्यंत्र द्वारा मार डाला गया। (१९२ ई०)

सीनेट ने एक मनुष्य पर्टीनेक्स को सम्राट् बनाया, परन्तु रोम के संरक्षक-दल (प्रीटोरियन गारद) ने बहुत इनाम पाने की शर्त पर एक दूसरे मनुष्य को गद्दी पर बिठाया। प्रान्तीय सेनाएँ फिर इस दल के हाथ में शक्ति का आना न देख सकीं। ब्रिटेन, सीरिया और पेनानिया (डान्यूब का दक्षिणी भाग) में विद्रोह आरम्भ हो गये। पेनानिया की सेना ने रोम पर अधिकार करके अपने सेनापति सेप्टीमियस सेवेरस को सम्राट् बनाया जो १९३ से २११ तक रहा। इस भाँति फिर सैनिक लोगों के हाथ में शक्ति आ

गयी। सेवेरस ने सैनिक ढंग पर राज्यव्यवस्था स्थापित की। पुराना संरक्षक दल तोड़कर उसने रोम की रक्षा के लिये एक साधारण सेना रख दी, जिसमें इटली के और बाहर के भी लोग थे।

सेवेरस ने सिपाहियों की तनख्वाहें बढ़ा दीं और बारकों के बजाय उन्हें विवाह करके घर रहने की आज्ञा दे दी। इससे थोड़े ही दिनों में वे अपने घरों में रहना अधिक पसन्द करने लगे और आवश्यकता के समय किसी प्रान्त-विशेष में उन्हें रखना कठिन हो गया।

उसके बाद उसका पुत्र केरेकुला सम्राट् हुआ। यह क्रूर और अयोग्य था और उसने सदा सैनिकों को ही प्रसन्न रखने का प्रयत्न किया। इसने सब से बड़ा काम यह किया कि रोमन साम्राज्य के सब निवासियों के दासों को छोड़ कर नागरिकता के अधिकार दे दिये। इस कारण जूलियस सीज़र ने गॉलों को नागरिकता के अधिकार देकर जिस उदार नीति को चलाया था, केरेकुला ने उसे पूरा किया; परन्तु सैनिकों के वेतन के लिये प्रजा पर कर-भार कुछ अधिक बढ़ गया।

अब राज्य सैनिकों के हाथ में पहुँच गया था, परन्तु अन्य प्रान्तों की सेनाएँ एक ही प्रान्त की सेना का प्रभुत्व नहीं देख सकती थीं। इस भाँति सैनिक प्रतिद्वन्द्विता आरम्भ हो गयी जिस से लग भग सौ वर्ष तक साम्राज्य में अव्यवस्था और अशान्ति रही।

२१८ ई० में सीरिया की सेनाओं ने रोम में आकर अपने सेनापति एलागा बालस को सम्राट् बनाया। यह पहले सूर्य का प्रतिबिम्ब मान कर एक पत्थर की पूजा करता था। सम्राट् होने पर उसने वह पत्थर रोम में रखवा कर उसे पूज्य ठहराया।

इसकी चाल-ढाल, पोशाक आदि पूर्वी ढंग की थी। इसने ४ वर्ष राज्य किया। यह रोम के सैनिक-विद्रोह में मारा गया।

अब सैनिकों ने उसके चचेरे भाई अलेक्जेंडर सेवेरस को सम्राट् बनाया जो २३५ तक राज्य करता रहा। इसके समय में भी कोई विशेष घटना नहीं हुई। यह सीधा-सादा, ईमानदार, वेदान्ती और विद्यानुरागी था। यह ऑर्फीयस, ईसामसीह, अब्राहम और एबिलीस आदि अनेकों देवताओं की पूजा किया करता था। यह सैनिकों के अत्यचारों के कारण उनकी शक्ति कम करना चाहता था। अतः सैनिकों ने षड्यन्त्र रच कर इसे मार डाला।

अलेक्जेंडर सेवेरस की मृत्यु के पीछे और भी अधिक गड़-बड़ मची। सेना ही अब सब कुछ थी, परन्तु उसमें भी नए सम्राट् बनाने के प्रश्न पर झगड़े हो जाते थे जिससे उसकी शक्ति कम हो गयी। इन झगड़ों के कारण आर्थिक संकट भी उपस्थित हुआ और व्यापार मन्द पड़ गया। सैनिकों के वेतन के लिये भारी भारी कर लगाये गये। स्वतंत्र नगर भी जो अब तक अपना प्रबन्ध आप करते थे और जिनके कारण साम्राज्य बलवान था, पूर्ण-तया अधीन कर लिये गये। चुने हुए मजिस्ट्रेटों के स्थान पर अब सरकार द्वारा लोग नियुक्त होने लगे। सीनेट भी जमींदारों की एक सभा हो गयी और ये मजिस्ट्रेट और सीनेट कर वसूली के लिये उत्तरदायी थे। इस भाँति अब तक जो पद बड़े मान के समझे जाते थे, वे अब भार-स्वरूप हो गये और सरकार को दण्ड का भय दिखा कर वे पद लोगों से स्वीकार कराने पड़े। इस स्वतंत्रता और व्यापार के साथ सब समृद्धि भी नष्ट हो गयी। साहित्यिक और बौद्धिक ह्रास होने लगा। कलाएँ भी मन्द हो

गयीं। धर्म भी विचित्र और नए २ उत्पन्न होने लगे और धार्मिक विवाद बहुत बढ़ गया।

दूसरी ओर साम्राज्य की सीमाओं पर, बर्बर लोग—जिन्हें रोम के सम्राटों ने अबतक रोक रखा था—बढ़ कर लूट मार और आक्रमण करने लगे। राइन और डान्यूब नदियों के तटों पर जर्मनों ने आक्रमण किये। गॉल को फ्रेंच लोगों ने जीत लिया और उसका नाम फ्रांस रखा। ये उस समय सबसे वीर और क्रूर थे। तीसरी जाति गॉथ भी आगे बढ़ती आती थी और फारसियों ने भी आक्रमण करके एक रोमन सम्राट् वेलेरियन को क़ैद कर लिया और उसे अपने यहाँ ले गये। (२६० ई०) कहते हैं कि फारस का राजा उसे बेड़ी डालकर सब जगह अपने साथ ले जाता था और उसके ऊपर पैर रख कर अपने घोड़े से उतरा करता था। जब वह मरा तो उसकी खाल में भूसा भरवा कर उसे फारस के एक मन्दिर में रखवा दिया।

पाँच वर्ष तक फिर अव्यवस्था मची रही। परन्तु क्लाडियस के सम्राट् बनने से अवस्था फिर बदली। उसने गाथों को हराकर रोम राज्य से बाहर निकाल दिया। क्लाडियस से बहुत कुछ आशा थी परन्तु २७० ई० में प्लेग उसे ले गया और रोम की भी बहुत क्षति हुई। सौभाग्य से दूसरा सम्राट् औरेलियन हुआ। उसने भी गाथों को कई बार हराया परन्तु उन्हें प्रसन्न करने को डेसिया प्रान्त उन्हें दे दिया; क्योंकि वह जानता था कि उसे रखना रोम की शक्ति से बाहर है। इस भाँति डान्यूब नदी फिर रोम राज्य की सीमा हो गयी। औरेलियन ने प्रयत्न करके रोम साम्राज्य को फिर एक सम्राट् के अधीन किया। इसने 'संसार का पुनःस्थापक' की

पदवी पायी। उसने जर्मनों को हराकर गॉल और ब्रिटेन को फिर आधान किया और इस भाँति साम्राज्य के बहुत से खोए हुए भाग प्राप्त करके उसे दृढ़ करने का प्रयत्न किया। परन्तु सिपाही उसका दृढ़ राज्य न देख सके क्योंकि वे अब कुछ काम न करके अत्याचार करने की तनख्वाह लेना चाहते थे। अतः उन्होंने सम्राट् को मार डाला और देश में दस वर्ष तक फिर वही अव्यवस्था रही। अन्त में डान्यूब की सेनाओं ने अपने सरदार डायोक्लेशियन को सम्राट् बनाया।

सत्ताईसवाँ अध्याय

पुनरुत्थान

ऐसी अशान्ति के समय में अन्य सम्राटों की भाँति डायोक्लेशियन से भी कुछ आशा न थी। परन्तु उसने सब आशाओं के विरुद्ध एक नया युग स्थापित किया।

उसका पिता रोम में दास था और अब तक वह स्वयं भी एक साधारण परन्तु वीर सिपाही था। वह इसी योग्यता के बल से सम्राट् के पद तक पहुँचा। सम्राट् होते ही उसने बड़ी योग्यता और राजनीतिज्ञता का परिचय दिया। उसने ऐसे परिवर्तन किये जो आगस्टस के समान महत्त्वपूर्ण थे। आगस्टस के समय में यद्यपि रोमन संसार राज-प्रथा की ओर झुक रहा, परन्तु नाम प्रजातंत्र का ही था। परन्तु डायोक्लेशियन ने पूर्ण राज-प्रथा

स्थापित कर दी। अतः इस समय से पहले 'रोम साम्राज्य' कहना ठीक नहीं है। वास्तव में 'रोम साम्राज्य' इसी समय स्थापित हुआ।

पहले उसने सेना की ओर ध्यान दिया। वह सेना की सहायता से ही सम्राट् पद तक पहुँचा था। परन्तु अब वह उसकी शक्ति कम करना चाहता था। क्योंकि उससे सदा उसे भय रहता था। सैनिकों को दबाव में रखने के लिये उसने पूर्वी राजाओं की नीति स्वीकार की। उसने अपने को ईश्वर का अंश बताया और सबको साष्टांग दण्डवत करने की आज्ञा दी। इस कार्य में वह सफल हुआ। सैनिक उससे दबे रहे।

उसका दूसरा उद्देश सीमाओं की रक्षा करना था। इसके लिये और अच्छे शासन-प्रबन्ध के लिये उसने उचित समझा कि साम्राज्य को कई भागों में बाँट कर वहाँ भिन्न २ शासक नियत कर दिये जाँय। उसका विचार बहुत अच्छा था, परन्तु इसके लिये ऐसे शासकों पर पूर्ण प्रभाव रखना और इच्छानुसार उन्हें एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में बदलने अथवा अनुचित प्रबन्ध पर अलग करने की शक्ति का होना आवश्यक था। परन्तु सम्राट् यह न कर सका।

डायोक्लेशियन ने मेकसीमियन नामक एक वीर सेनापति को अपना सहयोगी शासक बनाया और इन दोनों ने आगस्टस की उपाधि धारण की। इनसे कुछ नीचे पद के लिये उसने गेलेरियस और कान्स्टेन्टाइनस को सीजर की पदवी देकर शासक बनाया। मेकसीमियन, इटली और अफ्रीका का मालिक बनाया गया और थ्रेस, मिश्र और एशिया-माइनर को डायोक्लेशियन ने अपने अधिकार में रखा। कोन्स्टेन्टाइनस के अधीन गॉल, स्पेन और ब्रिटेन

थे और दूसरे सीज़र के अधीन डान्यूब के पास का प्रदेश। सीज़र आगस्टसों की मृत्यु पर उनका स्थान पाने के अधिकारी थे। इस भाँति रोम साम्राज्य चार शासकों में बँट गया। इससे प्रबन्ध तो अवश्य सुधर गया, परंतु व्यय बहुत बढ़ गया।

अंतिम दिनों में उसने ईसाई मत को दबाने का बड़ा प्रयत्न किया क्योंकि ईसाई धर्म धीरे २ बढ़कर एक स्वतंत्र शक्ति बन रहा था और साम्राज्य के हित के लिये उसे अधीनता में रखना आवश्यक था। अतः ३०३ में उसने आज्ञा निकाली कि सब गिरजे नष्ट कर दिये जाँय। ईसाई धर्म की पुस्तकें सरकारी अफ़सरों को दे दी जाँय और जला दी जाँय तथा ईसाई अफसरों का पद नीचा किया जाय। कुछ दिन बाद बिशपों को भी कैद किया गया। इन कानूनों से ईसाई धर्म को बहुत हानि पहुँची। अनेक ईसाई नष्ट हो गये और बहुतों ने धर्म ही छोड़ दिया। परन्तु इनकी संख्या बहुत बढ़ चुकी थी। अतः ये पूर्णतया नष्ट न हुए। ३०५ में वह अपने पद से आराम करने के लिये अलग हो गया। शायद वह यह भी देखना चाहता था कि उसके उत्तराधिकारियों के समय में उसकी नीति कैसी चलती है। उसका स्वास्थ्य भी कुछ खराब हो चला था। वहाँ वह आठ वर्ष तक और रहा परन्तु उसने अपने जीवन में ही अपने नियत किये हुए आगस्टसों और सीज़रों को लड़ते देख लिया और ऐसे झगड़े उसकी मृत्यु के दस वर्ष बाद तक होते रहे।

३०६ में सीज़र कान्स्टेन्टाइन के मरने पर उसकी सेना ने सर्वसम्मति से उसके पुत्र कान्स्टेन्टाइन को उसकी जगह बैठाया। ३१२ में उसने आल्पस पार करके उत्तर इटली पर आक्रमण किया।

कहते हैं कि वह अपने झंडे पर ईसा के नाम के अक्षर लिख कर ले गया था। दूसरे वर्ष रोम के पास भारी युद्ध हुआ जिसमें कान्स्टेन्टाइन की विजय हुई और वह रोम साम्राज्य के इस भाग का भी मालिक हो गया। दस वर्ष बाद उसने थ्रेस में पूर्वी भाग के सम्राट् लिसिनियस को हरा कर वहाँ भी अधिकार कर लिया। इस भाँति वह समस्त रोम साम्राज्य को फिर एक मनुष्य की अधीनता में ले आया।

जूलियस सीजर के अतिरिक्त भविष्य के इतिहास पर कान्स्टन्टाइन के बराबर प्रभाव और किसी ने नहीं डाला है। वह चतुर सिपाही और प्रबन्धक था और यदि वह रोम में अनेक सुधार न करता तो भी एक बड़ा सम्राट् और सिपाही गिना जाता। वह दूरदर्शी, राजनीतिज्ञ और सोच विचार कर काम करने वाला था। वह ईसाई मत को पसन्द करता था, परन्तु अन्य धर्मों के प्रति असहिष्णु नहीं था।

उसका राज्य मुख्यतया दो बातों के लिये प्रसिद्ध है। एक तो उसने पुरानी राजधानी रोम को छोड़ कर थ्रेस के एक नगर को जिसे यूनानी बैजन्टायम कहा करते थे, अपनी राजधानी बनाया। उसका विचार था कि रोम में रहने से वहाँ के लोगों के पुराने राजनैतिक विचार और आदर्श दूर न होंगे। रोम के साथ अनेक ऐतिहासिक स्मृतियाँ गुथी हुई थीं। साम्राज्य का दूसरा रूप ही रोम था और रोम वाले समझते थे कि इसके पतन होते ही साम्राज्य की समाप्ति हो जायगी। परन्तु ऐसा न हुआ। हानि के स्थान पर साम्राज्य को लाभ पहुँचा क्योंकि रोम पर बाहरी जातियों के लगातार आक्रमण होने लगे थे। बैजन्टा-

यम, अब सम्राट् के नाम पर कान्स्टेन्टीनोपल अथवा कुस्तुन्तुनियाँ कहलाने लगा यह तीन ओर जल से घिरा था और पश्चिम की ओर किलों से सुरक्षित किया जा सकता था। उसकी व्यापारिक स्थिति भी अच्छी थी क्योंकि वह एशिया के बहुत पास था। मिश्र से गेहूँ आदि प्राप्त करना वहाँ से बहुत सरल था। फिर वह रोम के दो बड़े शत्रुओं—गोथ जिनका केन्द्र क्रीमिया था और फारसी लोग—दोनों से बराबर दूरी पर था।

कान्स्टेन्टाइन धर्म में भी परिवर्तन करना चाहता था, परन्तु रोम में परम्परा के कारण पुराना धर्म इतना दृढ़ था कि परिवर्तन करने से विरोध और विद्रोह का बड़ा भय था, यद्यपि बहुत लोगों का विश्वास इस समय पुराने धर्म से हट रहा था। समझदारों की उसमें श्रद्धा न रही थी और वे एक ऐसे नए धर्म की आवश्यकता समझ रहे थे जिसके कारण रोमन लोगों का जीवन नये प्रवाह में प्रवाहित होकर उन्नति की ओर अग्रसर हो। फिर भी सम्राट् ने विरोध के विचार से इस धर्म के विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया।

परन्तु वह स्वयं ईसाई धर्म की ओर झुक रहा था; क्योंकि उसने देखा कि ईसाई संगठित और शक्तिमान हैं। यदि मैं ईसाई धर्म स्वीकार कर लूँ तो सहज में इस दल का मुखिया होकर शक्ति प्राप्त कर सकता हूँ। यह सोच कर उसने ईसाइयों के विरुद्ध पुराने सब कानून रद्द कर दिये। अब ईसाई धर्म-विद्रोहियों का धर्म न रहा। ईसाइयों को पुराने रीति-रिवाज मानने, न मानने का पूरा अधिकार दिया गया और उनकी शक्ति बढ़ती गयी। अब रोम के प्राचीन धर्म के लोगों ने ईसाईयों के साथ कड़ा व्यवहार आरम्भ किया। अनेकों को क़त्ल किया

और अनेक पुस्तकें जलायीं। परन्तु ईसाई मत नष्ट न हुआ। बल्कि पुराने धर्म को ही अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिये भारी परिश्रम करना पड़ा।

कुछ दिन बाद कान्स्टेन्टाइन ने स्वयं ईसाई धर्म ग्रहण करके उसके राजधर्म होने की घोषणा कर दी। इस भाँति सम्राट् के धर्म-परिवर्तन का इतिहास पर बड़ा प्रभाव पड़ा। ईसाई धर्म के राजधर्म हो जाने के कारण उसकी स्थिति बहुत दृढ़ हो गयी और लोगों के पुराने विश्वास दूर होने लगे। धीरे २ अनेक स्थानीय धर्मों के स्थान पर एक सार्वजनिक मत फैला जो सब जाति और सब भाषावालों के लिये एक समान था। अपोलो, वीनस और मित्र की सुन्दर मूर्तियों के स्थान पर सूली सहित ईसा को स्थान मिला। कैसी आश्चर्यजनक धार्मिक क्रान्ति है!

राजधानी तथा धर्म-परिवर्तन से रोम का महत्व बिलकुल नष्ट हो गया। राजनैतिक अथवा धार्मिक क्षेत्र में अब वह पहले के समान अगुआ नहीं रहा। अब वहाँ का प्रधान अधिकारी केवल गिरजा घर का एक बिशप था।

कान्स्टेन्टाइन ने सेना के भी खण्ड करके कुछ को इटली में रखा और कुछ को सीमाओं पर भेज दिया। इस भाँति निर्बल हो जाने से उसके विद्रोह की आशंका न रही। इसी भाँति उसने साम्राज्य को कई भागों में बाँट कर वहाँ प्रबन्ध और न्याय की अच्छी व्यवस्था की, जिससे कुछ दिन शान्ति रही।

३३७ में उसकी मृत्यु पर महलों में अनेक षड्यंत्र चलते रहे और युद्ध और रक्तपात भी हुए; परन्तु कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं हुई।

३५५ में कान्स्टेन्टाइन का भतीजा जूलियन सम्राट् हुआ। वह बड़ा वीर था और उसने जर्मनों पर आक्रमण करके अपनी वीरता का परिचय दिया। कान्स्टेन्टाइन का पुत्र उससे जला करता और क्रूर व्यवहार किया करता था। उसने जूलियन के कई सम्बन्धियों को मरवा डाला। कान्स्टेन्टाइन के पुत्र ने ईसाई होते हुए भी ऐसे क्रूर कार्य किये। यह देख कर जूलियन को, जो जन्म से ईसाई था, ईसाइयों से घृणा हो गयी और फिर उसने पुराना धर्म अपनाया।

३५९ में सेनाओं ने भी उसे सरदार और सम्राट् मान लिया और दूसरे वर्ष कान्स्टेन्टाइन के पुत्र के मर जाने पर वह पूर्णतया स्वतंत्र हो गया।

ईसाई धर्म से जिस शान्ति, समृद्धि और धार्मिकता की वृद्धि की आशा की गयी थी, वह सफल न हुई। क्योंकि इस समय इटली में और उसके बाहर भी युद्ध बढ़ते जाते थे। ईसाई स्वयं एक दूसरे से लड़ रहे थे और बड़ी क्रूरता और जंगलीपन का परिचय दे रहे थे, क्योंकि उनमें धार्मिक विवाद था, जैसा कि हम आगे देखेंगे। धार्मिक जोश में आकर वे अपने धर्म की एकता भूल गये और एक दल के लोग दूसरे दल के लोगों को पुराने धर्मावलम्बियों से भी अधिक घृणा की दृष्टि से देखने लगे। यह देख कर बहुत से नए ईसाई फिर अपने प्राचीन धर्म में लौट गये, जिसमें अब जूलियन कुछ सुधार कर रहा था।

जूलियन सब से अधिक मित्र अथवा सूर्य देव को मानता था। वह कहता था कि यही विश्वकर्ता की सजीव और हित-कारी मूर्ति है। इसके अतिरिक्त वह कुछ और देवताओं को भी

मानता था। ये विचार उसने यूनान में रह कर सीखे थे और अब वह उनका प्रचार करना चाहता था। फिर भी उसने किसी बात पर जोर न दिया और अन्य धर्मावलम्बियों को पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता दी। यहूदियों को जरूसलेम का मन्दिर फिर बना लेने दिया। सिक्कों और लेखों से ईसाई चिह्न लोप होने लगे। प्राचीन देव मन्दिरों में खूब हवन होने लगे। जूलियन इस प्राचीन धर्म में भी ईसाइयों का सा दृढ़ संगठन और पुजारियों की विशेष शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहता था। उसने ईसाईयों को शिक्षकों और ऊँचे पदों से हटा दिया और आर्थिक सहायता बन्द कर दी।

यदि जूलियन अधिक समय तक रहता तो धार्मिक झगड़ा अवश्य बढ़ता, परन्तु उसे फारसीयों से लड़ने जाना पड़ा जहाँ से लौटते समय वह मारा गया। कहते हैं कि उसके अन्तिम शब्द ये थे 'गैलिलीय तू ही जीत गया' और वास्तव में गैलिलीय (गैलिली ईसा के जन्म-स्थान के पास एक झील थी) जीत गया; क्योंकि जूलियन की मृत्यु से प्राचीन धर्म के उत्थान की अन्तिम आशा जाती रही। प्राचीन धर्म का यह अन्तिम अनुयायी सम्राट् था। वैसे तो कान्स्टेन्टाइन के ईसाई धर्म स्वीकार करने के समय से ही रोम में प्राचीन धर्मानुयायी सम्राटों की समाप्ति हो गयी थी और इसे एक बड़ी घटना मान कर अनेक इतिहास-लेखकों ने यहीं पर प्राचीन काल की समाप्ति करके मध्यकाल का आरम्भ किया है। परन्तु हम मध्यकाल के पहले पश्चिमी रोमन साम्राज्य को समाप्त कर देना चाहते हैं क्योंकि जूलियन ने फिर रोम के प्राचीन धर्म को स्वीकार करके उसके प्रचार का प्रयत्न किया था।

जूलियन की मृत्यु के बाद कुछ दिन तक अशान्ति मची रही। फिर ३७९ में थीयोडोसियस सम्राट् हुआ। इसका समय तीन महत्त्वपूर्ण बातों के लिये प्रसिद्ध है—ईसाई धर्म की अन्तिम विजय, बर्बर जातियों से युद्ध और रोमन कानून की पूर्ति।

थियोडोसियस कट्टर पन्थ का ईसाई था और अपने मत का प्रचार करना चाहता था जिसे उसने किया भी। रोम का प्राचीन धर्म बहुत घट गया और ईसाई धर्म बढ़ा। ईसाई धर्म को यह अन्तिम विजय बड़ी सरलतापूर्वक मिल गयी। ३९४ में सम्राट् की उपस्थिति में सीनेट में यह बहस हुई कि नगर का संरक्षक प्राचीन देवता जूपिटर माना जाय अथवा ईसा। सीनेट ने ईसा के पक्ष में मत दिया और फौरन ही यह निर्णय कानून बनाकर कार्यान्वित कर दिया गया। प्राचीन धर्म के हवन करने के लिये मृत्यु दण्ड नियत कर दिया गया और बिना हवन किये भी प्राचीन देवताओं की पूजा बन्द कर दी गयी। पुराने मन्दिर जिनमें बहुत से अति सुन्दर और प्राचीन शिल्प और कारीगरी के आश्चर्य-जनक नमूने थे, अपवित्र और नष्ट किये गये। उनके खम्भे और पत्थर आदि ईसाई गिरजों में लगाये गये और कुछ मन्दिर समूचे ही गिरजे बना लिये गये। साम्राज्य भर में यही दशा हुई।

ईसाई धर्म की विजय हुई, परन्तु इसके साथ ही रोम की प्राचीन सभ्यता और कला का अन्त हो गया। शिल्प तथा अन्य कलाओं का ह्रास होने लगा। सभी कवियों, वेदान्तियों और ऐतिहासिकों के ग्रन्थ, ईसाई धर्म-ग्रन्थों के विरोधी होने के कारण, पूर्ण उपेक्षा की दृष्टि से देखे जाने लगे और शीघ्र ही

विस्मृति-सागर में डूब गये। एक सहस्र वर्ष तक इसी भाँति पड़े रहे जब कि 'रेनासेन्स' के समय में फिर उनका प्रचार हुआ। यूनान और रोम के ज्ञान का प्रकाश मन्द पड़ गया। इसी कारण आगे का समय 'अन्धकारमय युग' कहा जाता है।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

गाथों की विजय

पश्चिमी रोम साम्राज्य का अन्त

जिस समय रोम में धार्मिक झगड़े चल रहे थे, उसी समय रोम साम्राज्य की सीमाओं पर बर्बर जातियाँ बढ़ती आती थीं। सम्राटों को आन्तरिक झगड़ों के कारण इनकी ओर ध्यान देने का पूर्ण अवकाश न था। अतः उन्हें आगे बढ़ने और विजय प्राप्त करने में बहुत सुविधा मिली।

ये जातियाँ २५० ई० से आगे बढ़ रही थीं। कई बार रोम की सेनाओं ने इन्हें हराया परन्तु फिर भी वे लोग आगे बढ़ते गये और अच्छी जगहों में बसते गये। इस भाँति धीरे २ अवसर पाकर आगे बढ़ते और अपनी बस्तियाँ बसाते उन्होंने रोम के अधिकारों को खोखला कर दिया।

इन आक्रमणों में कुछ विशेषताएँ भी थीं। ये लोग पूर्ण अजेय शक्ति अथवा विशाल सेना के साथ कभी नहीं आये। अतः रोमन

सेनाएँ कई बार उन्हें हटाती रहीं। दूसरी विशेषता यह थी कि इनमें से अधिकांश लोग रोम की ही नौकरी में थे। रोमन सम्राट् इटली के बाहर के लोगों को भी अपनी सेना में भर्ती कर चुके थे। उनको युद्ध-कला इस भाँति साम्राज्य की सीमा से बाहर पहुँच चुकी थी, जो अन्त में उन्हीं के पतन का एक कारण हुई। तीसरी विशेषता यह थी कि गोथ लोग, जो रोम में बड़े वीर और अजेय समझे जाते थे, एक दूसरी जाति के लोगों से हार कर इधर भाग आये थे। एक विचित्रता यह भी थी कि यद्यपि ये लोग ज्ञान, शिक्षा और सभ्यता में बहुत पीछे थे, परन्तु विजित देश से ये नयी बातें सीखने को तैयार थे। ये लोग रोम की सभ्यता को नष्ट करने नहीं, बल्कि स्वयं उसमें सम्मिलित होने के लिये आये थे।

३७४ में मध्य यूरोप में गोथों की बस्तियों पर, मध्य एशिया से आयी हुई एक युद्धशील बर्बर तातारी जाति—हूण—ने आक्रमण किये और नीस्टर नदी के पास उन्हें पूर्णतया हरा दिया। गोथ लोग अब डान्यूब के पास आये और आगे बढ़कर बसने के लिये रोम सम्राट् से आज्ञा माँगने लगे। बालकन प्रायद्वीप का उत्तरी भाग युद्धों के कारण ऊजड़ पड़ा था। अतः सम्राट् वेलिन्स ने उन्हें वहाँ बसने की आज्ञा दे दी। आज्ञा के साथ ही ३७६ ई० में गोथों के झुंड के झुंड डान्यूब के इस पार आकर बसने लगे। उनकी अपार संख्या देख कर सम्राट् भी घबरा गया और फिर उन्हें बाहर निकलने की इच्छा से उन्हें तंग करना आरम्भ कर दिया। इस भाँति उसने गोथों को बसने की आज्ञा देकर उनमें जो मित्रता के भाव उत्पन्न किये थे वे नष्ट हो गये और शीघ्र ही युद्ध

आरम्भ हो गया। ३७८ में रोमनों ने गोथों पर आक्रमण कर दिया परन्तु एड्रियानोपल नगर के पास गोथों के एक घुड़सवार दल ने उन्हें पूर्णतया हराकर भगा दिया। रोमनों की यह पराजय भी उतनी ही भारी थी जितनी हैनीबाल से लड़ते समय केनी के युद्ध में हुई थी। उनकी प्राचीन दृढ़ता और वीरता नष्ट हो गयी, उत्साह भी चला गया। अतः आगे भी वे पूर्ण विजय पाने में समर्थ नहीं हुए। सम्राट् वेलिन्स भी इसी युद्ध में मारा गया।

इसी समय गोथों के नेता की भी मृत्यु हो गयी और उनमें प्लेग फैल गया। अतः वे कुछ दिन तक अपनी विजय का पूर्ण लाभ उठा न सके। वेलिन्स के बाद के सम्राट् थियोडोसियस ने उन्हें एक बार हरा कर फिर उनसे सन्धि कर ली, जिसके अनुसार थ्रेस और एशिया माइनर में बहुत सी भूमि उन्हें दे दी गयी। उन्होंने भी बदले में रोम को चालीस हजार सेना की सहायता देना स्वीकार किया। इस सेना के अफसर यद्यपि गोथ ही थे परन्तु रोम की आज्ञाओं के अधीन थे। इस भारी सेना से रोमन साम्राज्य की रक्षा के साथ ही, उसे भय भी था। क्योंकि इस भाँति एक प्रकार से साम्राज्य की रक्षा का भार विदेशियों के हाथ में पहुँच गया। फिर भी थियोडोसियस के समय में यह प्रबन्ध अच्छी तरह चलता रहा और यदि उसके उत्तराधिकारी चतुर होते तो इस प्रबन्ध से लाभ भी उठा सकते थे। परन्तु ३९५ में थियोडोसियस की मृत्यु के बाद नीति बदल गयी।

अबतक की घटनाओं से यह स्पष्ट हो गया होगा कि एक मनुष्य इतने बड़े साम्राज्य का ठीक प्रबन्ध नहीं कर सकता। अतः थियोडोसियस ने यह व्यवस्था कर दी कि उसकी मृत्यु के बाद

उसका बड़ा पुत्र आर्केडियस आधे पूर्वी भाग पर राज्य करे और कान्स्टेन्टाइन उसकी राजधानी रहे तथा दूसरा पुत्र होनोरियस पश्चिमी भाग पर राज्य करे और उसकी राजधानी मिलन रहे। इस भाँति व्यावहारिक रूप से साम्राज्य के दो भाग हो गये, यद्यपि कुछ लोग उन्हें एक ही मानते रहे।

३९५ में पश्चिमी गोथों में एक बड़ा वीर मनुष्य एलरिक राजा हुआ जो एक सच्चा ईसाई था। वह पूर्वी साम्राज्य से शत्रुता रखता था परन्तु उसका आक्रमण कान्स्टेन्टीनोपल की दृढ़ दीवालों के आगे निरर्थक हुआ। फिर वह यूनान में होकर, वहाँ बहुत क्षति पहुँचाता हुआ बालकन प्रायद्वीप के उत्तर पश्चिम में बस गया। ४०१ में उसने इटली की ओर ध्यान दिया, जहाँ होनोरियस सम्राट् था। परन्तु सम्राट् की अवस्था इस समय केवल १५ वर्ष की थी। स्टिलाइको नाम का वन्डाल जाति का एक सेनापति उसका संरक्षक था जिसने एलरिक को हरा कर भगा दिया। इस विजय से स्टिलाइको को बड़ा गर्व हुआ और वह कहने लगा कि मैंने गोथों की शक्ति को पूर्णतया नष्ट कर दिया है। इस वीर सेनापति के आगे सम्राट् की कुछ न चलती थी। अतः ज्यों २ वह बड़ा होता जाता था, स्टिलाइको से जलता जाता था और अन्त में ४०८ में उसने धोखे से सेनापति को मरवा डाला। इस दुष्कर्म से क्रुद्ध होकर सेनापति के सिपाही एलरिक से मिल गये। अतः इसी वर्ष एलरिक ने जब रोम पर दूसरा आक्रमण किया तो उससे लड़ने के लिये न कोई सेनापति था, न कोई सेना। एलरिक इटली होकर रोम पहुँचा और वहाँ उसने घेरा डाल दिया। यद्यपि वह रोम के सिपाहियों से युद्ध कर रहा था और वे उसके

शत्रु थे; परन्तु वह रोम की प्रत्येक बात की प्रशंसा करता था और केवल रोम साम्राज्य में कोई आदर और शक्ति का पद पाने से ही सन्तुष्ट हो जाता। उसने अपना विचार प्रकट भी कर दिया था और इसी कारण उसने दो बार रोम से घेरा उठा लिया। परन्तु रोम वालों तथा सम्राट् के धोखा देने के कारण ४१० में उसने तीसरी बार वहाँ घेरा डाला। बहुत दिन तक रोम के सिपाही दृढ़ रहे परन्तु जब वे भूखों मरने लगे तो एलरिक ने फाटक से घुस कर वहाँ पर अधिकार कर लिया। सिपाहियों ने कुछ लूटपाट तथा हत्याएँ कीं परन्तु एलरिक शीघ्र ही उन्हें हटा कर, अपनी विजय पूर्ण करने के लिये, दक्षिण इटली में चला गया। वहाँ एक बीमारी से उसकी मृत्यु हो गयी।

यद्यपि रोम के इस पतन से पश्चिमी रोम साम्राज्य का पूर्णतया अन्त नहीं हुआ परन्तु फिर भी अन्त का यह एक प्रधान कारण हुआ। रोम की प्रतिष्ठा इतनी अधिक थी कि उसके पतन से रोमन साम्राज्य के आधार का भी अन्त होता ज्ञात हुआ। कुछ लोग यह भी कहने लगे कि रोम ने जब तक अपने प्राचीन देवताओं को माना तब तक वह कई शताब्दियों तक विजयी रहा, परन्तु ईसाई मत स्वीकार करते ही नष्ट हो गया। ईसाई धर्म के ऊपर इस आरोप के उत्तर में उस समय के सबसे प्रसिद्ध साधु सन्त आगस्टाइन ने—जो आरम्भिक ईसाई धर्म के इतिहास में सबसे प्रधान तथा महत्वपूर्ण पुरुष है—'ईश्वर का नगर' नामक एक पुस्तक लिखी।

एलरिक की मृत्यु से रोम की बहुत सी चिन्ता जाती रही क्योंकि नेताहीन गोथ उतने भयंकर न थे। फिर भी वह अपनी

स्थिति तथा शक्ति प्राप्त करने में समर्थ न हुआ, न बर्बरों को बाहर भगा सका। बल्कि एलरिक के मार्ग का अनुसरण करके भिन्न २ जातियों के बर्बर लोग, शीघ्र ही एड्रियाटिक सागर के पश्चिम के सब प्रान्तों में फैल गये और धीरे २ पश्चिम का रोम साम्राज्य स्वयं ही लुप्त हो गया।

एलरिक के बाद अटाल्फस गोथों का राजा हुआ जिसने सम्राट् थियोडोसियस की पुत्री से विवाह किया। इस स्त्री ने गोथों को इटली से बाहर निकालने के विचार से उसे इटली के बाहर एक साम्राज्य की स्थापना करने के लिये कहा। यह साम्राज्य स्पेन और गाल के बीच में स्थापित हुआ और लगभग तीन सौ वर्ष तक चला।

४२९ ई० के लगभग एक दूसरी बर्बर जाति बन्डालों ने—जो गोथों से मिलते जुलते थे—रोम के अधिकार से अफ्रीका को—जो रोम के अधिकार में बहुत सभ्य तथा समृद्ध हो गया था—छीन लिया; क्योंकि वह धार्मिक झगड़ों के कारण असंगठित था। फिर भी कारथेज पर अधिकार करने में उसे दस वर्ष लगे। वे स्पेन पर अधिकार कर चुके थे।

बन्डालों के बाद उनसे भी भयंकर जाति के लोगों—हूणों—ने रोम साम्राज्य पर आक्रमण आरम्भ कर दिये। इनका राजा एटिला नाम का एक बड़ा वीर मनुष्य था। ये लोग एक स्थान पर बसना पसन्द नहीं करते थे। अतः इधर उधर घूमते रहते थे। ये लोग रोम की सभ्यता को घृणा की दृष्टि से देखते थे। ४४६ ई० में एटिला ने पूर्वी रोम साम्राज्य पर आक्रमण किया और कान्स्टेन्टीनोपल तक पहुँच गया। जहाँ २ होकर वह निकला, वहाँ केवल धूल ही

धूल रह गयी। फिर लूट की आशा से वह उत्तर की ओर चला और जर्मनी होकर ४५१ ई० में गॉल की सीमा पर पहुँच गया। इस समय गॉल देश का बड़ा भाग गोथों के हाथ में था, परन्तु कुछ भाग पर रोम का भी अधिकार था। अतः एटिला से लड़ने के लिये ये दोनों मिल गये और दोनों की सम्मिलित सेना रोमनों के अन्तिम वीर और महान् जनरल एटियस के नेतृत्व में ट्राय नगर के पास हूणों से मिली। भारी युद्ध के बाद एटिला हार गया और डान्यूब की घाटी की ओर चला गया। गाल की रक्षा हो गयी।

परन्तु यह भय रोम साम्राज्य के एक कोने से हट कर दूसरे में पहुँच गया। ४५२ ई० में एटिला ने आल्प्स पर्वत की पूर्वी घाटियाँ पार कर इटली पर आक्रमण किया और मिलन तक अधिकार कर लिया। यहाँ वह पोपलियों के समझाने से अथवा उनके धार्मिक भय से लौट गया और दूसरे वर्ष मर गया।

रोम तो चारों ओर शत्रुओं से ही घिरा हुआ था। इस समय वेलेन्टाइनियन रोम में सम्राट् था। वह जनरल एटियस से वैसा ही द्वेष रखता था जैसा होनोरस स्टिलाइको से। अतः उसने भी एटियस को सन् ४५४ ई० में मरवा डाला।

इसी समय अफ्रिका से बन्डालों ने—जो लूट का अवसर देख रहे थे—एक बड़ी सेना तथा एक बेड़ा लेकर रोम पर आक्रमण कर दिया। उनका सामना करने को कोई भी सेनापति न रहा। अतः उन्होंने भी सरलता से रोम पर अधिकार कर लिया। पोपलियों की प्रार्थना से क़त्ल तो नहीं हुआ, परन्तु लूट ऐसी भयंकर हुई जैसी आज तक नहीं हुई थी। रोम के सब खजाने कारथेज पहुँच गये।

इसके बाद २१ वर्ष तक इटली में रोमन सम्राटों का केवल नाम बना रहा। अब भी रेवेना स्थान में बैठा हुआ एक मनुष्य अपने को रोमन सम्राट् कहता रहा और दरबार भी करता रहा, परन्तु असली शक्ति एक बर्बर सरदार ओरेस्टस के हाथ में थी, जिसने अपने पुत्र को सम्राट् घोषित कर दिया था। ओडोकर के नेतृत्व में सैनिकों ने तनख्वाह कम किये जाने के कारण, विद्रोह कर दिया। ओरेस्टस मारा गया, उसका पुत्र गद्दी से उतार गया और ओडोकर प्रधान हो गया। परन्तु ओडोकर ने सम्राट् कहलाना स्वीकार नहीं किया, बल्कि सम्राट् के ताज, पोशाक आदि सब चिन्हों को उसने कान्स्टेन्टीनोपल भेज दिया और कहा कि इटली को सम्राट् की आवश्यकता नहीं है। रोम की सीनेट ने भी कान्स्टेटीनोपल के सम्राट् जीनो को लिखा कि वह पश्चिमी भाग का भी सम्राट् होना स्वीकार करे। इस भाँति यद्यपि दोनों साम्राज्य पुनः मिल गये परन्तु पश्चिमी साम्राज्य पर पूर्वी सम्राटों का अधिकार नाम मात्र का रहा। वास्तविक शक्ति ओडोकर के ही हाथ में रही जिसने रोम के सम्राट् पद तक का अन्त कर दिया। इसे ही पश्चिमी रोमन साम्राज्य का पूर्ण अंत समझना चाहिये।

यद्यपि अधिकांश इतिहास-लेखकों ने मध्यकाल का आरम्भ उसी समय से कर दिया है जब सम्राट् कोन्स्टेन्टाइन ने ईसाई धर्म को स्वीकार किया। परन्तु क्रम टूटने के भय से हमने रोमन साम्राज्य के पूर्णतया अन्त होने के समय प्राचीनकाल की समाप्ति करना उचित समझा।

द्वितीय खण्ड

मध्यकाल

उन्तीसवाँ अध्याय

तत्कालीन यूरोपीय जातियां और उनके राज्य

यूरोपीय सभ्यता तीन मूल तत्वों के सम्मिश्रण से बनी है। ये तत्व क्लासिकल, हीब्रू तथा ट्यूटोनिक कहलाते हैं। पहले तत्व में वे सब कलाएँ, आचार-विचार सामाजिक तथा राजनैतिक नियम, विज्ञान, साहित्य, नगर-प्रबन्ध आदि सम्मिलित हैं जिन्हें यूनान और रोम ने यूरोप को दिया। वर्तमान यूरोपीय सभ्यता के ये सब से प्रधान तथा महत्वपूर्ण अंग हैं, यद्यपि कुछ लोग दूसरे तत्त्वों को ही अधिक प्रधानता देते हैं।

दूसरा तत्त्व हीब्रू अर्थात् ईसाई मत है। यह भी बड़ा महत्त्व-पूर्ण अंग है। इसके कारण यूरोप भर में मठ, गिरजे तथा पाठशा-लाएँ आदि बन गयीं। इसी ने धर्म युद्ध के लिये लोगों को उत्ते-जित कर उनमें वीरता का संचार किया। इसके सिद्धान्तों ने प्राचीन संसार को नवीन संसार से बिलकुल भिन्न कर दिया।

तीसरे तत्त्व ट्यूटोनिक में वे सब जातियाँ सम्मिलित हैं जो रोम साम्राज्य के पतन के दिनों में यूरोप में आ बसी थीं और जिन्होंने रोम साम्राज्य के पतन में सहायता दी। इन जातियों में प्रधान गोथ, फ्रैंक, डेन, एंगल, तथा सेक्सन आदि हैं। ये लोग कला, विज्ञान, वेदान्त आदि में कुछ भी आविष्कार न

रखते थे, परन्तु इन्होंने रोम से ये बातें सीखकर फिर उन्हें उन्नत किया। इन्होंने शासन-प्रबन्ध आदि के नए सिद्धान्त भी यूरोप में प्रचलित किये और प्राचीन सभ्यता को बिलकुल बदल दिया।

इन जातियों के अतिरिक्त केल्ट, स्लाव, अरब, मंगोल तथा तुर्कों ने भी मध्यकाल के इतिहास में बहुत बड़ा भाग लिया।

मध्यकाल के आरम्भ में केल्ट लोग प्रधानतया पश्चिमी यूरोप में बसते थे। ईसा के चार सौ वर्ष पहले ही इन लोगों ने मध्य यूरोप के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया था। इनकी कई भिन्न २ जातियाँ थीं जो अपने २ सरदारों की अधीनता में एक दूसरे से पूर्ण स्वतंत्र थीं। आर्यों में ब्राह्मणों और क्षत्रियों के समान इनके भी दो भाग थे। एक भाग धार्मिक कार्यों के लिये नियत कर दिया गया था, जो ड्रूड कहलाता था। ये यज्ञ कराते थे और न्याय भी करते थे। न्याय में इनके वाक्य ही राजनियम थे। न माननेवालों को दण्ड दिया जाता था। यज्ञ में ये लोग नर-बलि भी करते थे। दूसरा भाग विशेषतया युद्ध तथा अन्य कार्यों में लगा रहता था।

केल्ट लोग लम्बे, दृढ़ तथा सुन्दर थे। वे वीर और लड़ने में चतुर थे। संगीत और विशेष कर सैनिक संगीत बहुत पसन्द करते थे। काव्य के भी प्रेमी थे और व्याख्यान द्वारा वे चाहे जिस ओर झुकाये जा सकते थे। इनकी भाषा उन्नत तथा विचारों को व्यक्त करने योग्य थी। ये लोग अपने नेता का पीछा भक्ति तथा उत्साह के साथ करते थे। परन्तु धीरे २ इन पर रोमनों का प्रभाव पड़ता गया। वे अपनी भाषा भूल कर लैटिन बोलने

लगे, यद्यपि आयलएड, स्काटलैण्ड तथा वेल्स के केल्ट रोमनों के विरोधी रहे।

ट्यूटोनिक अथवा जर्मन जातियाँ विशेष कर यूरोप के उत्तर में स्केन्डीनेविया प्रायद्वीप तथा राइन प्रदेश में बसी थीं। डान्यूब नदी के पास भी कुछ लोग थे जिनके कई भाग हो गये। जो लोग कालासागर तथा दक्षिण डान्यूब में जा बसे वे गोथ कहलाये। राइन के पास के मनुष्य फ्रैंक तथा सेक्सन आदि कहलाये और फिर इनके डेन, स्वीड आदि और भी कई भाग हो गये।

ट्यूटोन जाति के लोग प्रजातंत्र राज्य पसन्द करते थे। अतः इन्होंने अपने नगरों में स्थानीय स्वायत्त-शासन का प्रचार किया। गाँवों के झगड़े वहीं के मुखियाओं की एक पंचायत द्वारा तय कर दिये जाते थे और प्रान्तीय झगड़े प्रान्तों के मुखियाओं की सभा द्वारा।

समाज में इनकी तीन श्रेणियाँ थीं। सरदार, स्वतंत्र साधारण नागरिक तथा दास। सभाओं में सरदारों तथा स्वतंत्र साधारण नागरिकों की राय समान समझी जाती थी। अर्थात् सरदारों को कोई विशेषाधिकार न थे। युवक लोग प्रायः किसी प्रसिद्ध अनुभवी योद्धा के पास रहने लगते थे तथा उसीके साथ युद्धादि में जाते थे। प्रायः एक एक योद्धा के पीछे सैकड़ों युवक लग जाते थे, इससे उनकी शक्ति बढ़ जाती थी। योद्धाओं और युवकों में सम्बन्ध स्वेच्छापूर्वक होने के कारण दोनों में एक दूसरे के प्रति आदर रहता था।

धर्म में एक भाँति से ये प्रकृति के उपासक थे और वृक्षों, गुफाओं आदि की पूजा करते थे। इनमें कोई पुजारी दल अलग

न था, बल्कि सब लोग सब कार्य करते थे। जीवन-निर्वाह के लिये प्रायः सब लोग चौपाये पालते, शिकार करते तथा खेती करते थे। दासों तथा स्त्रियों को अधिक श्रम के काम करने पड़ते थे। ये लोग दूर २ खुले हुए ग्रामों में बसना पसन्द करते थे, अतः बलवान तथा स्वस्थ रहते थे। इनके लम्बे कद, उज्ज्वल रंग, बलवान शरीर तथा सुर्ख चेहरे देख कर रोमवालों पर बहुत प्रभाव पड़ा। ये लड़ने के बहुत शौकीन होते थे।

इनमें जूआ खेलना, शराब पीना आदि कुछ दुर्गुण भी थे, जूए में स्त्री तथा बच्चों को लगा देते थे और हार जाने पर अपनी स्वतंत्रता तक बेचकर दास बन जाते थे। परन्तु ईमानदार और सत्यप्रिय भी ऐसे थे कि स्वतंत्रता हार जाने पर सहर्ष नये स्वामी की दासता स्वीकार करते थे।

जब इन जर्मन लोगों ने पूर्वी तथा दक्षिणी यूरोप के भाग खाली कर दिये तो स्लाव नामक एक जाति वहाँ बस गयी। वर्तमान प्रशिया की सीमा तक ये बसे थे।

स्लावों में बुड्ढों का बड़ा आदर होता था और शासन-कार्य में प्रायः उन्हीं का हाथ रहता था। इनमें सरदार न थे क्योंकि ये लोग समानताप्रिय अधिक थे। इनमें पुजारियों का मान अधिक होता था और सब धार्मिक तथा प्रायः राजनैतिक मामलों में भी उनकी सलाह ली जाती थी। ये भिन्न २ मूर्तियाँ पूजते थे।

लम्बे तथा दृढ़ होने पर भी ये लोग युद्धप्रिय नहीं थे। अतः विजयी भी नहीं हुए। उनमें राष्ट्रीयता अथवा जातीयता के भाव भी सबसे कम थे। अतः उनमें से बहुतों को अन्य जातियों ने मिला लिया। इनके एक बड़े भाग पर जर्मनों ने अपना रंग चढ़ाकर

कर अपनी जाति में मिला लिया। आगे चल कर लिथूनियन तथा प्रशियन जातियाँ भी इन्हीं से उत्पन्न हुईं और आजकल प्रशा के लोग पूर्ण जर्मन समझे जाते हैं। मध्यकाल में इन्होंने यूरोपीय इतिहास में बहुत कम भाग लिया परन्तु नवीन काल में ये बड़े प्रभावशाली बन गये।

अरबी लोग बहुत दिनों तक अपने मरुस्थल में बन्द रहे परन्तु सातवीं शताब्दी में उन्होंने नये धर्म से दीक्षित होकर उसके प्रचार के लिये यूरोपीय जातियों पर आक्रमण आरम्भ कर दिये जो मध्यकाल के प्रधान अंग हैं।

तुर्क तथा मंगोलों ने यूरोप को अपना परिचय ग्यारहवीं शताब्दी में दिया। जब अरबों का धार्मिक उत्साह कम हो गया तो इन लोगों ने इस्लाम के झण्डे को लेकर आगे बढ़ने का प्रयत्न किया। अनेक युद्ध हुए जिनमें अन्त में ओटोमन तुर्कों ने कान्स्टे-न्टीनोपल के सेन्ट सोफिया के प्रसिद्ध गिर्जे पर क्रॉस के स्थान पर अपना धार्मिक चिन्ह बाल-चन्द्र लगाया।

इनके अतिरिक्त हूण, तूरानी, मागयार, फिन आदि भाषा के हिसाब से और भी कई जातियाँ थीं।

गोथ तथा वण्डाल जातियों का कुछ वृत्तान्त हम पढ़ चुके हैं। ये लोग हूणों से हार कर रोम में घुसे थे और अन्त में उन्होंने रोम पर अपना अधिकार कर लिया। इन्हीं के एक भाग ने स्पेन पर अपना अधिकार कर लिया था। इस भाँति इटली के गोथ पूर्वी गोथ कहलाये और स्पेन आदि में बसे हुए गोथ पश्चिमी गोथ कहलाये। इनमें भी धीरे २ द्वेष बढ़ता गया।

हम देख चुके हैं कि ४७६ ई० में ओडोवकर ने अन्तिम रोमन

सम्राट् को हरा कर पश्चिमी रोमन साम्राज्य का अन्त किया और वहाँ अपना अधिकार कर लिया। उसकी सेना में अधिक संख्या जर्मन लोगों की थी। इटली में शांति और व्यवस्था स्थापित कर उसने सत्रह वर्ष तक राज्य किया। (४७६--४९३) उसके समय में इटली की बहुत उन्नति हुई। ४८९ ई० में उसके हराये हुए एक राजा का पक्ष लेकर पूर्वी गोथों के सरदार थियोडेरिक ने इटली पर आक्रमण किया, परन्तु चार वर्ष तक युद्ध करने के बाद उसने ओडोवकर से सन्धि कर ली जिसके अनुसार इटली को दोनों ने बाँट लिया। परन्तु शीघ्र ही थियोडोरिक ने धोखे से ओडोवकर को मरवा कर समस्त इटली पर अधिकार कर लिया। उसने बड़े २ पदों पर फिर रोमन लोग नियत किये। नगरों की दीवालों, सड़कों और नहरों को मरम्मत कराई। कृषि, तथा व्यापार की भी उन्नति की, विवाह तथा अन्य भाँति से सम्बन्ध करके आसपास की जर्मन जातियों से मेल कर लिया। इस भाँति उसके राज्य के तैंतीस वर्षों में इटली में ऐसी शान्ति और समृद्धि विराजी जैसी उसे एण्टोनाइन युग से नहीं मिली थी। उसने अपना राज्य, अपने कथन के अनुसार ऐसा बना दिया जिससे वहाँ के लोग यह कहें कि हमें बड़ा रंज है कि गोथ लोग इस समय से पहले नहीं आये।

५२६ ई० में थियोडोरिक की मृत्यु हुई। पूर्वी गोथों का यह सबसे बड़ा और प्रसिद्ध सरदार है। उसकी मृत्यु के बाद सत्ताईस वर्ष तक राज्य उसी के वंशजों के हाथ में रहा, परन्तु ५५३ ई० में पूर्वी रोमन साम्राज्य के सम्राट् जस्टिनियन के सरदारों ने वहाँ आक्रमण किये और रोम पूर्वी साम्राज्य में मिल गया।

पश्चिमी गोथों ने दक्षिणी गॉल तथा स्पेन पर अधिकार कर लिया था, परन्तु शीघ्र ही फ्रैंक राजाओं ने उन्हें स्पेन में भगा दिया। वहाँ वे आठवीं शताब्दी तक राज्य करते रहे जब कि सेरेसिन लोगों ने आक्रमण करके उनके राज्य का अन्त कर दिया। ये लोग भी वहाँ के निवासियों से मिल गये थे। अतः इस समय के स्पेन-वासियों में केल्ट, रोमन, गोथ तथा मूर आदि कई जातियों का एक मिश्रण है।

वण्डाल लोगों की मुख्य बस्ती आफ्रिका में थी। ये लोग बड़े भयंकर तथा विनाशकारी थे। अतः इनके नाम का भय समस्त भूमध्य सागर के प्रदेशों में फैल गया था। रोम पर आक्रमण करके इन्होंने वहाँ की प्राचीन सभ्यता की अनेक वस्तुएँ नष्ट कर डालीं और अपने देश के विरुद्ध मत के ईसाइयों पर भी बड़े अत्याचार किये। अतः उन लोगों की प्रार्थना पर सम्राट् जस्टिनियन ने बेलिसेरियस के अधीन एक सेना भेजी जिसने उन्हें हरा कर कारथेज और आसपास की उपजाऊ भूमि पर अधिकार कर लिया। अनेक वण्डाल मारे गये। शेष वहीं के लोगों में भाषा, आकृति आदि में ऐसे मिल गये कि कुछ ही शताब्दियों में केवल नाम के अतिरिक्त उनका कोई चिन्ह शेष न रहा।

पूर्वी गोथों से इटली को छीन कर पूर्वी साम्राज्य में मिलाए हुए दस वर्ष भी न हुए थे कि एक दूसरी बर्बर जाति लम्बार्ड ने फिर वहाँ अधिकार कर लिया और जस्टिनियन की सेनाओं को हरा दिया। ये लोग पहले पूर्वी भाग के ईसाई मत को मानते थे, परन्तु यहाँ आने पर उन्होंने पश्चिमी मत स्वीकार कर लिया। अतः पोप ग्रेगरी प्रथम ने उनके राजा के सिर पर

एक मुकुट रखा जिसमें उस क्रॉस की भी एक कील थी जिस पर चढ़ा कर ईसा को प्राण-दण्ड दिया गया था। इन लोगों की शीघ्र ही वहाँ अनेक छोटी छोटी रियासतें बन गयीं, क्योंकि उनके राज्य में संगठन नहीं था। राजा के अधीन सरदारों ने अपनी २ रियासतें अलग बना लीं। ७७४ में इन्हें फ्रांस के राजा शार्लमेन ने हराकर नष्ट कर दिया, परन्तु उस समय तक ये वहाँ के लोगों से इतने मिल गये थे कि अब तक वहाँ उनकी आकृति के मनुष्य हैं और इटली का उत्तरी भाग अब तक लम्बार्डी कहलाता है।

इसी समय यूरोप की जर्मन जातियों—एंगल और सेक्सन—ने यूरोप के पश्चिमी द्वीप ब्रिटेन पर भी आक्रमण किया। हम देख चुके हैं कि जूलियस सीज़र ने ५५ ईस्वी पूर्व में वहाँ पहुँच कर अपना अधिकार किया था। इसी समय से इँगलैण्ड का इतिहास आरम्भ होता है क्योंकि जब रोमन लोग वहाँ पहुँचे तो वहाँ के लोग पूर्ण असभ्य तथा जंगली थे। वे पत्थर के अस्त्रों से शिकार कर लिया करते थे और इधर उधर प्रायः नंगे घूमा करते थे। ये लोग ब्रिटन कहलाते थे। रोमवालों की यह विशेषता थी कि जहाँ २ वे गये, वहाँ २ उन्होंने अपनी सभ्यता का प्रचार किया। इसी भाँति इँगलैण्ड के (उस समय यह ब्रिटेन कहलाता था) के लोगों को भी उन्होंने सभ्य बनाया। लगभग १०० वर्ष बाद सम्राट् क्लाडियस ने उत्तरी जातियों के आक्रमणों को रोकने के लिये अपने राज्य की सीमा पर एक बड़ी दीवाल बनवायी तथा सड़कें आदि भी बनवाईं जिनके चिन्ह अब तक मिलते हैं।

इस द्वीप पर रोमनों का अधिकार चार सौ वर्षों तक रहा।

तीसरी और चौथी शताब्दी में रोम की शक्ति कम हो रही थी और जब ४१० ई० में एलारिक ने रोम पर आक्रमण कर दिया तो उन्हें ब्रिटेन में स्थित अपनी सेनाएँ भी रोम की रक्षा के लिये हटानी पड़ीं। इतने समय में ब्रिटेन के लोगों पर रोमनों का पूरा रंग न चढ़ा था। जो कुछ प्रभाव पड़ा भी वह आगे के आक्रमणों से नष्ट हो गया।

परन्तु रोमनों के अधिकार में ब्रिटेन समृद्ध हो गया था। दूसरी ओर जब रोमन सेनाएँ वहाँ से हट गयीं तो वह रक्षक-हीन हो गया क्योंकि रोमनों ने ब्रिटेन के लोगों को लड़ना नहीं सिखाया था। उनकी रक्षा का भार अपनी ही सेनाओं पर रखा था।

इस भाँति उन्हें धनवान और अरक्षित देख कर स्वभावतः विदेशियों का ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ। सेक्सन लोगों ने दक्षिणी भाग पर अधिकार कर लिया और एंगल लोगों ने उत्तर में ब्रिटेन की केल्ट जातियाँ—जो रोमनों के समय में ही वहाँ पर बस गयीं थीं—बड़ी वीरता से लड़ीं। परन्तु आक्रमणकारियों को बाहर न निकाल सकीं। ये आने वाली जातियाँ धीरे २ मिलती गयीं और ऐंगल कही जाने लगीं। इसी नाम पर उस द्वीप का नाम भी 'ऐंगल-लैण्ड' एङ्गलों की भूमि पड़ गया, जिससे बिगड़कर इंगलैण्ड हो गया।

इस भाँति वहाँ पर आठ नौ स्वतंत्र रियासतें बन गयीं, परन्तु प्रायः वहाँ सात रियासतें ही मुख्य गिनी जाती हैं। उनमें लगभग दो सौ वर्ष तक प्रधानता के लिये बड़े २ झगड़े होते रहे। क्रम से केन्ट, नार्दम्ब्रिया, मर्सिया, एसेक्स प्रधान रहीं, परन्तु अन्त में

वेसेक्स के राजा एगबर्ट (८०२—३९) ने सब को दबा कर प्रधानता प्राप्त कर ली ।

छठवीं शताब्दी के अन्त में पोप ग्रेगरी महान ने रोम के बाजार में कुछ ब्रिटेन के लड़कों की सुन्दरता देख कर—जो दास बनाकर बेचे जा रहे थे—इंगलैण्ड के लोगों में ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिये सन्त आगस्टाइन को भेजा । केन्ट के राजा एथलबर्ट ने—जिसका विवाह बर्था नाम की फ्रैंक जाति की एक ईसाई स्त्री से हुआ था—स्त्री के प्रभाव से आगस्टाइन का स्वागत किया । आगस्टाइन ने उपदेश देना आरम्भ कर दिया और शीघ्र ही कई राजा तथा अनेक साधारण मनुष्य ईसाई हो गये ।

इस भाँति हम देखते हैं कि इन ट्यूटोन अथवा जर्मन जातियों ने इधर उधर फैल कर अनेक रियासतों की नींव डाली जिनमें इटली, स्पेन, फ्रांस और इँगलैण्ड मुख्य थीं ।

तीसवाँ अध्याय

पूर्वी रोमन साम्राज्य

हम देख चुके हैं कि रोम के सम्राट् थियोडोसियस (दिवोदास) की मृत्यु पर साम्राज्य के दो भाग हो गये थे । इस भाँति चौथी शताब्दी के अन्त में कान्स्टेन्टीनोपल (कुस्तुन्तुनिया) के

जो साम्राज्य स्थापित हुआ वह 'पूर्वी रोमन साम्राज्य' कहलाया। आर्केडियस यहाँ का पहला सम्राट् था।

आर्केडियस की मृत्यु के बाद सौ वर्ष तक इस साम्राज्य की स्थिति भी बड़ी डाँवाडोल रही क्योंकि बर्बर लोग जिन्होंने पश्चिमी रोमन साम्राज्य का अन्त कर दिया पूर्वी साम्राज्य पर भी कई बार आक्रमण करते रहे।

छठवीं शताब्दी के आरम्भ से ही पूर्वी साम्राज्य की दशा सुधर चली। साम्राज्य ने अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न किया। एशियाई प्रान्तों से बहुत सा रुपया वहाँ आने लगा। मिश्र और सीरिया से गेहूँ तथा अन्य खाद्य पदार्थ आने लगे। कुछ काल तक पश्चिमी साम्राज्य भी उनके हाथ में रहा, परन्तु वह शीघ्र ही निकल गया। इस भाँति पश्चिमी साम्राज्य के हाथ से निकल जाने से भी पूर्वी साम्राज्य को लाभ ही हुआ क्योंकि विस्तार कम होने से वहाँ के सम्राट् भली भाँति प्रबन्ध कर सके।

ऐसे समय में सौभाग्य से ५२७ ई० में जस्टिनियन नाम का बड़ा चतुर और वीर सम्राट् गद्दी पर बैठा जो ५६५ ई० तक रहा। यह सेनापति भी बड़ा भारी था और उसे उसीके योग्य एक दूसरा सेनापति बेलिसेरियस मिल गया। इसीके कारण जस्टिनियन का नाम संसार के बड़े २ विजेताओं में गिना जाता है। उसने शीघ्र ही साम्राज्य के चारो ओर के भागों को अपने राज्य में मिलाना आरम्भ कर दिया। पहले वण्डालों से अफ्रिका छीना गया, फिर इटली को भी गोथों से छीन लिया गया और फिर पश्चिमी गोथों से स्पेन का कुछ भाग भी जीता।

विजय से भी महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि उसने रोम के

प्रचलित कानून को संगृहीत करके प्रकाशित कर दिया। उससे भी उसकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ी। यह कार्य बड़े महत्व का था।

जस्टिनियन ने इमारतें बनाने में बड़ा नाम किया। सम्राट् कान्स्टेन्टाइन के बनवाये हुए सेन्ट सोफिया नामक प्रसिद्ध गिर्जे को—जिसे विद्रोहियों ने जला कर नष्ट कर दिया था—उसने फिर बनवा कर उसे और भी सुन्दर कर दिया। उसकी आन्तरिक कारीगरी ईसाई निपुणता का परिचय देती है और आज तक बड़ी सुन्दर समझी जाती है। इसके अतिरिक्त उसने रेवेना स्थान पर भी कई गिर्जे तथा अन्य इमारतें बनवाईं।

अनेक झगड़ों में फँसे रहने पर भी उसे कई अच्छे कार्य करने का अवसर मिल गया। अब तक यूरोप में रेशम प्रायः चीन से ही भेजा जाता था जहाँ यह व्यापार बहुत प्राचीन समय से चल रहा था। यह यूरोप में बड़ी ऊँची दृष्टि से देखा जाता था। शौकीन और बड़े लोग ही रेशमी कपड़े पहनते थे।

जास्टिनियन ने रेशम के कीड़े मँगवाने के लिये दो फारसी साधुओं को चीन भेजा। किन्तु चीनी लोग अपने इस उद्योग का रक्षण बड़ी सावधानी से करते थे और रेशम के कीड़ों को देश से बाहर न जाने देते थे। किन्तु ये फारसी साधु कुछ अन्डों को छिपा कर कुस्तुन्तुनिया ले गये। सम्राट् ने बड़ी सावधानी से उनकी रक्षा की और शीघ्र ही वृद्धि की। यहाँ तक कि रेशम वहाँ तैयार होने लगा और आजकल यह भी वहाँ के प्रधान उद्योगों में से है।

परन्तु उत्तर अफ्रिका का तथा इटली जीत कर ही जास्टि-नियन का भाग्य-सूर्य अस्ताचल की ओर जाने लगा। आर्थिक

कठिनाइयाँ उपस्थित हो गयीं क्योंकि उसने इमारतों में बहुत रुपया लगा कर कोष खाली कर दिया था। दूसरी ओर इटली की दशा और भी बिगड़ गयी। वहाँ वालों ने गोथों के राज्य से घृणा के कारण इन नये आक्रमणकारियों का जो कम से कम नाम में 'रोमन' कहलाते थे, स्वागत किया था। परन्तु युद्ध के साथ वहाँ पर अकाल और प्लेग भी फैल गया और थियोडोरिक के राज्य की समृद्धि नष्ट हो गयी। अब उन्होंने समझा कि ऐसे 'रोमनों' के शासन से तो गोथों का राज्य सौगुना अच्छा था। अब उन्हें ज्ञात हुआ कि उन पर कर आदि का पहले से बहुत अधिक भार है। इस सार्वजनिक असन्तोष ने गोथों को अपनी गयी हुई शक्ति फिर प्राप्त करने का अवसर दिया। टोटिला नाम का एक वीर नेता भी उन्हें मिल गया, जो सच्चा और धर्मात्मा ईसाई, न्यायी तथा बड़ा दयावान था। जो एलरिक एटिला की श्रेणी में ही वीरता के हिसाब से समझा जाता है। उसके नेतृत्व में गोथ सेनायें फिर इटली में फैल गयीं। बेलिसेरियस—जो थोड़ी सी सेना के साथ शत्रुओं की बड़ी २ सेनाओं को हराने में ख्याति प्राप्त कर चुका था—फिर इटली भेजा गया। उसने अपने नाम के अनुसार ही थोड़ी सी सेना लेकर फिर रोम पर अधिकार कर लिया परन्तु जास्टिनियन उससे किसी कारण से अप्रसन्न हो गया था। अतः ५३८ ई० में वह वापस बुला लिया गया और रोम में फिर टोटिला का अधिकार हो गया। उसने धीरे २ रेवेना को छोड़ कर फिर सब इटली को दबा लिया। सम्राट् भी वहाँ से अधिकार एकदम छोड़नेवाला न था। अतः ५५२ ई० में नार्सस नाम के एक वृद्ध अफसर के अधीन दूसरी

सेना भेजी। वह रोम होता हुआ आगे बढ़ा और एपेनाइन श्रेणी के पार टोटिला की सेना से जा भिड़ा। फिर भारी युद्ध हुआ। गाथ हार गये। टोटिला के भारी घाव लगे जिनके कारण वह कुछ दिनों में मर गया। निराश गाथ लोग फिर भी अनेक बार लड़े परन्तु विजय प्राप्त न कर सके। अतः थक कर और पूर्ण निराश होकर दूसरे वर्ष उन्होंने सम्राट् से इटली छोड़ने की आज्ञा माँगी। सम्राट् ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। तीन सौ वर्ष पहले वे जिस भाँति रोम साम्राज्य में घुसे थे उसी भाँति अनेक झुंड बना कर इटली को सदा के लिये प्रणाम करके आल्प्स के पार हो गये। फिर इधर उधर जाकर वे भी वण्डालों की भाँति ऐसे विलीन हो गये कि उनका कुछ पता न चला। शायद वे पश्चिमी गोथों में मिल गये।

परन्तु नार्सेस की विजय और पूर्वी गाथों के लोप के बाद भी इटली में शान्ति तथा समृद्धि की स्थापना न हुई। जब तक सम्राट् की सेना वहाँ रही तब तक उसके व्यय के लिये वहाँ के लोगों को कर अधिक देना पड़ा और जब सेना हटा ली गयी तो इटली को अरक्षित देख कर लम्बार्ड जाति ने वहाँ पर अधिकार कर लिया। ये जर्मन जाति के लोग थे और बड़े संकट झेलते २ इटली के उत्तर में बस गये थे। नार्सेस की सेनाओं के साथ ये लोग भी गाथों से लड़े थे। जब सम्राट् की सेनाएँ इटली से हट गयीं तो इन्होंने दल बल सहित आकर वहाँ अपना अधिकार कर लिया। ये शीघ्र ही वहाँ सबसे प्रधान शक्तिमान हो गये। हम देख चुके हैं कि इनमें दृढ़ संगठन न था। अतः इनके भिन्न २ झुण्ड अपने २ सरदारों की अधीनता में समस्त इटली में फैल

गये। फिर भी रेवेना, सिसली, कार्सिका, सार्डिनिया तथा इटली के कुछ अन्य स्थान पूर्वी रोमन सम्राट् के ही अधीन रहे। लम्बार्डों का प्रधान केन्द्र उत्तर इटली रहा और यहीं पेविया नामक एक स्थान को उन्होंने अपनी राजधानी बनाया। टस्कनी, मध्य-इटली, ट्रेन्ट, वेनीवेराटो आदि के सरदार नाम मात्र को पेविया के राजा के अधीन थे परन्तु वास्तव में स्वतंत्र थे। पहले इनका भी मत भिन्न था परन्तु ये धीरे २ कट्टर पन्थी कैथोलिक हो गये। इटली के मनुष्य पहले उन्हें गोथों से भी अधिक घृणा की दृष्टि से देखते थे परन्तु धर्म में समानता हो जाने के कारण दोनों में विवाहादि होने लगे और कुछ काल में इटली के लोग इन्हीं में मिल गये। गोथों ने इटली में अपना कोई चिन्ह भी न छोड़ा, परन्तु लम्बार्डों ने उत्तर इटली में अपने नाम की छाप लगा दी।

इकतीसवाँ अध्याय

ईसाई धर्म की वृद्धि

ईसामसीह का बलिदान व्यर्थ न हुआ। उनके जीवनकाल में ही उनके अनेक अनुयायी हो गये थे जिनमें बारह शिष्य प्रधान थे। इन लोगों ने अपने धर्म-गुरु के स्वर्गारोहण के बाद इधर उधर जाकर अपने नये मत का प्रचार किया और कई स्थानों पर गिर्जे भी बना लिये। ऐसा एक गिर्जा रोम में तथा एक कुस्तुन्तु-

निया में भी बना। रोम का प्राचीन धर्म धीरे २ खोखला होता जाता था। विचारशील लोगों की उसमें श्रद्धा घटती जाती थी। उन्हें अनेक स्थानीय धर्मों के स्थान पर अब किसी एक धर्म की आवश्यकता थी। ईसाई धर्म में उन्हें बहुत सी बातें अच्छी लगीं। अतः रोम में तथा अन्य अनेक स्थानों में भी बहुत से लोग ईसाई होने लगे। पहले नव ईसाइयों के साथ बड़ा कड़ा व्यवहार किया गया। रोम में ईसाई घृणा की दृष्टि से देखे जाते थे और लोग उन्हें केवल ईसाई होने के कारण ही मृत्यु-दण्ड के योग्य समझते थे तथा उन्हें तंग भी बहुत करते थे। परन्तु धीरे २ अवस्था बदल चली। उनकी संख्या बढ़ती गयी क्योंकि उनमें संगठन और समानता के भाव बहुत अधिक थे। संगठन के साथ ही उनकी शक्ति भी बढ़ती गयी। रोम के कई सम्राटों ने इस धर्म को नष्ट करने का प्रयत्न किया, परन्तु उसका नाश न हुआ और कुछ दिन में अपनी शक्ति बढ़ाने की इच्छा से सम्राट् कान्स्टेन्टाइन ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। उसने अपनी राजधानी कुस्तुन्तुनिया में बदल दी थी। अतः ईसाई हो जाने के कारण वह कुस्तुन्तुनिया के गिर्जे का प्रधान हो गया।

सम्राट् जस्टिनियन की मृत्यु के बाद एक शताब्दी भी न बीती थी कि अरबों ने अपनी अपूर्व विजय आरम्भ कर दी, जिससे पूर्वी यूरोप का नक्शा बदल गया।

अरबों की विजय का एक परिणाम यह भी हुआ कि जिन प्रान्तों में यूनानी तत्त्व थोड़ा था वे पूर्वी साम्राज्य से अलग हो गये और इस भाँति साम्राज्य में एक ही तत्व यूनानी प्रधान रह गया। रोमन तत्व उससे अलग हो गया। परिणाम-स्वरूप पूर्वी

साम्राज्य आचार, विचार आदि प्रत्येक बात में यूनानी हो गया। अतः इस समय से पूर्वी साम्राज्य को 'रोमन' साम्राज्य कहने के स्थान पर कुछ लोग उसे 'यूनानी साम्राज्य' अथवा 'बैजन्टायम साम्राज्य' कहते हैं।

इस साम्राज्य ने यूरोपीय सभ्यता की बहुत सेवा की है। वह एशियाई लोगों के आक्रमणों से लगभग एक सहस्र वर्ष तक यूरोप को बचाता रहा। उसने प्राचीन सभ्यता के अमूल्य रत्नों को संरक्षित रखा और पश्चिम के नये राष्ट्रों को कानून, शासन प्रबन्ध, साहित्य, चित्रकला, शिल्प तथा उद्योग आदि अनेक उपयोगी बातें सिखाता रहा। यदि रोम के पतन के साथ ही पूर्वी साम्राज्य भी बर्बरों के हाथ से नष्ट हो जाता तो यूरोपी सभ्यता को भारी धक्का पहुँचता। पूर्वी साम्राज्य ने उसे नष्ट होने से बचा लिया। उसने ही पूर्वी यूरोप की स्लाव जातियों को सभ्यता तथा धर्म की शिक्षा दी।

अन्त में इसी साम्राज्य ने 'साम्राज्य' का नाम और आदर्श स्थापित रखा जिससे कुछ काल बाद शार्लमैन ने फिर 'पश्चिमी रोमन साम्राज्य' स्थापित किया।

चौथी शताब्दी में ईसाइयों में भी मतभेद हो गया। ईसा की प्रकृति के विषय में विवाद खड़े हुए जिसका प्रधान केन्द्र पूर्वी साम्राज्य था। वहाँ पर ईसाई धर्म का बहुत प्रचार हो गया था और चौथी शताब्दी में तो गली २ दूकान २ पर धर्म की ही चर्चा सुनायी देती थी। कुँजड़े, नाई, चमार आदि अपने ग्राहकों से अपने धन्धे तथा पेशे की बातों के स्थान पर धार्मिक बातों पर बहुत बहस करते थे। कुछ लोग कहते कि ईसा परमात्मा नहीं

था, हाँ वह मनुष्यों में श्रेष्ठ अवश्य था। दूसरा कट्टर दल कहता था कि ईसा परमात्मा के ही तत्व से बना था। वह परमात्मा का पुत्र था—स्वयं परमात्मा था, बल्कि परमात्मा का भी परमात्मा और प्रकाश का भी प्रकाश था। इन कट्टर पन्थियों में प्रधान मनुष्य आर्टियस था। अतः यह धर्म भी आरियन कहा जाने लगा। दूसरे दल वाले इनसे पूछते कि यदि ईसा परमात्मा था तो वह मनुष्य कैसे था? क्या उसकी प्रकृति ईश्वरीय और मानवीय दो प्रकार की थी? इन दोनों में क्या सम्बन्ध था? इसी भाँति के अनेक प्रश्नों पर बहस हुआ करती थी। गिर्जों अथवा पुजारियों में ही नहीं बल्कि कचहरियों, गलियों, बाजारों तथा रास्तों में भी ये ही विवाद हुआ करते थे। बड़े २ विद्वानों का ध्यान भी इधर लग गया। ये विवाद कुछ काल में इतने बढ़े कि दोनों दलों के लोग आपस में लड़ाइयाँ करके कट मरने लगे। एक दल के लोग दूसरे दल के लोगों को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते थे और उन्हें अपना कट्टर शत्रु समझते थे। निदान इसी भाँति सहस्रों मनुष्यों के बलिदान के बाद धीरे २ यह धार्मिक कलहाग्नि शान्त हुई। पूर्व के लोग विशेषतया आरियन मत को ही मानते रहे। अतः रोम का प्रभाव वहाँ से हट गया।

इसी समय अनेक बर्बर जातियाँ साम्राज्य पर आक्रमण कर निकली थीं। ईसाई पादरियों के उपदेशों का उन पर भी प्रभाव पड़ा और सब से पहले गाथ लोग ईसाई हुए। उनके एक पुजारी यूलफिलास ने बाइबिल का गोथ भाषा में अनुवाद किया और अपने बहुत से जातिवालों को अपना अनुयायी बना लिया। यह धर्म उनमें बढ़ता गया। गोथ तथा वण्डाल पहले आरियन

मत के अनुयायी थे। पश्चिमी यूरोप के फ्रैंक लोगों का नेता क्लो-विस था। उसका विवाह बरगंडी की एक ईसाई स्त्री से हुआ था। जब वह अलमनी नामक एक जाति से लड़ रहा था तो उसे बड़ी कठिनाई पड़ी। इस पर उसने घुटने टेक कर प्रार्थना कि की यदि उसकी विजय हो जाय तो वह ईसाईयों के देवताओं को मानने लगेगा। अकस्मात् ४९६ ई० में उसको एक युद्ध में भारी विजय हुई और वह अपनी शपथ के अनुसार अपने तीन सहस्र अनुयायियों सहित रोम के धर्म का—जो आरियन मत का विरोधी था—ईसाई हो गया।

५९६ ई० में पोप ग्रेगरी महान ने सन्त आगस्टाइन को ४० साथियों सहित इँगलैण्ड भेजा और उन्होंने शीघ्र ही वहाँ अपने मत का प्रचार किया। इस भाँति वहाँ रोम की सभ्यता तथा कला का—जो ४१० ई० में वहाँ से रोम की सेनायें हटा लेने के समय से नष्ट हो गया था—फिर प्रचार हुआ। आयर्लैण्ड में पाँचवीं शताब्दी के मध्य में ही पेट्रिक नामक एक साधु ने ईसाई मत का खूब प्रचार कर दिया था और आयर्लैण्ड वाले इंगलैण्ड और स्काट-लैंड में भी अपने धर्म का प्रचार करने गये। इनके तथा रोम के धर्म में कुछ भेद था जो सन् ६६४ ई० में दूर कर दिया गया। रोम से गये हुए दल ने आयर्लैण्ड के मत को अशुद्ध ठहराया और उसने कहा कि ईसा ने अपने शिष्य पीटर से मरते समय कहा था कि 'स्वर्ग के राज्य की कुंजी, मैं तुम्हे दिये जाता हूँ।" इस पर इंगलैण्ड में प्रान्त नार्थाम्ब्रिया के राजा ने कहा "तब तो भाई, हम यही धर्म मानेंगे, क्योंकि ऐसा न हो कि जब हम स्वर्ग में पहुँचें तो कोई द्वार खोलने वाला न मिले?" इस भाँति

आयर्लैण्ड के धर्म पर रोम के धर्म की श्रेष्ठता घोषित की गयी और उसीके अनुसार सब त्योहार आदि मनाये जाने लगे। शीघ्र ही समस्त द्वीप रोम का शिष्य हो गया और इस भाँति यहाँ धार्मिक एकता स्थापित हो गयी।

जर्मनी की जातियों में ईसाई धर्म का प्रचार सम्राट् शार्लमैन तथा अनेक धर्म-प्रचारकों ने किया और इस भाँति आंगल, सेक्सन, फ्रैंक आदि सब रोम के अनुयायी हो गये।

रूस में ईसाई धर्म का प्रचार ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ। व्लाडीमीर महान् ने अनेक दूत यह निश्चित करने को भेजे कि इस्लाम, यहूदी, आरियन, तथा रोमन धर्मों में से कौन सा सबसे अच्छा है। ये दूत कुस्तुन्तुनिया के सेन्ट सोफिया के उत्सवों को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और वहाँ का आरियन मत ही सबसे अच्छा बताया। व्लाडीमीर ने इस पर रूसियों के देवता की बड़ी काठ की मूर्ति नीस्टर नदी में फिकवा दी और अनेक अनुयायियों को ईसाई बनवाया। इस भाँति रूस की स्लाव जातियों ने आरियन ईसाई धर्म स्वीकृत किया।

ईसाई धर्म-प्रचारकों ने दसवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दी में यूरोप के उत्तर स्कैन्डीनेविया प्रायद्वीप में भी अपने धर्म का प्रचार किया। इस भाँति ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त तक स्पेन तथा फिनलैण्ड आदि कुछ छोटे २ भाग छोड़ कर समस्त यूरोप ईसाई हो गया। बर्बर जातियाँ—जो साम्राज्य को जीतने आई थीं—साम्राज्य के धर्म से विजित हो गयीं।

ईसाई धर्म की इस अंकुठित वृद्धि के दो प्रधान साधन थे—

मठ तथा पोप । अतः अब हम यहाँ दोनों का कुछ हाल लिखेंगे । ईसाई धर्म पर इनका प्रभाव भी बहुत पड़ा ।

मठ अथवा आश्रम-प्रथा का उदय यूरोप में चौथी और पाँचवीं शताब्दियों में हुआ । अनेक स्त्री पुरुषों का यह विचार हुआ कि संसार के झगड़े छोड़ कर आत्मोन्नति के लिये आश्रमों में रहकर पवित्र जीवन बिताना चाहिये । पूर्वी यूरोप में इस प्रथा का बहुत प्रचार हुआ और मिश्र में बौद्ध भिक्षुओं की भाँति आश्रम बनाकर अनेक साधु रहने लगे । इसके अतिरिक्त इटली तथा अन्य स्थानों में भी ऐसे बहुत से सन्यासी हो गये ।

ईसाई धर्म के लोभ तथा व्यभिचार आदि दोषों से दुखी हो कर ही ये लोग अलग हुए थे । अतः इन्होंने ब्रह्मचर्य से रहना, धन सम्पत्ति, आदि छोड़ कर बिल्कुल निर्धन होकर रहना, कन्द मूल तथा सूखी रोटी खाना, और साधारण वस्त्र पहनना, आदि अपने नियम बना लिये। पश्चिमी यूरोप में बर्बरों के डर से भी बहुत लोग आश्रमों में बसने लगे और अनेक स्त्रियाँ भी भिक्षुणी बन कर रहने लगीं ।

इटली के सन्त बेनेडिक्ट (४८०—५४३) ने इनमें बहुत सुधार किया । उसने रोम के पास अपना एक आश्रम स्थापित किया और अपने अनुयायियों के लिये कुछ निश्चित नियम बना दिये जिनमें से कई नियम बड़ी बुद्धिमानी से बनाये गये थे। उसमें प्रविष्ट होनेवालों को ब्रह्मचारी, निर्धन तथा आज्ञापालक रहने की शपथ खानी पड़ती थी । हाथ से खेती का काम करना भी एक नियम था । इसके अतिरिक्त उन्हें गिर्जा, आश्रम आदि की सेवा का काम भी करना पड़ता था और कुछ समय प्रतिदिन स्वाध्याय

के लिये भी देना पड़ता था। बेनेडिक्ट ने इस बात पर भी बहुत ज़ोर दिया कि उसके अनुयायी एकान्त में न रहें। सब लोग साथ २ रहते, काम करते, प्रार्थना करते और पढ़ते थे। उनका कार्य व्यक्तिगत नहीं बल्कि सामूहिक था। धीरे २ इसी आदर्श पर अनेक मठ बन गये जिनकी संख्या लगभग चालीस हज़ार के कूती गयी है। प्रत्येक मठ अपना कार्य स्वयं करता था और पोप के अतिरिक्त किसी का प्रभुत्व न मानता था। उनमें रोमन, बर्बर, स्वतंत्र अथवा दासों में भेद न था। इस भाँति बेनेडिक्ट ने इन मठों का संगठन स्थापित करके आगे के इतिहास में उन्हें भी एक शक्ति बना दिया। चौबीस पोप इन्हीं आश्रमों में से चुने गये।

तत्कालीन समाज और सभ्यता पर मठों का बहुत प्रभाव पड़ा। प्रत्येक साधु को हल चलाना आवश्यक था। इस भाँति बहुत से भूमि-भाग जिन्हें राजाओं और सरदारों ने मठों को दान दिया था—ऊजड़ से बदल कर उपजाऊ खेत कर दिये गये।

अनेक लोग इधर उधर धर्मोपदेश करने निकल गये जिससे ईसाई मत की बहुत वृद्धि हुई। सदाचार, साहित्य आदि भी आश्रमों में ही जीवित रहा, जब कि शेष यूरोप में उनका ह्रास हो रहा था और यहीं से रिनासँस के समय में शिक्षा और ज्ञान का प्रकाश समस्त यूरोप में फैला। उन्होंने पोप के अधिकार को स्थापित रखा और उसे धर्म में प्रधान रखा। अतः प्रत्येक मठ ने पोप की रक्षा के लिये एक दुर्ग का काम किया।

बहुत से सन्यासी प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों की प्रतिलिपियाँ उतारते रहे और बहुत से सामयिक घटनाओं का हाल लिखते रहे जिससे तत्कालीन इतिहाससंग्रह में बहुत सहायता

मिलती है। इन मठों ने दीन हीन निराश्रितों की बहुत सेवा की। ऐसे मनुष्यों को सदा ही आश्रमों में आश्रय मिलता था। बीमारों की सेवा की जाती थी तथा भूखों को अन्न दिया जाता था। आश्रम की एक स्त्री ने ही पहले पहल रोम में एक सार्वजनिक अस्पताल खोला।

ईसाई धर्म के प्रचार का दूसरा प्रधान साधन पोप का पद था। हम देख चुके हैं कि रोम के पतन के बहुत दिन पहले ही वहाँ एक धार्मिक रियासत स्थापित हो गयी थी जिसे नीरो, जूलियन आदि सम्राटों ने दबाने का प्रयत्न किया था। धार्मिक अधिकारियों के भी कई विभाग थे—यथा डीकन, पादरी, बिशप आदि। बिशप बड़े अधिकारी थे। उनके भी चार विभाग थे—ग्राम-बिशप, नगर-बिशप, प्रान्त-बिशप (अथवा आर्कबिशप) और सबसे बड़े पेट्रियार्क। चतुर्थ शताब्दी के अन्त में ऐसे पाँच पेट्रियार्क-रोम, कुस्तुन्तुनिया, अलक्जेंड्रिया, अन्ट्योक और जरूसलेम में—रहते थे परन्तु इनमें रोम के पेट्रियार्क अथवा बिशप सब से प्रधान गिने जाते थे।

रोम की प्रधानता का मुख्य कारण यह था कि सब लोग यह मानते थे कि ईसा ने अपने शिष्यों में से पीटर को सब से श्रेष्ठ माना और उसी के हाथ में स्वर्ग की कुंजी सौंप दी। ईसा के मरने पर पीटर रोम गया और वहाँ उसने एक गिर्जा स्थापित किया जिसका वह स्वयं पच्चीस वर्ष तक महन्त रहा और अन्त में ६७ ई० में धर्म के लिये उसे नीरो के हाथ प्राण देने पड़े। इस भाँति पीटर द्वारा स्थापित होने के कारण रोम का गिर्जा सर्वश्रेष्ठ समझा जाता था।

दूसरे कई शताब्दियों तक रोम साम्राज्य प्रायः आधे यूरोप पर शासन करता रहा। अतः जब कान्स्टेन्टाइन और डायोक्लेशियन ने रोम से अपनी राजधानी हटा ली तो वहाँ प्रधान अधिकारी बिशप ही रह गया। रोम समस्त यूरोप पर अबतक राजनैतिक शासन करता रहा था, अब उसने धार्मिक शासन आरम्भ कर दिया। रोम के बिशपों का प्रभाव बहुत बढ़ गया और सब यूरोप उनका आश्रित हो गया।

पश्चिमी साम्राज्य के पतन होने पर सम्राट् का स्थान रोम के बिशपों को ही (जो उस समय पोप कहलाते थे) मिल गया। बर्बर जातियों और इटली निवासियों में झगड़े होने पर उनका न्याय वही करते थे। कई बार बर्बरों के आक्रमणों के समय—यथा आटिला हूण तथा वण्डालों के समय पोपलियों ने—रोम में कत्ल होने से बचा लिया और बर्बरों ने भी ईसाई होने के कारण पोप की आज्ञाओं को माना। इस भाँति उनका प्रभाव बढ़ गया। फिर स्थान २ घूम कर धर्मोपदेश करनेवाले पादरियों और साधुओं ने भी पोप की प्रतिष्ठा और शक्ति बनाये रखने में बहुत सहायता दी। दूर २ से मनुष्य रोम की यात्रा करने आने लगे और गिर्जे में यथाशक्ति भेंट चढ़ाने लगे।

सातवीं शताब्दी में ईसाई धर्म पर एक बड़ी आपत्ति आयी परन्तु इससे रोम का प्रभाव और बढ़ गया। मुसलमानों ने बढ़ कर जरूसलेम, अण्टयोक तथा अलेक्जांड्रिया पर अधिकार कर लिया। इस भाँति रोम के तीन प्रतिद्वन्द्वी स्थान नष्ट हो गये, केवल एक कुस्तुन्तुनिया" रह गया।

आठवीं शताब्दी में कुस्तुन्तुनिया के यूनानी गिर्जे और रोम के लैटिन गिर्जे में मूर्ति-पूजा पर विवाद चला।

अब तक इन दोनों गिर्जाओं में महन्तों, साधुओं तथा धर्म पर बलिदान होने वाले वीरों के अनेक चित्र तथा मूर्तियाँ जमा हो गयी थीं, जिन्हें साधारण लोग बड़े आदर तथा भय से देखते थे। परन्तु पूर्व में मुसलमानों के आक्रमणों से गिर्जे नष्ट भ्रष्ट हो जाने के कारण वहाँ के ईसाई मूर्ति-पूजा के विरोधी हो गये। वे कहने लगे कि हम तो सच्चे ईश्वर की उपासना छोड़ कर मूर्ति-पूजा में फँस गये। इसी कारण ईश्वरीय कोप से यह विपत्ति आयी। *अतः हमें मूर्ति-पूजा बिलकुल बन्द कर देना चाहिये।*

आठवीं शताब्दी के आरम्भ में कुस्तुन्तुनिया में लियो सम्राट् हुआ। वह भी बड़ा मूर्ति-खण्डक था। उसने अपने गिर्जों की सब मूर्तियाँ नष्ट करके रोम को भी यही आज्ञा दी। रोम के पोप ने इसका जोर से विरोध किया और सम्राट् को धर्म से बहिष्कृत कर दिया। इस भाँति इन दोनों में बैर बढ़ता गया और ग्यारहवीं शताब्दी में दोनों अलग हो गये।

इस समय से कुस्तुन्तुनिया का गिर्जा 'ग्रीक चर्च' (यूनानी गिर्जा) अथवा 'कट्टर पूर्वी गिर्जा' कहलाने लगा और पश्चिम का गिर्जा 'रोमन कैथोलिक' कहलाया।

इस भाँति सब बर्बरों के ईसाई हो जाने तथा पश्चिमी यूरोप में रोम के बिशप (जो ग्रेगरी महान् ५९०–६०४ के समय से पोप कहे जाने लगे थे) के प्रभाव का परिणाम क्या हुआ? उत्तर के लोगों में रोम की सभ्यता और कला का प्रचार हुआ तथा इटली, स्पेन और गॉल में लैटिन और ट्यूटोन जातियों का सम्मि-

अग्र होने लगा। उनके आचार, विचार, कानून, भाषा, रक्त आदि के मिश्रण से नई जातियाँ नयी भाषाओं तथा नई संस्थाओं की उत्पत्ति हुई। बर्बर लोग लैटिन जातियों में मिल गये, परन्तु मिल-कर उनकी अनेक बातों में अपने प्रभाव से परिवर्तन कर दिया।

लगभग पांच सौ वर्ष तक रोम के प्रभाव में रहने के कारण स्पेन और फ्रांस के बर्बर ६ वीं शताब्दी के अन्त समय तक अपनी प्राचीन भाषाएँ भी भूल गये और अपभ्रंश तथा अशुद्ध लैटिन बोलने लगे। यही हाल फ्रांक, लम्बार्ड, गोथ और बरगंडी आदि के लोगों का हुआ। यूनान और रोम का साहित्य पूर्ण अन्ध-कार में पड़ा था। अतः शब्दों का स्थायी रूप प्रचलित न रहा। प्रान्त २ के अशिक्षित दीन लोगों ने उन्हें अपनी सुविधा के अनुसार तोड़ मरोड़ लिया और दसवीं शताब्दी के आरम्भ में ही लैटिन भाषा का लोप हो गया तथा उसके स्थान पर फ्रेंच, स्पेनिश, इटालीय आदि भाषायें बोली जाने लगीं। इन भिन्न २ भाषाओं के कारण यूनानी और लैटिन भाषाओं के ग्रन्थ जिनमें उन लोगों का ज्ञान, विज्ञान, वेदान्त आदि बँधा पड़ा था—कुछ विद्वानों को छोड़कर—शेष सब की समझ के बाहर हो गया। इसी कारण पाँचवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक का समय 'अन्धकारमय-काल' कहलाता है। अधिकांश लोग तो लिखना भी भूल गये थे। सम्राट् शार्लमैन महान को अपना नाम तक लिखना न आता था।

बर्बरों को यह भी नहीं मालूम था कि न्याय में सबको समान समझना चाहिये। उनके यहाँ दण्ड अपराध के हिसाब से नहीं, बल्कि अपराधी की पदवी तथा श्रेणी को देखकर निश्चित किया जाता था। एक अपराध के लिये दास तथा सर्फों को कड़ा दण्ड

और प्रायः मृत्यु दण्ड तक दिया जाता था परन्तु एक स्वतंत्र नागरिक उससे भी गुरुतर अपराध—दूसरे की हत्या करके भी—जुर्माना देकर बच सकता था।

ट्यूटोन जातियों में किसी को अपराधी अथवा निरपराधी ठहराने के लिये अग्नि-परीक्षा, जल-परीक्षा आदि प्रचलित थीं। पहली के अनुसार अपराधी को लोहे के खूब तपे हुए छड़ अपने हाथ में लेने पड़ते थे अथवा नंगे पैर से तपे हुए तवों की पंक्ति पर चलना पड़ता था। यदि उसके घाव न होता अथवा होकर कुछ नियत समय में भर जाता तो वह निरपराध समझा जाता था। जल-चिकित्सा भी दो भाँति की थी। अपराधी को खौलते हुए पानी में हाथ डालना पड़ता था अथवा उसे किसी नदी या तालाब में डाल दिया जाता था। इसमें विचार यह था कि यदि वह निरपराध होगा तो जल उसका स्वागत करेगा और यदि वह अपराधी होगा तो उसे जल अपने पास न रख कर बाहर निकाल देगा। इस भाँति दोनों ओर से बेचारे मनुष्य की आफत थी, क्योंकि यदि वह तैरकर बाहर आता तो अपराधी समझा जाता था और यदि वह डूब जाता तो अपराध समझा जाता था।

इसके अतिरिक्त द्वन्द्व युद्ध करके भी सच्चाई अथवा झूठ का निर्णय कर लिया जाता था। जो विजयी हो वही सच्चा समझा जाता था। न्यायाधीश प्रायः ऐसे युद्धों को स्वयं देखने आते थे। यह नियम था कि यदि कोई चाहे तो अपना कार्य किसी किराये के मनुष्य अथवा मित्र से करा सकता है। कभी कभी स्त्रियाँ भी पुरुषों से लड़ती थीं। ऐसी दशा में पुरुष को एक गड्ढे में खड़ा

कर दिया जाता था और उसका एक हाथ पीठ से बाँध दिया जाता था।

परन्तु रोम के उन्नत कानूनों के आगे बर्बरों का कानून तथा न्याय बहुत समय तक न टिक सका। ग्यारहवीं शताब्दी में ही रोमनों को कानून पढ़ने की प्रवृत्ति हुई और जब ट्यूटोन लोगों ने उसे बड़ा उन्नत और पूर्ण पाया तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

बत्तीसवाँ अध्याय

इस्लाम धर्म की उन्नति

हम देख चुके हैं कि बर्बर जातियों ने उत्तर से आकर पश्चिमी रोमन साम्राज्य के अनेक भाग छीन कर धीरे २ उन्हें नष्ट कर दिया। अब हम देखेंगे कि एक दूसरी भयंकर बर्बर जाति ने दक्षिण से आकर पूर्वी रोमन साम्राज्य के बहुत से भाग छीन कर अन्त में उसे नष्ट भी कर दिया।

यह जाति एक नये धर्म का जोश और उत्साह लेकर ऐसे स्थान से आयी, जिससे उस समय के यूरोपीय लोग बहुत कम परिचित थे। अरबी लोग अपने मरुस्थलों में स्वतन्त्रतापूर्वक निवास करते थे। अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियों की पूजा करते थे। मक्का उनका प्रधान तीर्थ था और वे वहाँ के काबा नाम के एक काले पत्थर को बड़े आदर से देखते थे और यह मानते

थे कि उसे एक देवता ने हज़रत इब्राहीम को दिया था। तीसरी-चौथी शताब्दी में रोमनों से सताए जाने के कारण फिलिस्तीन से बहुत से यहूदी भी आकर अरब में बस गये। रोमनों ने हाल ही में ईसाई होकर भिन्न धर्म वाले होने के कारण ही यहूदियों को तंग करना आरम्भ कर दिया था। इस भाँति अरबवालों को यहूदी और ईसाई दो और धर्मों की अनेक बातें मालूम हो गयीं। एक ईश्वर का विचार भी इन्हीं से लिया गया।

सातवीं शताब्दी के आरम्भ में यहाँ बड़ी धार्मिक अशान्ति थी। बहुत से लोग मूर्ति-पूजा से असन्तुष्ट हो गये थे और किसी ऊँचे धर्म की खोज में थे। ऐसे ही समय में वहाँ हज़रत मुहम्मद का मक्का में ५७० ई० में जन्म हुआ। उनके घराने का नाम कुरेश था और काबा पत्थर के वे ही संरक्षक थे। वहाँ के दो प्रसिद्ध धार्मिक उपदेशक मूसा और दाऊद के समान मुहम्मद ने भी पहले कुछ दिन भेड़ बकरियाँ चरायीं, फिर ऊँट हाँकने लगे और व्यापार करने लगे। उनका चित्त भी आरम्भ से धार्मिक बातों की ओर बहुत जाता था और उन्हें अनेक सन्देह उठा करते थे। पच्चीस वर्ष की आयु में उन्होंने एक विधवा से विवाह किया और इसके कुछ दिन बाद ही अपने उपदेशों को आरंभ कर दिया। उन्होंने कहा कि मुझे जिब्राईल नाम के एक देवदूत ने आकर सच्चा धर्म बता दिया है। अतः सब अरबवासियों को मेरी बात माननी चाहिये। उनकी शिक्षा का तत्व यह था कि ईश्वर एक है और उसके तीन बड़े प्रतिनिधि हुए हैं। मूसा, ईसा और वह स्वयं। उन्होंने दास-प्रथा की निन्दा की और कुछ बन्धनों के साथ बहुविवाह स्वीकार कर लिया। वे अपने उपदेश इधर उधर सुनाते

फिरे, परन्तु उन्हें बड़ी कठिनाई पड़ी। तीन वर्ष के लगातार श्रम के बाद उनके केवल चालीस शिष्य हुए। ६२२ ई० में उन्हीं के वंश के कुछ लोग प्रचलित धर्म के विरुद्ध ऐसे उपदेश सुन कर बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने मुहम्मद और उनके अनुयायियों को पकड़ कर दण्ड देना चाहा। इससे डर कर मुहम्मद उसी वर्ष पास के एक मदीना ग्राम में भाग गये। यह भागना जिसको अरबी में 'हिजरत' कहते हैं, एक नये मुसलमानी वर्ष का आरम्भ हुआ। हिजरी सन का पहला वर्ष यही है।

मदीना के लोगों ने उनके उपदेशों से ध्यान को सुना और माना। इससे उत्साहित होकर मुहम्मद साहब ने कहा कि इस धर्म का प्रचार करना ही चाहिये और प्रचार में बल से भी सहायता लेनी चाहिये। अपने शिष्यों को इकट्ठा कर उनसे धर्म पर दृढ़ रहने और आज्ञा मानने की शपथ ली और दूसरे वर्ष से ही कारवानों पर आक्रमण करके उन्हें लूटना आरम्भ कर दिया। अब चारों ओर से बहुत से मनुष्य आकर उनके अधीन होने लगे और पवित्र युद्ध आरम्भ हो गया। उन्हें विश्वास दिलाया गया कि जो मनुष्य सच्चे धर्म की रक्षा तथा उसके प्रचार करते हुए मरते हैं वे सीधे स्वर्ग को पहुँचते हैं। इस विश्वास से उन्हें प्रचार के लिये बड़ा जोश आ गया और वे मृत्यु की कुछ भी चिन्ता न करने लगे। इस भाँति शस्त्र-बल से प्रचार बड़ी शीघ्रता से हुआ। ६३० ई० में वे विजयी होकर मक्का में प्रविष्ट हुए और बहुत से अरबों ने भी उनका धर्म स्वीकार कर लिया।

मुहम्मद साहब के उपदेश कुरान में संग्रहीत हैं। कट्टर मुसलमान मानते हैं कि ये उपदेश अनन्त काल से स्वर्ग में लिखे

हुए थे। समय २ पर ये उपदेश, मुहम्मद साहब ने यह कह कर कि मुझे स्वप्न में मालूम हुए हैं, अपने शिष्यों को सुनाए। बड़ी ओजस्वी भाषा में उन्होंने जन्नत (स्वर्ग) के सुखों और दोजख़ (नर्क) के कष्टों का वर्णन किया और लोगों को उन पर पूर्ण विश्वास हो गया। ये उपदेश खजूर आदि के पत्तों पर लिखे जाते रहे। ६३२ ई० में मुहम्मद साहब के मरने के कुछ दिन बाद संग्रहीत करके क्रमबद्ध कर दिये गये। इस भाँति कुरान का उद्भव हुआ। इसका प्रधान उपदेश यही है 'अल्लाह' के सिवा और कोई ईश्वर नहीं है और मुहम्मद उसके सबसे बड़े दूत (प्रोफेट) हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक मनुष्य के चार और मुख्य कर्त्तव्य बताये गये हैं—प्रतिदिन पाँच बार मक्का की ओर मुँह करके प्रार्थना करना, भिक्षा देना, रमजान के महीने में व्रत रखना अर्थात् सूर्य के प्रकाश में भोजन न करना और यदि शक्ति हो तो मक्का की यात्रा अवश्य करना। इन उपदेशों के अनुसार आचरण करने वालों को कुरान स्वर्ग दिलाने का वचन देता है—जहाँ अनेक फल फूल हैं, सुन्दर मृगाक्षी परियाँ हैं और प्रत्येक भाँति के ऐंद्रिक सुख हैं। अविश्वासियों के लिये नर्क खुला है, जहाँ अग्नि की लपटें, राक्षस आदि अनेक कष्ट हैं। कुरान के अतिरिक्त सुन्ना नामक एक पवित्र ग्रंथ और है जिसमें मुहम्मद साहब के उन वाक्यों का जो कुरान में नहीं आये, उनके आचरणों और निर्णयों का वर्णन है। कट्टर मुसलमान इसे भी कुरान के समान सच्चा और विश्वसनीय मानते हैं। यह उनकी मृत्यु के बाद दूसरी शताब्दी में लिखा गया।

इन उपदेशों से अरब की जातियों में बिजली सी दौड़ गयी।

वे अपने भेदभाव छोड़ कर एक हो गये और संगठित होकर इतने बलवान हुए कि एक शताब्दी तक पूर्ण अजेय रहे। कुछ दिनों में समस्त यूरोप में इन सैरेसिन अथवा 'मरुभूमि के पुत्रों' का आतंक छा गया। शस्त्र-बल से धर्म-प्रचार करने का उपदेश स्वयं मुहम्मद साहब के शब्दों में पाया जाता है। परन्तु ऐसा करने का अवसर न मिला, यह काम उनके उत्तराधिकारियों ने किया।

मुहम्मद साहब के बाद उनकी गद्दी पर जो लोग बैठे वे खलीफ़ा कहलाए। पहले खलीफ़ा उनके श्वसुर अबू बकर (६३२–३४) हुए तथा उनके बाद उमर (६३४–४४), उसमान (६४४–५५) और अली (६५५–६६१) भी उसी वंश में हुए और इन सब की विद्रोहियों के हाथ से हत्या हुई। इन खलीफाओं ने शस्त्र द्वारा इस्लाम धर्म का खूब प्रचार किया।

इस समय पूर्वी रोमन साम्राज्य में धार्मिक विवाद चल रहे थे। खलीफ़ा उमर ने उन पर बड़े जोर से आक्रमण कर दिया और बहुत लोगों ने जो ईसा की पूर्णता में विश्वास नहीं रखते थे इस नये धर्म को स्वीकार कर लिया। सम्राट् हेराक्लियस के बहुत प्रयत्न करने पर भी सीरिया (शाम) उसके हाथ से निकल गया (६३४) और तीन वर्ष बाद इन्होंने जरूसलेम और फारस पर भी अधिकार कर लिया। ६४० में मिश्र तथा उत्तरी अफ्रिका भी पूर्वी सम्राट् से छीन लिये गये। इस भाँति हेराक्लियस ने मृत्यु से पहले ही इस अजीब नयी शक्ति के सामने अपनी विजय के सब फलों को नष्ट होते देख लिया था। रेती के कारण शायद ये लोग मिश्र से आगे न बढ़े।

फारस-विजय के कारण वहाँ जरदुश्त का धर्म नष्ट हो गया और बहुत से मनुष्य भाग कर भारत में आ बसे। सीरिया-विजय से ईसाई धर्म की जन्म-भूमि ईसाइयों के हाथ से निकल गयी। मिश्र विजय से वहाँ यूरोपीय सभ्यता का प्रचार रुक गया।

इस भाँति मुहम्मद साहब की मृत्यु के बाद पचास वर्ष के भीतर ही उनके उत्तराधिकारियों ने अपना अधिकार और धर्म एशिया के पश्चिमी भाग तथा यूरोप और अफ्रिका के भी कुछ भागों में जमा लिया। कुस्तुन्तुनिया लेने का भी एक बार प्रयत्न किया गया, परन्तु वहाँ की दृढ़ दीवालों और बलगेरियनों की सहायता के कारण मुसलमानों का प्रयत्न निष्फल गया और यूरोपीय सभ्यता कुछ काल के लिये बच गयी।

यद्यपि वे पूर्व यूरोप में प्रवेश करने में असफल हुए परन्तु ७११ ई० में तरीक के नेतृत्व में उन्होंने स्पेन पर आक्रमण कर दिया। पश्चिमी गोथों का राजा रोडरिक हार गया और प्रायः सब स्पेन अरबों के हाथ आ गया।

शीघ्र ही अरब, शाम, उत्तर अफ्रिका आदि से अनेक मनुष्य वहाँ आकर बसने लगे और कुछ काल में स्पेन के आचार, विचार, पोशाक, धर्म, भाषा आदि सब अरबी हो गये।

इसके चार पाँच वर्ष बाद इन्होंने पेरेनीज पर्वत पार करके गॉल के कुछ भाग पर भी अधिकार कर लिया। यह देख कर ईसाई संसार में बड़ा भय उत्पन्न हुआ और यूरोप मुसलमानों के हाथ में जाता हुआ मालूम पड़ने लगा। परन्तु ७३२ में चार्ल्स मार्टल के नेतृत्व में फ्रैंक लोगों ने टूर्स के मैदान में उन्हें बुरी तरह हरा दिया और वे फिर पिरेनीज़ के पीछे लौट गये। यह पराजय मुह-

म्मद साहब की मृत्यु के ठीक सौ वर्ष बाद हुई। यूरोपीय सभ्यता को हूणों के बाद इतना भय आज तक नहीं हुआ था, परन्तु इस बार भी वह बच गयी।

मुसलमानों की यूरोप-विजय यहीं पर रुक गयी। अतः हम उनकी जन्म-भूमि की कुछ बातें और बता कर इस अध्याय को समाप्त करेंगे। खलीफाओं ने पहले तो मदीना में शासन किया, फिर दमिश्क में रहने लगे। (६६१-७५०) और इसके बाद टिगरिस नदी के किनारे बगदाद को अपनी राजधानी बनाया और पाँच सौ वर्ष तक यह अरबी सभ्यता का प्रधान केन्द्र रहा।

दमिश्क (डेमास्कस) में राज्य करने वाले खलीफा ओमि-याद कहलाते हैं। इन्होंने चतुर्थ खलीफा अली के दो पुत्रों—हसन और हुसैन को मार डाला और स्वयं खलीफा बन गये। अली के अनुयायियों और मित्रों ने इन दोनों को शहीद माना और वे मारने वालों से शत्रुता रखने लगे। इस भाँति इनमें दो दल हो गये जो आज तक नहीं मिले हैं। अली के अनुयायी शिया कह-लाने लगे और उनके विरोधी सुन्नी; क्योंकि सुन्नी सुन्ना ग्रन्थ को भी सच्चा और प्रमाण मानते हैं परन्तु शिया उसे नहीं मानते। तुर्कों तथा अरबों में अधिकांश मनुष्य सुन्नी हैं परन्तु फारस में शिया अधिक हैं।

आठवीं और नवीं शताब्दी में बगदाद के खलीफाओं का शासन बड़ा उज्ज्वल रहा। यह 'सुवर्ण युग' कहलाता है। इसमें प्रधान खलीफा मन्सूर (७५४-७७५ ई०) और हारूँ रशीद (७८६-८०९) हुए। इस समय विज्ञान, साहित्य तथा वेदान्त

की खूब उन्नति हुई और खलीफाओं का दरबार इसका प्रधान केन्द्र रहा।

परन्तु इसके बाद इनमें भी फूट पड़ी। कई दल अलग २ हो गये और प्रत्येक ने सब स्थानों पर अपना अधिकार करना चाहा। इस भाँति इस विस्तृत राज्य के तीन खण्ड हो गये जिनमें तीन स्वतन्त्र खलीफा अलग २ राज्य करने लगे।

इस भाँति यद्यपि केन्द्रित खिलाफत भंग हो गयी परन्तु ये तीनों खलीफा अपने को मुहम्मद साहब का वंशज मानते रहे, उन्हें तथा कुरान को उसी आदर की दृष्टि से देखते रहे और मक्का की ओर मुँह करके प्रार्थना करते रहे। तीनों खलीफाओं (एशिया, अफ्रिका तथा यूरोप के) ने अलग २ अपनी सभ्यता का प्रचार किया और स्पेन में यह बहुत उन्नति को पहुँच गयी। उनका दरबार, सैन्य-संगठन तथा शासन प्रबन्ध यूनानियों के मुकाबले का था। राजा पूर्ण स्वतन्त्र और निरंकुश था।

इन लोगों ने अपना कानून भी प्रचलित किया, जो यूरोप में बहुत अच्छा समझा गया। बेबीलन तथा सीरिया में व्यापार भी खूब बढ़ा जिसका वर्णन सिन्दबाद मल्लाह की कहानियों में है। उपन्यास तथा काव्य लिखने में भी इन्होंने बहुत उन्नति की। अलिफ-लैला अथवा सहस्र-रजनी-चरित्र (अरेबियन नाइट्स) में अनेक मनोरंजक कथाएँ हैं जो स्थायी साहित्य में आ गयी हैं और अनेक भाषाओं में अनुवादित भी हुई हैं।

भारतीयों तथा यूनानियों से इन लोगों ने ज्योतिष, ज्यामिति, गणित, वैद्यक, आदि अनेक विद्याएँ सीख कर उन्नति की। भ्रमण से भूगोल का भी इन्हें बहुत ज्ञान हो गया। ये अनेक उद्योग भी

करने लगने लगे। दमिश्क तथा टोलेडो (स्पेन का एक ग्राम) की तलवारें यूरोप में बहुत प्रसिद्ध थीं। गणित की गणना के सब अंकों को (शून्य को छोड़ कर) उन्होंने भारत से सीखा; जो अब तक 'हिन्दसे' कहलाते हैं। यूरोप में जब शिक्षा का बिलकुल प्रचार न था (कुछ आश्रमों को छोड़ कर) तब मुसलमानी केन्द्रों—बग़दाद, कैरो (काहिरा) कोरडोवा आदि में अनेक मसजिदें, पाठशालाएँ, विश्वविद्यालय, पुस्तकालय आदि बने हुए थे जिनसे यूरोपीय विद्वानों ने बहुत कुछ सीखा। कैरो का बड़ा विश्वविद्यालय आज तक भी स्थापित है, जहाँ संसार के सब भागों से मुसलमान विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करने जाते हैं। शिल्प में भी उन्होंने बहुत उन्नति की जिसके नमूने कोरडोवा और ग्रेनेडा की मसजिदों में अब तक वर्तमान हैं।

परन्तु मुसलमानी धर्म और सभ्यता में अनेक बातें अच्छी होते हुए भी कुछ दोष भी थे। युद्ध के पकड़े हुए मनुष्यों को दास बनाना न्यायसंगत था तथा सबसे बड़ा दोष यह था कि वे अन्य धर्म वालों को असमानता और द्वेष की दृष्टि से देखते हैं। इसके कारण बहुत अशान्ति रही है।

तैंतीसवाँ अध्याय

फ्रैंक और चार्ल्स महान्

अब हमें मुसलमानों की शक्ति को रोकने वाली फ्रैंक जाति का भी वृत्तान्त पढ़ना चाहिये; क्योंकि मध्यकाल में इनका भी इतिहास बहुत महत्त्व-पूर्ण है।

यह एक जर्मन या ट्यूटोन जाति थी जिसका रोम से परिचय तीसरी शताब्दी में हुआ। इनके बहुत से झुंड थे जो रोम के पतन के दो सौ वर्ष पहले राइन नदी के पश्चिम में बस गये। ये अपने को फ्रैंक कहते थे। इनका वास्तविक इतिहास ४८१ ई० से आरंभ होता है। इस वर्ष नेदरलैंण्ड में इनकी एक जाति का राजा क्लोविस हुआ। इसने शक्ति तथा धोखे से काम लेकर आस पास के कई सरदारों को जीत कर कई जातियों को अपने अधीन कर लिया। गिरते हुए रोम साम्राज्य पर यह अपना साम्राज्य खड़ा करना चाहता था। अतः इसने दक्षिण में बढ़ कर बरगंडी और उत्तरी राइन प्रदेश को भी ले लिया। यहीं एक विजय के कारण तथा बरगंडी की अपनी ईसाई स्त्री के प्रभाव से वह ४९६ में ईसाई हुआ। इससे पहले ही वह गॉल के रोमन शासक को भगा कर जूलियस सीजर के स्थापित किये हुए अधिकार को नष्ट कर चुका था। ईसाई होने से रोम के पादरियों से उसकी मित्रता हो गयी, जिससे उसे बहुत सहायता मिली। अन्त में

उसने पश्चिमी गोथों को हरा कर पिरेनीज के उत्तर भाग को भी ले लिया। ५११ में वह मर गया और प्रचलित नियम के अनुसार उसका राज्य उसके चार पुत्रों में बँट गया। ये आपस में लड़ते रहने पर भी अपना २ राज्य बढ़ाते रहे और बवेरिया भी इनके अधीन हो गया। धीरे २ पश्चिमी फ्रैंक रोम के प्रभाव में पूर्वी फ्रैंकों से—जो युद्धप्रिय और वैसे ही जर्मन बने रहे—अलग होते गये और कुछ दिनों बाद पूर्वी भाग आस्ट्रेशिया और पश्चिमी भाग न्यूस्ट्रिया कहलाने लगा। इनमें छठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में खूब झगड़े चलते रहे।

इन राजाओं का राज्य ज्यों २ बढ़ता गया, उसके साथ ही उनका कुटुम्ब भी बढ़ता गया। इसकी देख-भाल के लिये उन्हें एक विशेष अफ़सर नियत करना पड़ा जो 'मेजर डोमस' कहाता था। वह राजा के पास रहता था। अतः उसका महत्त्व बढ़ता गया। आसपास के लोग उसे बड़ा समझने लगे और धीरे २ वह राजा का प्रधान मन्त्री बन गया। सरदारों ने द्वेष के कारण उनकी नियुक्ति रोकने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु वे असफल हुए। कुछ दिनों बाद आस्ट्रेशिया की गद्दी पर एक बालक बैठा तो सरदारों ने अपने में से ही एक को मेजर नियत कर दिया और वही राजा का संरक्षक हुआ। इस भाँति उसे अपनी शक्ति बढ़ाने का पूरा अवसर मिला और धीरे २ राजा की शक्ति घटती गयी। मेजर डोमस राजा न होते हुए भी पूर्ण राजा हो गये और राजा डागोबर्ट (६२८–३८) की मृत्यु के बाद मेजर का पद पिपिन के घराने के लिये परम्परागत हो गया। मेज के बिशप के पुत्र ने पिपिन की पुत्री से विवाह किया। ऐसे विवाह

उस समय बहुत होते थे। इस सम्बन्ध से जो वंश चला वह कारलिंग कहलाता है क्योंकि उसमें सबसे प्रधान पुरुष कार्ल महान् हुआ।

पिपिन के पुत्र पिपिन (द्वितीय) ने बहुत युद्धों के बाद ७१४ में न्यूस्ट्रिया पर भी अधिकार कर लिया। इस भाँति वह समस्त फ्रैंक भूमि का राजा हो गया और उसने अपने राज्य को संगठित तथा केन्द्रित किया। उसके बाद उसका पुत्र कार्ल मार्टल (७१४-४१) राजा हुआ। उसने भी पिता की नीति को जारी रखा। राज्य के सब सरदारों को जीत कर उन्हें पूर्णतया अधीन कर लिया और राज्य भी बढ़ाया। इसी के समय में स्पेन के मुसलमानों ने गॉल पर आक्रमण किया, परन्तु इसने उन्हें ७३२ में टूर्स स्थान पर हरा दिया। यह शक्ति में पूर्ण स्वतन्त्र होने पर भी राजा नहीं कहला था।

उसके मरने के बाद उसका राज्य उसके दो पुत्रों—कार्लमैन और पिपिन (तृतीय) में बँट गया, परन्तु कुछ दिन बाद बड़ा भाई साधु हो गया और पिपिन पूर्ण अधिकारी हो गया। वह केवल मेजर की पदवी से सन्तुष्ट न था। यद्यपि सब शक्ति उसके हाथ में थी परन्तु नाम के लिये राजा पहले ही वंश के चले आते थे। उसने राजा को उतार कर स्वयं 'राजा' की पदवी धारण करना चाहा, परन्तु वर्षों की इस परम्परा को तोड़ने में वह अकेला डरता था। अतः उसने पोप की सहायता लेनी चाही। उसने पोप के पास सब वृत्तान्त कहलवा भेजा और पूछा कि राजा कौन हो सकता है। जिसके पास शक्ति है, परन्तु 'राजा' की पदवी नहीं है वह, या जिसके पास शक्ति कुछ भी नहीं है परन्तु राजा की पदवी

है वह । पोप पिपिन तथा उसके पूर्वजों के अहसानों से दबा था और उससे मित्रता बनाए रखना चाहता था । अतः उसने उत्तर दिया कि वही वास्तव में राजा है अर्थात् जिसके पास शक्ति है वही नाम में भी राजा होना चाहिये । बस, यह आज्ञा पाकर उसने ७५१ में सब सरदारों को बुला कर एक बड़ी सभा की। क्लोविस वंश के अन्तिम राजा को गद्दी से उतार कर स्वयं उसकी जगह बैठ गया और राज-तिलक करवा के 'राजा' की पदवी भी उसने धारण कर ली ।

इसी समय पोप स्टीफन द्वितीय को लम्बार्ड लोगों ने आकर तंग किया और पोप ने पिपिन से सहायता की प्रार्थना की । पिपिन सेना लेकर शीघ्र ही इटली पहुँचा और लम्बार्डों को हरा कर पोप को बहुत सा भूमि-भाग दे दिया । इस भाँति उसने सिंहासन-प्राप्ति के समय पोप की दी हुई सहायता का बदला चुकाया । इसी समय से पोप की भौतिक शक्ति का आरम्भ हुआ । (७५६)

७६८ में पिपिन की मृत्यु पर उसका राज्य भी दो पुत्रों—कार्लमैन और चार्ल्स में बँट गया । ये दोनों आपस में शत्रुता रखते थे, परन्तु तीन वर्ष बाद कार्लमैन की मृत्यु से गृह-कलह बच गया और चार्ल्स सम्पूर्ण राज्य का अधिकारी हो गया । उसने ४६ वर्ष राज्य किया और लगातार युद्ध करके समस्त पश्चिमी यूरोप को अपने अधिकार में कर लिया । शीघ्र ही लम्बार्डों ने पोप पर फिर आक्रमण किया। अतः चार्ल्स ने वहाँ पहुँच कर लम्बार्डों के राजा को उतार दिया और उसका मुकुट, जिसे लगभग दो सौ वर्ष पहले पोप ग्रेगरी ने लम्बार्ड राजा को दिया था, अपने सर

पर रख लिया। इसी समय से उसने अपना नाम 'चार्ल्स मेन' (चार्ल्स महान) अथवा 'शार्लमेन' रख लिया और इसी नाम से वह प्रसिद्ध है।

७७८ में उसने स्पेन के मुसलमान अथवा मूर लोगों पर आक्रमण किया और उनसे स्पेन का उत्तर-पूर्वी भाग छीन लिया। इससे भी महत्व-पूर्ण विजय उसने सेक्सन लोगों पर प्राप्त की, जो अब तक ईसाई नहीं हुए थे। ७७२ से ८०४ तक वह उनसे लड़ता रहा। जब सेक्सन लोग हार जाते तो ईसाई होने का वादा कर देते थे, परन्तु उसके लौटते ही विद्रोह मचाते थे; गिर्जों को लूटते तथा पादरियों को क़त्ल कर देते थे। अन्त में हार कर उन्होंने ईसाई धर्म और शार्लमैन को अपना अधिपति स्वीकार किया। उनकी भूमि कई भागों में बाँट दी गयी और ब्रेमेन, वर्डन आदि में बिशप रहने लगे।

चार्ल्स महान का समय इधर उधर चढ़ाइयाँ करने में ही बीता। बवेरिया में विद्रोह होने पर उसे जाना पड़ा और ७८७ में वहाँ के ड्यूक को हरा कर उसने अपना एक सरदार नियत किया। एल्ब तथा ओडर नदियों के बीच की स्लाव जातियों को चार्ल्स ने जीत लिया और बोहेमिया को भी उसकी आधीनता स्वीकार करनी पड़ी। फिर उसने भूमध्यसागर में मुसलमानों से युद्ध करके कार्सिका और सार्डिनिया आदि द्वीप भी ले लिये। आश्चर्य की बात यह थी कि सब युद्धों में उसकी जीत हुई और उसका विस्तार बढ़ता गया।

इस समय पूर्वी रोमन साम्राज्य पर आयरीन नाम की एक स्त्री अपने पुत्र को मार कर सम्राज्ञी बन गयी थी। धर्म में भेद

होने से पोप सदा उससे जला करते थे। दूसरे पोपों के यहाँ स्त्री का राज्य करना न्याय-संगत भी नहीं था। अतः पोप किसी दूसरे मनुष्य को सम्राट् बनाना चाहता था, परन्तु पश्चिमी रोमन साम्राज्य के उत्तराधिकारियों में इस समय सम्राट् कहलाने योग्य कोई मनुष्य शेष नहीं था। पोपलियो तृतीय को इसी समय उस के शत्रुओं ने फिर आकर घेर लिया। अतः उसने पुनः चार्ल्स महान् को सहायता के लिये बुलाया। चार्ल्स भी ससैन्य वहाँ पहुँच गया और शत्रुओं को मार भगाने में समर्थ हुआ। इस भाँति पोप के ऊपर चार्ल्स का एक और अहसान हुआ। ८०० ई० के बड़े दिन में जब चार्ल्स रोम में सन्त पीटर के गिर्जे में झुका हुआ प्रार्थना कर रहा था तो लियो तृतीय ने उसके पास आकर—अपने ऊपर किए हुए अहसानों को बदला चुकाने के लिये—एक सुवर्ण मुकुट उसके सर पर रख दिया और उसे सम्राट् घोषित कर दिया। चार्ल्स महान् की जय-जयकारों से समस्त गिर्जा गूँज उठा। अब वह 'सम्राट्' हो गया। पोप का विचार तो उसे सम्राट् बनाकर पूर्वी रोमन साम्राज्य को अन्त कर देने का था, परन्तु यूनानियों ने उसके इतने बड़े कार्य पर तनिक भी ध्यान न दिया और स्वतंत्र सम्राट् बनाना जारी रक्खा। इस भाँति परिणाम यह हुआ कि पश्चिमी साम्राज्य—जिसका सदा तीन सौ वर्ष पहले ओडोवकर ने अन्त कर दिया था—फिर स्थापित हो गया और वह फिर भी 'रोमन' कहलाने लगा ?

चार्ल्स महान् कद में लम्बा, पूरा और रोबीला था। अपने समय में वह बड़ा बुद्धिमान् गिना जाता था। वह सवारी और शिकार में चतुर तथा खेलकूद बहुत पसन्द करता था।

वह तैरना भी जानता था। उसे विद्या का बहुत शौक था और उसने इंगलैण्ड से एक विद्वान् बुलवा कर अपने यहाँ के सरदारों के लड़कों की शिक्षा का प्रबन्ध किया था।

वीर सिपाही तथा विजयी होने के अतिरिक्त उसने राज्य-प्रबन्ध में भी बड़ी योग्यता दिखायी। अनेक प्रान्तों में घूमने के लिये उसने विशेष न्यायाधीश जो वहाँ के छोटे न्यायाधीशों की परीक्षा करते थे, नियत किये। इससे न्याय में बहुत सुविधा होने लगी। इसी भाँति उसने मालगुजारी का भी अच्छा प्रबन्ध कर दिया। उसने कृषि और व्यापार को भी उत्तेजना दी। प्रान्तीय प्रबन्ध के लिये साम्राज्य को कई प्रान्तों में बाँट कर वहाँ काउण्ट नियत किये जो सीधे उसीके अधीन थे। वह स्वयं सब के ऊपर कड़ी निगाह रखता था। इस भाँति वह अपने विस्तृत साम्राज्य में—जिसमें आजकल के फ्रांस, जर्मनी, हालैण्ड, बेल-जियम, स्वीजरलैण्ड, तथा इटली आदि सम्मिलत थे—शान्ति स्थापित रख सका।

उसने एक बड़ी सेना तैयार की थी जिसकी साल में दो बार वह परीक्षा लिया करता था। इसी भाँति एक जलसेना भी उसने तैयार की थी। उसने कानून सुधारा और इटली के कई चतुर शिल्पियों को अपने राज्य में बुलाया।

इन कार्यों से उसे जितना समय बचता उसे वह भिन्न २ भाषाएँ सीखने और बोलने में लगाता था। अब वह लैटिन ठीक २ बोल लेता था परन्तु यूनानी भाषा का उच्चारण ठीक नहीं कर सकता था। अन्तिम दिनों में उसने लिखना भी सीखना चाहा परन्तु इसमें उसे बड़ी कठिनाई पड़ी। फिर भी उसने अपनी प्रजा के लिये

अनेक पाठशालाएँ खुलवा कर मध्यकाल का अन्धकार दूर करने का प्रयत्न किया।

उसके राज्य में दो सभाएँ थीं। पहली तो जन साधारण की सभा थी जो 'डाइट' कहलाती थी। यह प्रथा ट्यूटोन लोगों में बहुत दिनों से चली आ रही थी। दूसरी सभा में कुछ चुने हुए अधिकारी बैठते थे। इनका मुख्य कार्य राजा को केवल सलाह देना था।

चौदह वर्ष तक सम्राट् रह कर शार्लमेन ८१४ में मर गया। सर्वसम्मति से मध्यकाल का वह सब से महान् तथा महत्वपूर्ण राजा माना जाता है। वह जर्मन जाति का था (फ्रैंक जाति जर्मन अथवा ट्यूटोन जाति का ही एक भाग है)। जर्मन भाषा बोलता था, वहीं की भूमि पर रहता था। फिर भी इस समय तक फ्रांस और जर्मनी दोनों ही उसे बड़ा राष्ट्रीय वीर मानते हैं और अपने २ इतिहास में उसे महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। समस्त यूरोप पर उसका प्रभाव था, क्योंकि उसका कोई प्रतिद्वन्दी न था।

उसके राज्य के परिणाम स्वरूप जर्मनी में सभ्यता का बहुत प्रचार हुआ। दूसरे उसने यूरोप के लिये विश्व-साम्राज्य का आदर्श उपस्थित किया। तीसरे उसने साम्राज्य की भिन्न २ जातियों को मिलाया। रोमन और ट्यूटोन जातियों का सम्मिश्रण—जिसका हाल हम पहले पढ़ चुके हैं—इसके समय में खूब होता रहा। यद्यपि वह सब जातियों में पूर्ण राजनैतिक एकता स्थापित न कर सका, फिर भी उसने उनमें सामाजिक तथा धार्मिक एकता के लिये बहुत प्रयत्न किया। वास्तव में वह एक महान् सम्राट् था।

परन्तु चार्ल्स महान् का साम्राज्य अधिक दिन न ठहरा, क्योंकि उसे सम्हालने के लिये उसीकी योग्यता के पुरुष की आवश्यकता थी। चार्ल्स के बाद उसका पुत्र लुई (धर्मात्मा) राजा हुआ। यह पिता के समान बुद्धिमान् अथवा शक्तिमान न था। पोप के पूर्णतया अधीन था। उसके राज्य में अशांति रही।

८४० में लुई भी तीन पुत्रों—लुई, लोथेयर और चार्ल्स को छोड़ कर मर गया। ८४३ में इनमें वर्डून स्थान की प्रसिद्ध संधि हुई जिसके अनुसार साम्राज्य को तीनों ने बराबर २ बाँट लिया। राइन नदी के पूर्व का भाग लुई को मिला। चार्ल्स को रोन नदी के पश्चिम का भाग, और इन दोनों के बीच का पहला देश—जो उत्तरी सागर से भूमध्य-सागर तक फैला हुआ था, तथा जिसमें इस समय के हालैण्ड, बेलजियम राइन का पश्चिमी भाग, स्वीजरलैण्ड तथा आधा इटली आदि देश हैं—तथा सम्राट् की पदवी लोथेयर को दी गयी। यह सन्धि इस कारण महत्वपूर्ण है कि इसी विभाग के अनुसार कुछ दिन बाद पूर्वी भाग से जर्मनी तथा पश्चिमी भाग से फ्रांस की उत्पत्ति हुई।

चौतीसवाँ अध्याय

'पवित्र रोमन साम्राज्य' का उत्थान और उत्तरी लोगों का प्रवेश

वर्डून की सन्धि से साम्राज्य का पूर्वी भाग चार्ल्स को मिला, परन्तु वहाँ अनेक ड्यूक बड़े शक्तिमान हो गये थे, जिन्हें चार्ल्स न दबा सका। एक शताब्दी के भीतर ही इस वंश के हाथ से राज्य निकल गया और सरदारों ने सेक्सनी के ड्यूक हेनरी को राजा बनाया। इस समय स्लाव, मागयार आदि कई जातियों के आक्रमण हो रहे थे और यूरोप के कई राजा द्रव्य देकर उनसे पिण्ड छुड़ा रहे थे। परन्तु हेनरी ने मागयारों से ९ साल के लिये एक सन्धि कर ली। इसी बीच में उसने अपनी सेना दृढ़ करके स्लाव लोगों से ब्रेडनबर्ग का इलाका छीन लिया, और सीमाओं पर भी दृढ़ पहरे बैठा दिये। सन्धि समाप्त होने पर मागयार लोग जब कर माँगने आये तो हेनरी ने उनकी ओर एक मरा हुआ कुत्ता फेंक दिया। इस अपमान से क्रुद्ध होकर मागयार लोग एक बड़ी सेना लेकर फिर जर्मनी में आये, परन्तु इस बार वे हेनरी की शक्ति में परिवर्तन देख कर चकित हुए। पहले तो सीमाओं पर ही उन्हें कठिन युद्ध करना पड़ा, किन्तु उसे हरा कर जब वे आगे बढ़े तो हेनरी की शिक्षित सेना ने ९३३ ई० में उन्हें हरा दिया और 'सम्राट् हेनरी की जय' की गूँज हुई।

हेनरी की मृत्यु के बाद उसका पुत्र ओटो प्रथम ९३६ ई० में राजा हुआ। उसने जर्मनी की दृढ़ता तथा रक्षा का पूरा प्रयत्न किया। उसने शक्तिमान ड्यूकों को दबा दिया और उनके स्थान पर यथासम्भव अपने सम्बन्धियों और मित्रों को बैठाया। इस समय इटली में बड़ी अशान्ति थी। मागयार, सेरेसिन आदि लगातार आक्रमण कर रहे थे। पोप की दशा बड़ी बुरी थी। परन्तु ओटो धर्म के केन्द्र की ऐसी दुर्दशा न देख सका। दूसरे वहाँ पर बैरंगर नाम का एक सरदार बड़ा प्रबल हो गया था। उसने एडीलेड नाम की एक सुन्दर राज-कुमारी से विवाह करना चाहा। परन्तु स्त्री उसे न चाहती थी। अतः बैरंगर ने उसे जेल में डाल दिया। वह किसी उपाय से निकल गयी और उसने ओटो से सहायता की प्रार्थना की। ९५१ ई० में ओटो इटली पहुँचा और उसने बैरंगर को हरा दिया। परन्तु अधीनता स्वीकार करने पर उसका राज्य उसी के पास रहने दिया गया। ओटो की अंग्रेज स्त्री एडिथ मर गयी थी। अतः उसने स्वयं एडीलेड से विवाह कर लिया। ओटो ने पेविया में अपना राज-तिलक करा के 'इटली का राजा' की पदवी धारण की। इसने मागयार लोगों को ९५५ ई० में आग्सबर्ग के पास बुरी तरह हराया, जिससे यूरोप को सदा के लिये उनका भय दूर हो गया। वे अब मध्य डान्यूब के आस-पास बस गये, जो हंगरी कहलाया।

इस भाँति उसने स्लावों से भी बहुत सी भूमि प्राप्त की और पोल और डेनों से भी अधीनता स्वीकार करा ली। इस प्रकार उत्साहित होकर उसने सम्राट् पद भी धारण करना चाहा। अतः ९६२ ई० में शार्लमैन के समान उसने भी रोम में जाकर पोप

के हाथ से अपना राज-तिलक कराया और सम्राट् पदवी धारण की । इस समय से यह नियम हो गया कि जर्मन सरदार जिसको अपना राजा चुनें वही इटली का राजा हो और वही पोप से अभिषिक्त होकर सम्राट् की पदवी धारण करे । इस समय से यह साम्राज्य 'पवित्र रोमन साम्राज्य' के नाम से प्रसिद्ध हुआ । हम देखते हैं कि ओटो और शार्लमैन में बहुत सी बातें मिलती हैं । दोनों अपने समय के सबसे बड़े राजा थे । दोनों ने अपने तथा पोपों के शत्रुओं को हरा कर धर्म की सहायता की और दोनों ने पोप से एक ही इनाम—सम्राट् का पद पाया । भेद केवल इतना ही था कि शार्लमैन का साम्राज्य अन्तर्जातीय था । उसमें फ्रेंच, इटालीय, स्पेनिश आदि अनेक जातियों के लोग थे परन्तु ओटो का साम्राज्य प्राय: जर्मन था ।

ओटो ने अपने साम्राज्य में, ड्यूकों की शक्ति परिमित रखने के उद्देश से, माल का प्रबन्ध करने के लिये जो अफसर नियुक्त किये वे 'काउन्ट पैलेटाइन' कहलाये । साम्राज्य की अनेक जंगली जातियों को सभ्य तथा ईसाई बनाने के लिये भी उसने बहुत प्रयत्न किया । इन कामों में उसने पादरियों से बहुत सहायता ली, क्योंकि पादरी ब्रह्मचारी होने के कारण घरबार की चिन्ता से रहित थे । अत: उनके स्वतन्त्र हो जाने अथवा राज्य बढ़ा लेने की आशा नहीं थी । धार्मिक कृत्यों के अतिरिक्त ओटो ने कर उगाहने, न्यायाधीश बनने, सेना तथा राज्य का प्रबन्ध करने आदि अनेक कार्यों में इन्हीं पादरियों को नियुक्त किया । इस भाँति राज्य और धर्म में घनिष्ठता स्थापित कर ९७३ ई० में वह मर गया ।

उसके बाद ओटो द्वितीय और तृतीय क्रमश: सम्राट् हुए, परन्तु चार्ल्स महान् के उत्तराधिकारियों की भाँति वे भी निर्बल थे। उनके समय में बर्बर जातियों ने फिर आक्रमण किये। ओटो तृतीय के राज्य में सन् १००० ई० आया। लोगों का विश्वास था कि इस वर्ष या तो संसार एकदम नष्ट हो जायगा या उसमें कोई भारी परिवर्तन होगा। वर्ष आते देख सब लोगों ने अपने काम छोड़ दिये, खेत बिना जुते पड़े रहे, इमारतें अधूरी ही छोड़ दी गयीं, परन्तु वर्ष आया और चला गया, संसार नष्ट न हुआ। यह देख फिर खूब गिर्जे बने। ओटो तृतीय सन् १००२ ई० में मर गया।

जब ओटो का साम्राज्य इस भाँति निर्बल हो रहा था, उसी समय उत्तरी जातियों के आक्रमण बढ़ते जाते थे। ये लोग जाति, आचार, विचार, भाषा आदि सब में ट्यूटोन थे और यूरोप के लिये, गोथ, हूण, वण्डाल आदि के समान ही भयंकर थे। स्वीडन तथा डेनमार्क से आने के कारण ये 'नार्थमैन' (उत्तरी मनुष्य) अथवा डेन कहलाते हैं। आठवीं शताब्दी तक ये लोग अपने घरों में बन्द रहे, परन्तु इसके बाद ब्रिटेन, गॉल आदि के किनारों पर इनके डाके डालने के समाचार मिलने लगे। ये धर्म अथवा कानून की कुछ चिन्ता न कर जहाँ जाते वहीं लूटते, गाँव जलाते और आदमियों को कत्ल कर देते थे। पहले ये लूट कर लौट जाते थे, परन्तु कुछ दिन बाद दक्षिणी भागों में वे बसने भी लगे और उनके पीछे उनके दूसरे भाई बन्धु आकर लूट मचाने लगे। अपनी लम्बी २ नावों में ये भयंकर लोग समुद्रों में चारों ओर घूमा करते थे। धीरे २ ये नारमण्डी, नेपल्स, गॉल,

इँगलैण्ड आदि में बस गये। इनकी विशेषता यह थी कि ये जहाँ गये वहां के रीति-रिवाज, आचार-विचार सब इन्होंने स्वीकार कर लिये। इस भाँति जो लोग रूस में गये वे रूसी; जो फ्रांस में गये वे फ्रेंच; जो इटली में गये वे इटालीय और जो इँगलैण्ड में गये वे इंगलिश हो गये।

नवीं शताब्दी में ये लोग इँगलैण्ड के उत्तर में आइसलैण्ड टापू में बस गये। वहाँ से एक शताब्दी बाद अमेरिका के उत्तर के बड़े द्वीप ग्रीनलैण्ड का पता लगा कर वहाँ भी बस गये और अन्य सब यूरोपीय जातियों से पहले उनके अमेरिका पहुँचने के भी प्रमाण मिलते हैं। नवीं शताब्दी के मध्य में स्वीडन के एक डाकू सरदार रूरिक ने रूस में जाकर अनेक स्लाव जातियों को जीत कर रूसी राज्य की स्थापना की।

इँगलैंड में इनके कारण बड़ा भय उत्पन्न हो गया क्योंकि ये मनुष्यों को मारने के अतिरिक्त उनके गिर्जे जलाने में बहुत प्रसन्न होते थे। यह ज्ञात होने लगा था कि ये लोग एँगलों को या तो भगा देंगे या नष्ट कर देंगे। परन्तु इसी समय वेसेक्स की गद्दी पर अलफ्रेड नामक बलवान राजा बैठा। (८७१-९०१) वह छः वर्ष तक इन लोगों से—जो वहाँ डेन कहलाते थे—लड़ा, परन्तु हार गया और जंगलों में कुछ दिन तक फिरा और अन्त में ८७८ ई० में वेडमोर स्थान पर सन्धि करके इँगलैण्ड का उत्तरी भाग उसने इनको दे दिया।

अलफ्रेड इँगलैण्ड का बहुत प्रसिद्ध राजा हुआ है। उसने शिक्षा की बहुत उन्नति की। इसने कानून में बहुत सुधार किया और कई अच्छे और नये नियम बनाए। बाइबिल तथा कई

अन्य पुस्तकों का अनुवाद भी उसने किया। अंग्रेजी गद्य साहित्य का यहीं से आरम्भ होता है।

अलफ्रेड के उत्तराधिकारी डेन लोगों से लगभग सौ वर्ष तक लड़ते रहे, परन्तु अन्त में डेनों की ही जीत हुई और उनका राजा कैन्यूट १०१६ ई० में इँगलैंड का भी राजा हो गया। सन् १०४२ ई० में एडवर्ड ने इन्हें हरा कर पुराने आंग्ल वंश की फिर स्थापना की।

गॉल में उत्तरी लोगों के आक्रमण शार्लमैन के बाद ही आरम्भ हो गये थे। उसकी मृत्यु के तीस वर्ष बाद ही इन्होंने पेरिस पर आक्रमण कर दिया और ९११ ई० में वहाँ के राजा को भी आलफ्रेड के समान उत्तर की कुछ भूमि उनके बसने के लिये देनी पड़ी। परन्तु उसने यह शर्त करा ली कि उत्तरी लोग ईसाई हो जायँगे और फ्रांस के राजा को अपना अधिपति मानेंगे। शीघ्र ही ये लोग सब बातों में फ्रेंच लोगों से मिल गये और 'नार्थमैन' से बिगड़ कर 'नार्मन' कहलाने लगे और इनका देश नार्मन्डी कहलाया। इन लोगों ने फ्रांस के इतिहास पर बहुत प्रभाव डाला; क्योंकि वीर तथा युद्धप्रिय होने के कारण ये फ्रांस को सदा वीर-भूमि बनाये रहे।

इनके प्रभाव से शार्लमैन के साम्राज्य के तीन से बढ़ कर अनेक खण्ड हो गये और फ्यूडल प्रथा की बहुत वृद्धि हुई।

अपनी विशेषता के अनुसार बहुत ही थोड़े समय में उत्तरी लोग जो अब तक गैर-ईसाई, असभ्य तथा निर्दय थे; वे सभ्य और शिक्षित होकर ईसाई हो गये, परन्तु इनमें वीरता और विजय के भाव

शान्त नहीं हुए। वे नार्मण्डी में जम कर न रह सके। ग्यारहवीं शताब्दी में उन्होंने इंगलैण्ड पर आक्रमण कर दिया।

इंगलैण्ड में १०६६ ई० में एडवर्ड मर गया और वहाँ की सरदार-सभा 'विटान' ने वेसेक्स के बलवान राजा हेरोल्ड को एडवर्ड का उत्तराधिकारी बनाया। इस समाचार को सुन कर नार्मण्डी के ड्यूक विलियम ने कहा कि एडवर्ड ने मरने के बाद अपना राज्य मुझे देने को कह दिया था। अतः हेरोल्ड को सिंहासन छोड़ देना चाहिये। हेरोल्ड ने इसका उत्तर न देकर अपनी रक्षा के लिये एक सेना इकट्ठी करना आरम्भ कर दिया। विलियम भी अपनी सेना सहित इंगलैण्ड के दक्षिण में हेस्टिंग्ज नामक बन्दरगाह में उतरा। उसकी सवार सेना आक्रमण के लिये आगे बढ़ी। दिन भर भारी युद्ध हुआ परन्तु अन्त में अंग्रेजों की हार हो गयी। हेरोल्ड मारा गया और विलियम विजयी होकर लन्दन के वेस्ट मिनिस्टर स्थान पर पहुँचा और इंगलैण्ड का राजा घोषित कर दिया गया। (बड़ा दिन १०६६)

अपनी शक्ति दृढ़ कर लेने पर विलियम ने पहला काम यह किया कि जो सरदार हेरोल्ड की ओर से लड़े थे उनसे भूमि छीन २ कर अपनी ओर के सरदारों को दिलवायी हीं। जिन्होंने विलियम को अपना अधिपति मान लिया उनकी भूमि उन्हें लौटा दी गयी। परन्तु विलियम फ्यूडल प्रथा की बुराइयों को फ्रांस में देख चुका था। अतः उसने यह ध्यान रखा कि कोई सरदार बहुत शक्तिमान न होने पावे। इसी विचार से उसने पूरा प्रान्त किसी को नहीं दिया और जिन्हें अधिक भूमि देनी पड़ी, उन्हें दूर २ स्थानों की थोड़ी २ भूमि दी, सब इकट्ठी नहीं।

दूसरे उसने इन सरदारों के अधीन छोटे २ जमींदारों से राज-भक्त रहने की शपथ कराई। अब तक उन्हें अपने सरदार के प्रति भक्ति की शपथ खानी पड़ती थी। विलियम की इस युक्ति से सरदारों की शक्ति बहुत घट गयी।

इस प्रकार राजा की शक्ति पूर्ण स्वतंत्र और दृढ़ करके विलियम १०८७ ई० में मर गया। उसने कई सुधार भी किये। सब भूमि को नपवा कर उसने नया बन्दोबस्त कराया और शिकार के सम्बन्ध में कड़े नियम बनाकर उसने जंगली जीवों की रक्षा की, जिन्हें वह बहुत चाहता था।

उसके बाद उसीके वंश के तीन राजा—विलियम द्वितीय, हेनरी, और स्टीफन हुए, जिन्होंने ११५४ ई० तक राज्य किया। ये निर्बल थे। अतः देश में अराजकता फैल गयी। अन्त में ११५४ ई० में हेनरी द्वितीय ने सरदारों को दबाकर देश में फिर शान्ति स्थापित की।

पैंतीसवाँ अध्याय

फ्यूडल प्रथा और शूरता

राज्य-प्रबन्ध और समाज की वह विशेष अवस्था जो मध्य-काल में प्रचलित थी और जो बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दी में पूर्णता को पहुँची, 'फ्यूडल' प्रथा के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी मुख्य बातें तीन थीं। जागीरदार अथवा राजा अपनी भूमि को

छोटे २ आदमियों में बाँट देता था। इन दोनों में व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित हो जाता था और छोटे भूमिपति अपने जागीरदार को ही पूर्ण मालिक समझते थे। ये जागीरें चाहे उसमें चार एकड़ भूमि हो चाहे पूरा प्रान्त हो—'फ्यूड' कहलाती थीं और इसीसे इस प्रथा का नाम फ्यूडल पड़ा। छोटे भूमिपति अपनी भूमि को वैसी ही शर्तों पर और लोगों में भी बाँटते चले जाते थे।

इस समय यूरोप में कोई बलवान सम्राट् न होने से अनेक छोटी २ रियासतें उत्पन्न हो गयी थीं और प्रायः सब जगह अशान्ति थी। शक्तिमान लोगों को अपने निर्बल पड़ोसियों को दबाने और लूटने का अच्छा अवसर मिला। अनेक छोटी २ लड़ाइयाँ होने लगीं। कानून को कोई पूछता न था। ऐसे समय में यह स्वाभाविक था कि निर्बल लोग लूटमार के भय से किसी बलवान सरदार का आश्रय ले लिया करते। जर्मन जातियों में ऐसी नौकरियाँ बहुत प्रचलित हुईं। वे अपने मालिक के प्रति भक्ति की शपथ खाने और उसकी ओर से लड़ने को पवित्र समझने लगे। इस भाँति इन सरदारों के पास अलग २ सेनाएँ हो गयीं। वे सदा लड़ा करते थे। इससे यूरोप में अशान्ति और अराजकता फैलने के डर से पोप ने हस्तक्षेप करके कुछ ऐसे दिन नियत बना दिये जिनमें लड़ाइयाँ बन्द रखी जाँय। इन्होंने युद्ध रोकने के और भी नियम बनाये। इस भाँति फ्यूडल प्रथा अपने आप उत्पन्न हो गयी।

इसके अनुसार सरदार लोग नाम के लिये राजा के आश्रय में रहने लगे। उनके प्रति भक्ति और ईमानदारी की शपथ खाने लगे और अपनी जागीर को उन्हीं की दी हुई समझने लगे। इसी

भाँति छोटे छोटे लोग सरदारों के आश्रित हो गये। इस तरह आश्रित होने वालों को मालिक के आगे घुटने टेक कर प्रार्थना करनी पड़ती थी तथा मालिक के हाथ पर हाथ रखकर शपथ खानी पड़ती थी कि मैं तुम्हारा आदमी हो गया और प्राण देकर भी तुम्हारी सेवा करूँगा और ईमानदार रहूँगा। इस पर मालिक हाथ चूम लेता और थोड़ी भूमि का मालिक बना देता। आश्रय के चिन्ह-स्वरूप आश्रितों को वह झण्डा, तलवार तथा कभी २ मिट्टी का ढेला भी दे देता था।

मालिक और आश्रितों में कई प्रकार के सम्बन्ध थे। उनका पहला काम युद्ध में मालिक की सहायता करना था। युद्ध के समय मालिक अपने पास के आश्रितों को बुलाता और वे क्रम से अपने २ आश्रितों को बुलाते। इस भाँति एक सेना इकट्ठी हो जाती जो लड़ाई में भेज दी जाती थी। परन्तु उनसे युद्ध में वर्ष में चालीस दिन से अधिक काम नहीं लिया जाता था। इस सेवा के अतिरिक्त जब मालिक शिकार खेलने आवे तो आश्रितों को उसे ठहरने के लिये जगह देनी पड़ती थी। यदि मालिक को कोई शत्रु कैद कर ले तो आश्रितों का कर्तव्य था कि वे स्वयं मालिक के स्थान पर कैद में रहकर मालिक को छुड़ावें अथवा शत्रु को मालिक को छोड़ने के लिये हरजाना दें। मालिक धर्मयुद्ध में जाँय तो खर्च का कुछ भाग भी उन्हें देना पड़ता था। इन सेवाओं के बदले आश्रितों को बहुत से अधिकार भी प्राप्त थे। युद्ध अथवा सन्धि के अवसरों पर मालिक के साथ बैठ कर विचार करने और सलाह देने का उन्हें अधिकार था। इसी भाँति मालिक के न्यायालय में उसके साथ बैठ कर उन्हें मुकदमों

में सम्मति देने का अधिकार था। आश्रितों को सेवा करने और अनेक उत्सवों पर रुपया देने का बदला भी उन्हें मिल जाता था। क्योंकि अशान्ति के समय उन्हें अपने मुकदमों के निर्णय में अधिकार प्राप्त थे, जो साधारण बात नहीं थी। इससे उनके स्वत्वों की रक्षा होती थी।

परन्तु इन आश्रितों की संख्या कुल जन-संख्या का प्रायः आठवाँ या दसवाँ भाग था। शेष लोग खेती करते थे और सर्फ कहलाते थे। सर्फ मालिक की भूमि जोतते और बोते थे। उन्हें उस भूमिपर परम्परा के लिये अधिकार प्राप्त था। मालिक उन्हें हटाता नहीं था। इस भूमि का कर जिन्स—अंगूर, गेहूँ, लकड़ी आदि में ही चुकाया जाता था तथा उन्हें शारीरिक सेवा भी करनी पड़ती थी। अर्थात् उन्हें मालिक की निज की भूमि पर सप्ताह में दो या तीन दिन काम करना पड़ता था। जैसे, जोतना, निराई करना, खेत के चारो ओर खाई खोदना, दीवाल बनाना, सड़कों तथा पुलों को दुरुस्त करना, लकड़ी काटना आदि। इस शारीरिक सेवा के कारण सर्फों की दशा बड़ी करुणा-जनक थी। प्रायः उन्हें सप्ताह भर मालिक की सेवा में ही बीत जाता था और अपने खेतों में काम करने के लिये केवल बरसात तथा रात का ही समय मिलता था। इसके अतिरिक्त उन्हें अपना अनाज मालिक की चक्की में पिसवाना पड़ता था। अंगूर का रस भी उनकी कल से ही निकलवाना पड़ता था और इसके लिये पिसाई भी देनी पड़ती था। आपस के अथवा उनके और मालिक के बीच के झगड़े भी उन्हें मालिक की ही अदालत में पेश करने पड़ते थे और इसके लिये फीस भी देनी पड़ती थी। इन सब

करों की भुगतान करके सर्फों के पास प्रायः खाने भर को ही बच जाता था।

यूरोप के सब देशों में अशान्ति फैली हुई थी। उधर चारों ओर से भयंकर शत्रुओं के आक्रमण हो रहे थे। उत्तरी डाकू, गॉल, इंगलैण्ड आदि के गाँवों को जला कर आस-पास में लोगों में भय उत्पन्न कर रहे थे। मागयारों ने कई बार आक्रमण कर समस्त जर्मनी को नष्ट भ्रष्ट कर डाला था। दक्षिण में सेरेसिन लोगों ने सिसली तथा सब भूमध्य सागर पर अधिकार कर लिया था तथा अनेक गाँव जला डाले थे। ऐसी स्थिति के कारण ही यूरोप में—विशेषतया फ्रांस और जर्मनी में—फ्यूडल प्रथा की वृद्धि होती रही। छोटे २ स्वतंत्र जागीरदारों ने स्वयं ही किसी बड़े सरदार के अधीन रहना ठीक समझा। अनेक गिर्जों ने भी इसी का अनुकरण करके अपनी भूमि किसानों में बाँट दी और स्वयं भी किसी बड़े सरदार के आश्रित हो गये। प्रायः बिशप तथा गिर्जे के अन्य अधिकारी सैनिक सहायता देने के स्थान पर मालिक के स्थान पर पूजा पाठ तथा प्रार्थनाएँ कर दिया करते थे। इस भाँति एक प्रकार से गिर्जे और बिशप—राजाओं और सरदारों—भौतिक शक्तियों—के अधीन हो गये। दूसरी ओर पोप अपने को सब राजाओं और सम्राटों के भी ऊपर बताते थे। इसी विवाद के कारण आगे बहुत झगड़े चले।

ऐसी अशान्ति के समय आश्रय लेने के लिये किसी सुरक्षित स्थान की भी आवश्यकता थी। अतः समस्त यूरोप में अनेक पत्थर के दुर्ग बन गये। इनके खँडहर यूरोप-भ्रमण में स्थान २ पर अब भी मिलते हैं।

परन्तु फ्यूडल प्रथा राजा तथा प्रजा किसी को प्यारी नहीं थी। धर्म-युद्धों के कारण अनेक सरदारों ने अपनी जागीरें बेंच दीं और अनेक वहाँ जाकर मारे गये। नये बने हुए दुर्गों के पास नगर भी बसते गये जो शक्तिमान होकर सरदारों का विरोध करने लगे। फिर बन्दूक आदि नए शस्त्रों के बनने से राजा की शक्ति बढ़ गयी। इन कारणों से धीरे २ फ्यूडल प्रथा की अवनति होती गयी और अन्त में अठारहवीं शताब्दी में उसका अन्त हो गया।

इस प्रथा के कारण यद्यपि राष्ट्रीय तथा दृढ़ राज्य की स्थापना न हो सकी परन्तु इसने उस समय समाज की रक्षा में बहुत कुछ सहायता दी और आक्रमणकारियों को हरा कर भगा दिया।

फ्यूडल प्रथा का सबसे महत्त्व-पूर्ण परिणाम शूरता का प्रचार है। शत्रुओं से लड़ने के लिये घुड़सवार सेना बहुत उपयोगी साबित हुई। अतः कुछ दिन बाद यह नियम हो गया कि आश्रित लोग सब एक २ घोड़ा रखें। धीरे २ यह प्रथा समस्त यूरोप में फैल गयी और कुछ दिन बाद भूमि का बन्धन भी न रहा अर्थात् अच्छे वंश का कोई भी मनुष्य—चाहे उसके पास भूमि हो या न हो—इस दल में सम्मिलित हो सकता था। इस सवार दल के लोग 'नाइट' कहलाते थे। धर्म तथा निर्बलों की रक्षा करना इनका मुख्य उद्देश हो गया। इस दल में सम्मिलित होने वाले लोग बिगुल बजाना, हथियार चलाना आदि बातें सीखते थे और मालिक के साथ युद्धों में जाकर उनके घोड़े और कवच की रक्षा करते थे। इस भाँति युद्ध का काम सीख जाने के कुछ दिन बाद एक उत्सव होता था जिसमें इनको 'नाइट' का

पदवी दी जाती थी। इस समय उन्हें कुछ ऐसी शपथें खानी पड़ती थीं—हम परमेश्वर से डरेंगे। ईसाई धर्म में दृढ़ रहेंगे। देश तथा दुखियों की सहायता करेंगे। बुरे कामों से दूर रहेंगे। संसार के कष्टों को वीरता से झेलेंगे और युद्धों में जहाँ तक होगा जाने का प्रयत्न करेंगे आदि। इसके बाद सरदार उन्हें सोने की रिकाबें देता था और वे 'नाइट' कहलाने लगते थे। युद्ध में असाधारण वीरता दिखाने पर भी यह पदवी दे दी जाया करती थी। युद्ध-कला का शिक्षण सातवें वर्ष से ही हो जाया करता था और चौदह वर्ष बाद उन्हें 'स्क्वायर' की पदवी दी जाती थी और मालिक की रखवाली के लिये युद्ध में जाने योग्य वे समझे जाते थे। इक्कीसवीं वर्ष में वे नाइट बनाये जाते थे। यह प्रथा फ्रांस में सब देशों से अधिक चली। मुसलमानों से लड़ने में नाइटों ने बड़ा भाग लिया। कुछ दिन बाद 'अनाथ' निर्बल तथा पीड़ितों की रक्षा करना और स्त्रियों की विशेष चिन्ता करना इनका प्रधान उद्देश हो गया। नाइटों के अभ्यास के लिये भुथरी तलवारों तथा नोक-रहित बरछों से उनके युद्ध भी कराये जाते थे। जो दूसरे को घोड़े से नीचे गिरा दे वही विजयी समझा जाता था और उसे फूलों का हार अथवा ऐसी ही कोई अन्य वस्तु इनाम में दी जाती थी।

यदि कोई नाइट असत्य, धोखेबाजी, निर्दयता अथवा भीरुता का आचरण करता था तो एक उत्सव में उसके पैरों में से रिकाबें खींच ली जाती थीं और वह नाइट-दल से निकाल दिया जाता था। फिर भी कुछ दिन बाद बहुत से नाइट क्रूर, झूँठे, और लुटेरे हो गये।

तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दियों में तलवार से वीरता दिखाने वाला मनुष्य ही आदर पाता था। कवच पहने हुए, घोड़े पर सवार, हाथ में तलवार अथवा भाला लिये नाइट लोग वीरता के कामों को ढूँढ़ते हुए समस्त देश में घूमते थे। किसी स्त्री को दुख अथवा कैद से छुड़ाना बड़ी वीरता का काम समझा जाता था। उस समय की भाषा ही वीररस-पूर्ण थी जिससे उत्साहित होकर युवक लोग मैदानों तथा जंगलों में घूमते थे।

पन्द्रहवीं शताब्दी में शूरता का युद्ध अस्ताचल की ओर जाने लगा क्योंकि अब देशों में शान्ति स्थापित हो चली थी। अतः निर्बलों और पीड़ितों की रक्षा के लिये नाइटों की आवश्यकता न रही थी। युद्ध के नियमों और शस्त्रों में भी परिवर्तन हो चला था। अतः पुराने शस्त्र उनके सामने निर्बल पड़ गये थे।

इस शूरता के प्रचार के कारण सामाजिक रक्षा के अतिरिक्त एक परिणाम और भी हुआ। इस समय से स्त्रियों का आदर बहुत बढ़ गया जो वर्तमान पश्चिमी सभ्यता का एक प्रधान अंग है।

छत्तीसवां अध्याय

पोप और सम्राट्

पिछले किसी अध्याय में हम बतला चुके हैं कि पोप किस प्रकार आध्यात्मिक उन्नति के कारण प्रधान समझे जाने लगे थे और वे दो जर्मन राजाओं को तिलक करके सम्राट् भी बना चुके थे। इस समय के बाद उन्होंने अपनी भौतिक उन्नति भी आरम्भ कर दी। वे कहने लगे कि सम्राट् को नियत करना केवल पोप के ही हाथ में है और वही उसे उतार भी सकते हैं। इस अधिकार को धर्म्म-सम्मत बनाने के लिये उन्होंने बाइबिल के कुछ वाक्यों का यह अर्थ किया कि भगवान ईसा ने गिर्जे को—अतः गिर्जे के नायक पोप को—दो असि दी है—धार्मिक और सांसारिक। धार्मिक असि के प्रभाव से पोप समस्त ईसाई संसार के धार्मिक विषयों में प्रधान हैं, तथा सांसारिक असि के प्रभाव से वे सब ईसाई संसार के सम्राट् हैं। अतः पोप सब सम्राटों के सम्राट् हैं। भौतिक सम्राट् उनसे नीचे हैं। परन्तु पोपों ने अपना दूसरा कार्य—सांसारिक विषयों में लिप्त होना सम्राटों को सौंप दिया है जो पोप के प्रतिनिधि रूप संसार का कार्य चलाते हैं। इस भाँति पोप को पूर्ण अधिकार है कि जब वह चाहे तो किसी सम्राट् को राज्यच्युत कर दे तथा उसके स्थान पर दूसरे को नियत कर दे। क्योंकि पृथ्वी पर ईश्वर और ईसामसीह का प्रतिनिधि वही है।

आरम्भ से ही अनेक लोगों ने आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये पृथ्वी तथा द्रव्य आदि रोम के गिर्जे को दान करने की प्रथा डाल दी थी। इसके अतिरिक्त धार्मिक अधिकारियों की नियुक्ति के समय तथा राजाओं के यहाँ उत्सवों के समय पोपों को भारी २ रकमें भेंट स्वरूप भेजी जाने लगी थीं। भूमिपति होने के कारण ही पोपों का लम्बार्ड लोगों से झगड़ा रहता था जिसे एक ही बार जाकर चार्ल्स महान तथा उसके पूर्वजों और उत्तराधिकारियों ने वहाँ जाकर निबटाया था। अब इस भूमि पर अपना स्वत्व बताने की इच्छा से पोपों ने 'कान्स्टेन्टाइन का दान-पत्र' नामक कुछ कागज प्रकट किये—जो अब नकली साबित कर दिये गये हैं। इनमें लिखा था कि सम्राट् कान्स्टेन्टाइन के कोढ़ था। बहुत से पुरोहितों ने कहा कि बच्चों के रक्त में स्नान करने से ही यह रोग दूर हो सकता है परन्तु रोम के बिशप ने अपने प्रभाव से उसे दूर करा दिया। उस पर सम्राट् ने घोषित कर दिया कि बिशप सिलवेस्टर अथवा जो कोई रोम के गिर्जे का प्रधान होगा वही समस्त संसार के गिर्जे का प्रधान है और उसे हमारे महल में इटली के सब नगरों और सब प्रान्तों में पूर्ण अधिकार है जो संसार के अन्त तक ऐसा ही अखण्डित रहेगा। पोप ने कहा कि इस भाँति कान्स्टेन्टाइन ने पोप को इटली का मालिक कर दिया था और उनकी स्वतंत्रता में विघ्न पड़ने की ही आशंका से उसने इटली से अपनी राजधानी हटा ली थी।

यह अन्ध-विश्वास का समय था। लोगों को धर्म और पोप के वाक्यों में बड़ी श्रद्धा थी। उन्हें विश्वास था कि परमेश्वर के प्रतिनिधि पोप की आज्ञाएँ मानने से ही इहलोक और परलोक

दोनों सुधर सकते हैं। इस भाँति पोप का भारी प्रभाव था। अतः उसका बताया हुआ दानपत्र भी सही मान लिया गया।

दूसरी ओर सम्राट् पक्षवालों ने कहा कि सम्राट् पोपों से ऊपर है। उन्होंने भी बाइबिल के प्रमाण देकर बतलाया कि ईसा ने वहाँ के राजा को स्वयं ही कर-स्वरूप रुपया दिया था। अतः ईसा ने राजा को अपने ऊपर नहीं माना। इन दोनों प्रधानता प्राप्ति के लिये उत्सुक शक्तियों में किसी न किसी दिन टक्कर होना आवश्यक था।

जर्मनी में ओटो तृतीय के बाद हेनरी द्वितीय, कोनरड द्वितीय, हेनरी तृतीय ने अपनी शक्ति बढ़ा कर राज्य तथा धर्म में कई सुधार किये। इन सब राजाओं के समय में सरदारों से झगड़े होते रहे और १००६ में इटली के पश्चिम का देश बरगंडी राजा के हाथ में आया। हेनरी तृतीय एक छः वर्ष के बालक को छोड़ कर मर गया। सरदारों ने धोखा दिया और राजकुमार की सहायता करने के स्थान पर राज्य में विद्रोह आरम्भ कर दिया। राजकुमार का पालन तथा शिक्षण दो बिशपों ने किया। बड़ा होकर यह हेनरी चतुर्थ कहलाया। यह बड़ा जिद्दी था।

इसी समय एक बड़ा प्रसिद्ध और बुद्धिमान मनुष्य पोप हुआ, जो मध्यकाल के धार्मिक इतिहास में सब से प्रभावशाली था। यह हिल्डरब्रान्ड था जो पोप होने पर ग्रेगरी सातवाँ कहलाया (१०७३—८५)। पोप होने के पहले वह कुछ दिन तक गिर्जे में काम करता रहा। पोप के मरने पर हिल्डरब्रान्ड ने कार्डिनल बिशपों द्वारा अपने को पोप चुनवा लिया। तब से चुनाव का वही नियम बन गया। पोप होते ही उसने शक्तिमान बनना चाहा। वह गिर्जे को स्वतन्त्र करना चाहता था।

उसने घोषित किया कि रोम के गिर्जे ने कभी कोई गलती नहीं की है और न आगे कर सकता है। उसने कहा कि रोम के बिशप अर्थात् पोप को सम्राट् नियत करने अथवा उसे उतारने का अधिकार है। अन्य किसी को पोप के कार्यों पर टीका करने का अधिकार नहीं है। अन्यायी राजाओं के हाथ से प्रजा को छुड़ाने का पोप सदा ही प्रयत्न करेंगे।

किन्तु हेनरी चतुर्थ जो १०२६ ई० में राजा हो चुका था इन बातों को सहने वाला न था। पोप उसके ऊपर अपना अधिकार दिख रहे थे परन्तु जर्मनी और फ्रांस के सम्राट् अपने को पोपों से ऊपर समझते थे। हम देख चुके हैं कि जर्मनी के सम्राट् इटली के भी राजा कहाते थे तथा जर्मनी और फ्रांस में फ्यूडल प्रथा के समय में यह भी रवाज पड़ गया था कि गिर्जों के बिशप राजा को अपनी भूमि देकर उसका संरक्षण स्वीकार कर लेते थे। इस भाँति राजा का अधिकार बिशपों के ऊपर हो जाता था। बिशप की मृत्यु पर राजा ही दूसरा बिशप नियत करता था और चिन्ह-स्वरूप एक छल्ला तथा एक दण्ड दिया करता था।

अब तक राजा और पोप में कोई व्यक्तिगत शत्रुता नहीं थी। सम्राट् हेनरी चतुर्थ कैथोलिक था और पोप उसका सम्मान करता था, परन्तु दोनों स्वभाव में दृढ़ तथा महत्वाकांक्षी होने के कारण यह मित्रता बहुत दिन तक न निभ सकी।

पोप बिशपों को नियत करने का अधिकार राजा के हाथ से छीनकर अपने हाथ में करना चाहता था। अतः उसने १०७५ ई० में एक आज्ञा निकाली कि कोई भी बिशप किसी लौकिक अधिकारी

के हाथ से बिशप नियत न हो और न वह छल्ला तथा दण्ड राजा के हाथ से ले, जो ऐसा करेगा उसे दण्ड मिलेगा।

सम्राट् हेनरी ने शक्तिमान पोप का विरोध करने के लिये एक सभा में साम्राज्य के सब धार्मिक अधिकारियों को बुलाकर, पोप की एक दूसरी आज्ञा पर विचार किया जिसमें पोप ने उस सम्राट् को भी धर्म-बहिष्कृत कर देने तथा राज्य से भी हटा देने की धमकी दी थी, जो बिशपों को अपने हाथ से नियत करने का साहस करेगा। अन्त में पोप की घोषणा के उत्तर में हेनरी ने उसे यह लिखा—'हेनरी चतुर्थ, जो अनधिकारपूर्वक नहीं, बल्कि परमात्मा के पवित्र आदेशानुसार राजा है, हिल्डर ब्रांड को—जो पोप नहीं बल्कि एक धूर्त साधू है—आज्ञा देता है कि तू जिस पवित्र आसन पर अनधिकारपूर्वक बैठ गया है—उसे खाली कर दे और किसी अन्य को अपने स्थान पर बैठने दे जो धर्म की आड़ में ऐसे भयंकर आचरण न करे, बल्कि सन्त पीटर के अच्छे उपदेश सुनावे।'

किन्तु पोप ग्रेगरी ऐसी आज्ञाओं की कब चिन्ता करता था। वह अभिमान के कारण सम्राटों को कुछ चीज ही न समझता था। सम्राट् होगा तो अपने देश का होगा, पोप के आगे उसका कुछ मूल्य नहीं है। इसी समय सम्राट् हेनरी का वहाँ के सरदारों से भी कुछ झगड़ा हो गया और सरदारों ने पोप से सहायता की प्रार्थना की। पोप ने तुरन्त हेनरी के पास सम्मन भेजा कि आप रोम आइये, हम आपका न्याय करेंगे। परन्तु हेनरी से उल्टा उत्तर पाने पर उसने सम्राट् को धर्म-बहिष्कृत कर दिया। इसका यह अर्थ था कि जिसके विरुद्ध यह आज्ञा निकाली गयी है, उससे

कोई मनुष्य किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखे। यदि वह राजा हो तो प्रजा की उसके प्रति राज-भक्ति की शपथ टूट जाती थी उसका विरोध करना पाप नहीं था। जो कोई उसे खाने पीने को देगा अथवा किसी प्रकार का सम्बन्ध रखेगा उसे नर्क मिलेगा। मृत्यु पर भी वह विधिपूर्वक गाड़ा नहीं जाता था। ऐसी ही आज्ञाएँ जब किसी नगर, प्रान्त अथवा देश के विरुद्ध निकाली जातीं तो वहाँ के सब गिर्जे बन्द हो जाते थे, न घन्टी बजती, न प्रार्थना होती, न विवाह तथा मृत्यु-संस्कार ही होते थे। मध्यकाल में पोप के भय के कारण ऐसी आज्ञाओं का बड़ा प्रभाव पड़ता था।

पोप की हेनरी के विरुद्ध यह आज्ञा बड़ी साहसपूर्ण थी। सम्राट् की भारी सैनिक शक्ति के आगे पोप के पास कुछ न था, उसकी शक्ति लोगों के धर्म-विश्वास में ही थी, क्योंकि लोग धर्म से बहिष्कृत होने की आज्ञा से काँपते थे। यह पहला ही अवसर था कि पोप ने एक सम्राट् को गद्दी से हटाने का प्रयत्न किया।

हेनरी पहले तो इस आज्ञा को सुन कर हँसने लगा परन्तु शीघ्र ही उसकी हँसी दुःखाश्रुओं में बदल गयी। उसे शीघ्र ही पता लगा कि पोप को पदच्युत करने की उसकी आज्ञा तो मौखिक मात्र थी, परन्तु पोप की बहिष्कार आज्ञा रामबाण के समान अमोघ थी। जब वह दूसरे दिन सोकर उठा तो देखा कि राज-महल खाली पड़ा है, रातो रात सब दासी दास भाग गये हैं, महल में केवल उसकी स्त्री है। बाहर आकर खबर मिली कि उसके सरदारों तथा सामन्तों ने उस पर स्वर्ग का कोप समझ कर, उसे राज्य से हटाकर उसके बहनोई को नियत करने का विचार कर लिया है। अब उसकी आँखों तले अँधेरा छा गया।

सम्राट् के सामने अब केवल एक ही उपाय था कि वह इटली जाकर पोप के सामने घुटने टेक कर क्षमा-प्रार्थना करे और अपने बहिष्कार की आज्ञा को रद्द करा दे। चारों ओर भय देख कर उसने अन्त में आत्म-समर्पण करना ही उचित समझा और शीघ्र ही स्त्री तथा बालक पुत्र समेत इटली की यात्रा को चल दिया। पोप ग्रेगरी उस समय एपेनाइन पहाड़ियों के बीच में कैनोसा नामक स्थान पर रहता था। अतः हेनरी वहीं पहुँचा और पोप की ड्योढ़ी पर जाकर अन्दर जाने की आज्ञा माँगी। किन्तु पोप ने यह समाचार सुन कर राजा को अन्दर आने की मनाही कर दी। उस समय घोर सर्दी के दिन थे और कहते हैं कि सम्राट् को स्त्री पुत्र समेत पोप के स्थान के द्वार के पास खुले मैदान में तीन दिन तक लगातार रहना पड़ा और नंगे पाँव आँखों में आँसू भरे हुए पोप की सेवा में घुटने टेकने के लिये घण्टों खड़ा रहना पड़ा परन्तु आज्ञा न पाकर निराश लौट जाना पड़ा। चौथे दिन पोप ने कई साथियों के अनुरोध से उसे अन्दर आने की आज्ञा दी। सम्राट् ने घुटने टेक कर क्षमा-प्रार्थना की और अपने कार्य के लिये खेद और पश्चात्ताप प्रकट किया। इस पर पोप ने उसके विरुद्ध दी हुई आज्ञा को रद्द कर दिया और हेनरी अपने देश में व्यवस्था स्थापित करने लौट गया। इस घटना का वर्णन पोप ग्रेगरी सप्तम ने स्वयं ही बड़े मनोरंजक शब्दों में किया है। हो सकता है कि उसमें कुछ अत्युक्ति हो।

यह असम्भव था कि सम्राट् हेनरी अपने इस अपमान और पोप के क्रूर व्यवहार को भूल जाता। उसने अपनी स्थिति ठीक करके एक सेना लेकर फिर रोम पर आक्रमण किया और ग्रेगरी को घेर

कर देश से बाहर निकाल दिया जहाँ वह १०८५ ई० में मर गया। परन्तु नार्मन लोग पोप की सहायता को आ गये जिससे हेनरी को वहाँ कोई विजय प्राप्त किए बिना ही लौट आना पड़ा। अन्यान्य पोपों ने यह झगड़ा जारी रखा। उन्होंने हेनरी को फिर बहिष्कृत कर दिया। उसके पुत्रों ने भी उससे झगड़ा कर लिया। इस भाँति निराश होकर हेनरी चतुर्थ ११०६ ई० में मर गया।

उसके बाद हेनरी पंचम सम्राट् हुआ। इसके समय में भी यह शत्रुता चलती रही। अन्त में सम्राट् तथा पोप दोनों ने थक कर ११२२ ई० में वर्म्स थान पर सन्धि कर ली जिसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि बिशपों को गिर्जे के अधिकारी ही चुनें परन्तु सम्राट् की उपस्थिति में। बिशपों को छल्ला और दण्ड पोप ही दें परन्तु वे अपने लौकिक अधिकारों—भूमि आदि के लिये—सम्राट् को प्रधान मानें। यदि चुनाव में कुछ गड़बड़ हो तो उसका निर्णय सम्राट् ही करें। इस भाँति और भी अनेक छोटी २ बातें निबटा ली गईं जिसे दोनों दलों ने स्वीकार कर लिया। इस सन्धि के कारण कुछ दिनों तक शान्ति रही।

११३८ ई० में हेनरी के वंश का साम्राज्य होहेनस्टाफन वंश के हाथ में आया और कुछ दिन बाद (११५२) में फ्रेडरिक बारबरोसा (लाल डाढ़ी वाला) जर्मनी का सम्राट् हुआ। इसने जर्मनी की स्थिति कुछ काल के लिये फिर सुधारी और कला तथा व्यापार की वृद्धि की। मेज, कालोन, आग्सबर्ग आदि नगरों की वृद्धि से—जो ड्यूकों के अत्याचारों से बचने के लिये सम्राट् की सहायता के आश्रित रहते थे। तथा रोमन कानून के

प्रचार से—जो फ्यूडल प्रथा का विरोधी था—जर्मनी के सरदारों की शक्ति कम हो गयी थी-अतः सम्राट् को अपनी शक्ति बढ़ाने का अच्छा अवसर मिल गया। फिर भी कई सरदार बहुत प्रबल थे, जिनमें सबसे प्रधान फ्रेडरिक का चचेरा भाई हेनरी जिसे 'सिंह' की उपाधि थी—था। इसने कई बार पूर्व में जाकर वहाँ की जातियों में जर्मन सभ्यता का प्रचार किया था। वैवाहिक सम्बन्धों से वह दो बड़ी जागीरों-बेवारिया और सेक्सनी का मालिक हो गया था। सम्पत्ति और बल में वह सम्राट् के समान ही था।

इस समय इटली के दक्षिण में नार्मन लोगों की शक्ति बहुत बढ़ रही थी। सिसली, दक्षिण इटली तथा नेपिल्स में उनका ही अधिकार था और इन्होंने अपने राज्य की अनेक जातियों को धार्मिक स्वतन्त्रता देकर उनकी सहानुभूति प्राप्त कर ली थी। ये पोप से मित्रता न रखते थे परन्तु सम्राट् के भय से इन्होंने कुछ काल बाद पोप का ही पक्ष लेना उचित समझा।

इसी समय इटली के नगरों में अनेक संघ बन गये थे। व्यापार के कारण जिनकी और भी वृद्धि हुई। इस भाँति जिनोआ, पीसा, फ्लोरेन्स, मिलन और वेनिस सुन्दर और समृद्ध नगर बन गये थे, जो अपना २ प्रबन्ध स्वयं ही करते थे। ऐसी ही स्वतन्त्र संस्था रोम में भी स्थापित थी, जो पोप का भी अधिकार न मानती थी। परन्तु सम्राट् ऐसे धनवान नगरों को छोड़ना न चाहता था। अतः उसने वहाँ की सड़कों और पुलों पर तथा सैनिक प्रबन्ध और मजिस्ट्रेट नियत करने का भी अपना ही अधिकार बताया। इस कारण ये नगर भी उससे रुष्ट होकर पोप

की ओर झुकने लगे। ११५८ ई० में उसने इटली जाकर मिलन पर अधिकार कर लिया और एक सभा बुला कर अपने सब अधिकार उससे स्वीकार करा लिये। लम्बार्डी के कई नगरों ने इसका विरोध किया। उसने आक्रमण कर विद्रोहियों को दबाया परन्तु तीन वर्ष बाद उनके पुनः विद्रोह करने पर उसने उनको दबाकर मिलन को नष्ट कर दिया।

११५६ ई० में पोप के पद के लिये दो उम्मेदवार खड़े हुए। अलक्जंडर तृतीय और विक्टर चतुर्थ। अलक्जंडर साम्राज्य का शत्रु था, अतः सम्राट् ने विक्टर का पक्ष लिया। अलक्जंडर ने उत्तर इटली के असन्तुष्ट लोगों से मित्रता कर ली और इन नगरों ने भी आपस के भेद-भाव छोड़ कर एक लम्बार्ड संघ बना लिया। ११६५ ई० में सम्राट् इटली आया और लम्बार्ड संघ की सेनाओं को हरा कर रोम में घुस गया। परन्तु विजय के समय में ही उसके ऊपर एक दैवी विपत्ती आयी। उसकी सेना में भयंकर प्लेग फैल गया। हजारों सैनिक मर गये। अन्ततः सम्राट् को लौट जाना पड़ा।

दस वर्ष बाद सम्राट् फिर इटली आया। अब उसका हेनरी (सिंह) से—जो अब तक उसे सहायता देता रहा था—झगड़ा हो गया। उसकी सेना का लम्बार्ड संघ की सेना से मिलन नगर के समीप सामना हुआ। संघ की सेना दृढ़ थी। उसने अपने बीच में एक गाड़ी खड़ी कर ली थी जिसमें भिन्न २ नगरों के झण्डे थे, और इनकी रक्षा करने की शपथ सब सैनिकों ने खा ली थी। बड़ी घमासान लड़ाई हुई जिसमें अन्त में सम्राट् की सेना हार गयी। इटली में राज्य करने की सब आशाएँ चली गयीं। अब उसके सामने भी यही उपाय था कि लम्बार्ड संघ के प्रधान और अपने प्रधान शत्रु

अलक्जेंडर तृतीय के सामने क्षमा-प्रार्थना करे। सम्राट् ११७७ ई० में वेनिस के गिर्जे में अलक्जेंडर से मिला और क्षमा-प्रार्थना की। पूरे सौ वर्ष के बाद सम्राट् का पोप के सामने यह दूसरा अपमान तथा आत्म-समर्पण हुआ। यह पहले से भी गहरा अपमान था, क्योंकि सम्राट् ने पोप के सामने घुटने टेककर क्षमा माँगी। जब पोप घोड़े पर चढ़ा तो सम्राट् लगाम थामे रहा। यह उसकी पूर्ण पराजय थी।

अब सम्राट् को केवल अपने ही घर की चिन्ता रह गयी। उसने हेनरी सिंह की सेनाओं को हरा दिया और उसका राज्य कई भागों में बाँट दिया। फिर उसने पूर्व की ओर जाकर वहाँ की जातियों में जर्मन सभ्यता का प्रचार किया। इसी के समय ११५६ ई० में बवेरिया के पूर्व डान्यूब नदी के दक्षिण में एक स्वतंत्र जागीर (डची) स्थापित हो गयी, जिसका नाम आस्ट्रिया था।

जब महान् सम्राट् शार्लमैन के उत्तराधिकारी दो बार पोप के आगे आत्मसमर्पण कर चुके तो यह प्रत्यक्ष था कि अन्य छोटे २ राजा पोप के आगे नहीं टिक सकते। पोप की शक्ति जर्मनी तक ही परिमित न थी, बल्कि समस्त ईसाई यूरोप के सम्राट् उसके आगे मस्तक झुकाते थे। इंगलैण्ड के राजा हेनरी द्वितीय का भी पोप से झगड़ा हुआ जिसके परिणाम स्वरूप उसे नंगी पीठ पर चाबुक खाने पड़े। इसी भाँति फ्रांस के फिलिप आगस्टस और इंगलैण्ड के राजा जॉन को अपमानित होना पड़ा।

अभी सम्राट् और पोप का झगड़ा समाप्त नहीं हुआ था। दोनों के उत्तराधिकारियों में यह कई वर्षों तक और चलता रहा।

फ्रेडरिक बारबरोसा के पुत्र हेनरी षष्ठम के विवाह से समस्त यूरोप के इतिहास पर बहुत प्रभाव पड़ा। इस समय इटली के दक्षिण तथा सिसली में नार्मनों का राज्य शक्तिमान था अतः फ्रेडरिक ने वहाँ के राजा की पुत्री कान्स्टेन्स से हेनरी षष्ठम का विवाह कराया। इस भाँति यह प्रकट था कि अब पोप तथा सम्राट् में झगड़ा होने पर शक्तिमान नार्मन लोग, जो अब तक पोप के सहायक थे अब सम्राट् की सहायता करेंगे।

पोप ने जर्मनी, नेपिल्स और सिसली का इस प्रकार मेल हो जाना बड़े भय के साथ देखा। वह हेनरी को—जो पिता के मरने पर ११९० ई० में सम्राट् हो गया था—दोनों जगहों से हटाना चाहता था। अतः उसने भी कई बार हेनरी से युद्ध किया।

११९७ ई० में हेनरी अपने एक बालक फ्रेडरिक को छोड़ कर मर गया। दूसरे वर्ष इन्नोसेन्ट तृतीय पोप हुआ जिसने ग्रेगरी महान् और ग्रेगरी सप्तम के समान पोप की शक्ति को बहुत ऊँचा कर दिया। उसने पोप तथा सम्राट् के पद में सूर्य तथा चन्द्र का सा सम्बन्ध बताया। उसने कहा कि जिस प्रकार चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से ही चमकता है, इसी भाँति सम्राट् की भी शक्ति पोप की ही दी हुई है। उस समय ऐसी युक्तियों और उपमाओं का बहुत प्रभाव पड़ता था जिससे बहुत लोग सम्राट् के विरुद्ध हो गये। पोप ने जर्मनों को इटली से बाहर निकालने के लिये इटली के लोगों को उसकाया और स्वयं उस दल का मुखिया बन गया।

फिर पोप ने बालक फ्रेडरिक को एक तरफ करके दूसरा सम्राट् नियत करने की इच्छा प्रकट की और इसके लिये दो उम्मेदवार

खड़े हुए। पोप ने हेनरी सिंह के पुत्र ओटो को सम्राट् नियत किया। उसने पोप का बड़ा अहसान माना और कहा—'यदि गिर्जा मेरी सहायता न करता तो मेरा राज्य धूल में मिल चुका था।' परन्तु इन दोनों में भी शीघ्र ही झगड़ा हो गया और पोप ने फ्रेडरिक को ही अब सम्राट् घोषित कर दिया। इस भाँति अन्त में पोप ने एक ऐसे मनुष्य को सम्राट् बना दिया जो शीघ्र ही उसका सबसे प्रबल शत्रु होनेवाला था। सम्राट् फ्रेडरिक द्वितीय बहुत युद्धों के बाद और ओटो को भी हरा कर १२१४ ई० में पूर्ण स्वतंत्र और शक्तिमान हो गया।

पोपों को चाहिये तो यह था कि वे धार्मिक आदर्श स्थापित करते। परन्तु उन्होंने अनेक सांसारिक झगड़ों में पड़ कर यह दिखा दिया कि इतनी बड़ी धार्मिक संस्था भी कृत्यों में नीच हो सकती है। पोपों में राज्यलिप्सा के साथ २ शराबखोरी तथा अन्य कुकर्म भी प्रचलित हो गये थे। परन्तु अंग्रेजी में एक कहावत है कि प्रत्येक काले बादल के किनारे एक श्वेत उज्ज्वल रेखा भी होती है। यही बात तत्कालीन यूरोपीय धर्म के विषय में भी कही जा सकती है। जब पोप सांसारिक झगड़ों में फँसे थे तभी यूरोप में अनेक पवित्र संस्थाओं का भी उदय हो रहा था, जिन्होंने रोम के गिर्जे को रक्षा ही नहीं की बल्कि सहस्त्रों मनुष्यों को पाप और अज्ञान के गर्त में गिरने से बचा लिया। ऐसे ही कुछ साधुओं और आश्रमों का हाल हम पहले पढ़ चुके हैं, किन्तु धीरे २ वहाँ आश्रमों में जीवन बिताने की प्रवृत्ति कम होती गयी। बारहवीं शताब्दी के अन्त में दो और नये साधु-संघ स्थापित हुए। इटली के सन्त फ्रांसिस ने एक नया पंथ चलाया जिसने

साधुओं को नगरों में जाने और रहने की आज्ञा दी। उनका उद्देश मनुष्यों की सेवा के द्वारा ही ईश्वर की सेवा करना था। उन्हें द्रव्य स्वीकार न करने की शपथ खानी पड़ती थी। रोटी के लिये श्रम करना पड़ता था, तथा दीन दुखियों की सहायता करनी पड़ती थी। फ्रांसिस ने स्वयं भी आराम और सम्पत्ति को छोड़ कर दरिद्रतापूर्ण जीवन बिताना स्वीकार किया था। वह खाली हाथ, नंगे पैर घूम कर इटली के लोगों को आराम छोड़कर परमेश्वर की खोज करने का उपदेश देने लगा। उसने कहा कि—'मैं भगवान् ईसा के दारिद्र्यमय जीवन का अनुसरण करना चाहता हूँ तथा आप लोगों को भी धनरहित पवित्र जीवन बिताने को कहता हूँ।' इसी भाँति स्पेन के सन्त डोमिनिक ने एक दूसरा संघ स्थापित किया जिसका उद्देश ईसाई मत का प्रचार करना, धार्मिक मतभेद मिटाना, विषय तथा पापकर्मों का विरोध करना और उपदेश देना था। ये दोनों संघ लोगों को उनकी मातृ-भाषा में ही उपदेश देते थे। इन्हें ब्रह्मचर्य से रहने तथा आपस में प्रेम और भ्रातृभाव से रहने की भी शपथ खानी पड़ती थी। इन संघों का भी कुछ काल तक खूब प्रचार हुआ परन्तु पीछे धीरे २ ये भी धन के लोभ में पड़ कर रुपया जमा करने लगे। अतः अपने उच्च उद्देशों से पतित होते गये। किन्तु इन्होंने एक बड़ा काम किया। हम देख चुके हैं कि इस समय पोप और सम्राटों में अनेक झगड़े चल रहे थे। अब लोग पोप के सांसारिक झगड़ों में पड़ने के कारण उनसे कुछ उकता से गये थे और अप्रसन्न भी थे। अतः यह सम्भव था कि यदि अब झगड़ा हो तो पोप की हार हो जाय। परन्तु इन दो संघों के साधुओं ने पोप

की प्रतिष्ठा को कुछ काल तक और बनाये रखा जिससे उसे आगे भी सम्राट् पर विजय मिली।

अब हमें पोप-सम्राट्-कलह के सूत्र को—जिसे हमने बीच में छोड़ दिया था, फिर ग्रहण करना है। हम देख चुके हैं कि १२१४ ई० में फ्रेडरिक द्वितीय वास्तव में सम्राट् हो गया। वह सीधा सादा, छोटे कद का, और वंश-परम्परा के अनुसार लाल बालों वाला था, परन्तु बड़ा परिश्रमी, विचारवान और शक्तिमान होने के कारण वह 'संसार का आश्चर्य' कहलाता है। वह दक्षिण इटली की भाषा में कविता भी करता था तथा विज्ञान और वेदान्त से भी प्रेम रखता था। उसने ज्ञान के पिपासुओं के लिये नेपिल्स में एक विश्वविद्यालय बनाया, जिससे वहाँ के लोगों को विदेशों में ज्ञान-की भिक्षा माँगने न जाना पड़े। उसने इटली में एक वैद्यक पाठशाला भी खोली और बहुत से जंगली जानवरों का संग्रह किया। इस भाँति उसने अनेक जातियों के विद्वानों और साधारण लोगों को प्रसन्न कर अपनी ओर कर लिया।

परन्तु सम्राट् की यह वृद्धि देख कर पोप बहुत जल रहे थे। अतः उन्होंने सम्राट् को अप्रिय बनाने का उद्योग आरम्भ किया। पोप ने घोषित किया कि सम्राट् ईसाई सिद्धान्तों को नहीं मानता। वह आत्मा की अमरता में विश्वास नहीं करता और इब्राहीम, मूसा और ईसा को तीन बड़े धूर्त बतलाता है।

सम्राट् ने उत्तर में प्रकट किया कि—'मुझे पुरोहितों से कोई द्वेष नहीं है। मैं सबसे छोटे पादरी का भी पिता के समान आदर करता हूँ, यदि वह सांसारिक झगड़ों से दूर रहे। विषयासक्ति तथा लोभ के कारण गिर्जे में अनेक दोष उत्पन्न हो गये हैं और

मैं इन दोषों का तलवार से ही सामना करूँगा। मैं अत्याचारी पोपों के मुँह से अधर्म का परदा दूर करूँगा, उन्हें सांसारिक विषय और शौकीनी त्याग कर, ईसा के पवित्र चरणों पर चलने के लिये बाध्य करूँगा।' उसने कहा कि–'किसी भी साधारण पवित्र मनुष्य को पोप बनाने का अधिकार है और सम्राट् का उतना ही आदर होना चाहिये जितना पोप का होता है।' इस भाँति हम देखते हैं कि फ्रेडरिक द्वितीय के वैसे ही विचार थे जैसे आगे चलकर इँगलैण्ड के राजा हेनरी अष्टम ने प्रकट किये।

फ्रेडरिक ने पोप से वायदा कर लिया था कि वह जर्मनी और सिसली में स्थायी सम्बन्ध स्थापित न करेगा और इटली के राज्य को वह अपने पुत्र हेनरी को, पोप की दी हुई जागीर समझ कर राज्य करने के लिये दे देगा। परन्तु उसने ऐसा न करके इटली में आकर वहाँ के सरदारों को दबा कर अपने अधीन कर लिया और वहीं रहने लगा। सम्राट् को इटली गया हुआ समझ कर जर्मनी के सरदारों ने विद्रोह कर दिया जिसमें सम्राट् का पुत्र हेनरी भी शामिल था। किन्तु सम्राट् ने वहाँ पहुँच कर शीघ्र ही विद्रोह दबा दिया और हेनरी को आजीवन देश निकाला दे दिया।

इस समय ईसाइयों और मुसलमानों में धर्म-युद्ध चल रहे थे। परन्तु अब लोगों में युद्ध के लिये उत्साह कम होता जाता था। धर्म-युद्धों के कारण ही पोप का फ्रेडरिक द्वितीय से झगड़ा हुआ। पोप ने फ्रेडरिक को एशिया में जाकर ईसाई धर्म की रक्षा करने की आज्ञा दी परन्तु फ्रेडरिक इटली में अपनी उपस्थिति आवश्यक समझता था अतः बहुत दिन तक पोप की आज्ञा को टालता रहा और जब पोप ने बहुत जोर

दिया तो ब्रिंडिसी तक जाकर बीमारी का बहाना करके फिर लौट आया। इस पर एकदम आगबबूला होकर पोप (ग्रेगरी नवम) ने फ्रेडरिक को धर्म-बहिष्कृत कर दिया। अन्त में फ्रेडरिक इसी दशा में १२२८ ई० में पूर्व की ओर गया। वहाँ भी उसने सबकी आशा के विरुद्ध आचरण किया। उसका दूसरा विवाह जरूसलेम की रानी से हुआ था और उसकी वहाँ के सैरेसन लोगों से कोई शत्रुता न थी। अतः उसने वहाँ जाकर सैरसिन लोगों से सन्धि करके ईसाई यात्रियों को इतने अधिकार दिलवा दिये थे जितने उन्हें इतने वर्षों तक लगातार युद्ध करने पर भी नहीं मिले थे। वह स्वयं राजतिलक कराके जरूसलेम का राजा भी बन गया परन्तु धर्म-बहिष्कृत होने के कारण किसी ने उसके सिर पर मुकुट न रखा। अतः उसने वेदी से मुकुट उठाकर स्वयं ही अपने सिर पर रख लिया।

जर्मनी को लौटने पर उसे मालूम हुआ कि पोप ने उसी के विरुद्ध धर्म-युद्ध की घोषणा कर दी है और पोप की एक सेना भी नेपिल्स को उजाड़ रही है। अतः उसने शीघ्र ही सेना लाकर पोप की सेना को हरा दिया और १२३० ई० में पोप ने संधि करके उसके विरुद्ध बहिष्कार की आज्ञा को रद्द कर दिया।

परन्तु कुछ दिन तक शान्ति रहने के बाद इससे भी भयंकर झगड़ा आरम्भ हुआ। जब से लम्बार्ड संघ ने फ्रेडरिक बारबरोसा की सेना को हरा दिया था तभी से वहाँ ऐसे संघों की और अधिक वृद्धि हो चली थी। नगर २ में संघ बन गये थे जो सम्राट् का सामना करने को तैयार थे। परन्तु इनमें आपस में मतभेद होने के कारण कुछ नगरों ने सम्राट् का भी साथ दिया। १२३७ ई० में

फिर भारी युद्ध हुआ जिसमें सम्राट् की विजय हुई, परन्तु अब पोप नगरों की सहायता करने को आ गया और उसने सम्राट् को फिर धर्म-बहिष्कृत कर दिया। इसके थोड़े दिन बाद, ग्रेगरी नवम मर गया। उसके उत्तराधिकारी इन्नोसेन्ट चतुर्थ ने—जो पहले सम्राट् का मित्र था—ग्रेगरी की नीति कायम रखी और १२४५ ई० में उसने एक धार्मिक सभा इकट्ठी की।

सभा ने सम्राट् की बहुत निन्दा की और उसको पदच्युत करने का विचार प्रकट किया। उत्तर में सम्राट् ने कहा कि पोप को उसे हटाने का कोई अधिकार नहीं है। उसने कहा कि—'मैंने अपना मुकुट ईश्वर से प्राप्त किया है। पोप, कौन्सिल या कोई शैतान उसे मुझसे छीन नहीं सकता। क्या नीच जन्म का एक मनुष्य सम्राट् को—जिससे ऊँचा या जिसके बराबर भी पृथ्वी पर कोई दूसरा नहीं है—उतारेगा?'

परन्तु पोप ने उसे पदच्युत घोषित करके एक दूसरा सम्राट् नियत कर दिया। बड़ा झगड़ा हुआ। अब साधुओं के दलों ने सम्राट् के विरुद्ध खूब प्रचार किया। फ्रेडरिक १२४७ ई० में इटली के परमा स्थान पर लड़ कर हार गया और तीन वर्ष बाद इस लम्बे झगड़े को अनिश्चित छोड़ कर ही मर गया।

फिर भी फ्रेडरिक द्वितीय ने पोप तथा उसके दल का इतने दिनों तक वीरता से सामना किया था, परन्तु उसके उत्तराधिकारी पोप से झट हार गये। उसकी मृत्यु के चार वर्ष बाद ही राज्य के दो भाग हो गये।

१२६१ ई० में एक फ्रांसीसी अर्बन चतुर्थ पोप हुआ। वह होहेनस्टाफन वंश को शक्तिमान करना चाहता था। उसने फ्रांस

के राजा के भाई, अंजाउ के चार्ल्स को सिसली का राजा बनाया। जिसने १२६६ ई० में फ्रेडरिक द्वितीय के निर्बल उत्तराधिकारी को हराकर और मारकर नेपिल्स पर भी अधिकार कर लिया। मृत राजा के पुत्र ने एक बार फिर विजय पाने का प्रयत्न करना चाहा परन्तु उसकी सेनाएँ हार गयीं और वह—जिसका नाम कानरो-डिनो था—१२६८ ई० में नेपिल्स के बाज़ार में खुले मैदान मार डाला गया। यह इस वंश का अन्तिम सम्राट् था।

इस भाँति कानरोडिनो की मृत्यु से पोप और सम्राट् का लम्बा झगड़ा समाप्त हुआ। यद्यपि इसमें पोप की विजय हुई परन्तु इन्हीं युद्धों में पोप को ऐसे दूषित कार्य, गुप्त संधियां, षड्-यंत्र आदि करने पड़े थे जिससे उनकी प्रतिष्ठा और सर्वप्रियता की जड़ खुद चुकी थी। अतः हम आगे देखेंगे कि फ्रांसीसी शक्ति के सामने ही—जिसकी सहायता से इस समय उसकी भारी विजय हुई थी—तीस वर्ष बाद पोप की सबसे बड़ी पराजय हुई।

सैंतीसवाँ अध्याय

पवित्र धर्म युद्ध (क्रूसेड)

यूरोप के मध्यकालीन इतिहास में धर्म-युद्धों को भी एक महत्त्व-पूर्ण स्थान प्राप्त है। अतः हमें पहले यह जानना चाहिये कि ये युद्ध क्यों हुए और किससे हुए ? पहले प्रश्न के उत्तर में

एक लेखक का कहना है कि उस समय यूरोप में पागलपन की एक लहर आ गयी थी। इसीसे ये युद्ध हुए। किन्तु ऐतिहासिक उत्तर संक्षेप में यह है कि यूरोप के ईसाई लोगों ने जरूसलेम आदि अपने पवित्र स्थान विधर्मी मुसलमानों के हाथ से छुड़ाने के लिये ये युद्ध किये। ये युद्ध लगभग दो शताब्दियों तक चलते रहे। इस भाँति यह ईसाई तथा इस्लाम धर्मों की एक टक्कर थी अथवा दूसरी भाँति यों भी कह सकते हैं कि यह पूर्व-पश्चिम युद्ध के उस लम्बे नाटक का दूसरा अध्याय था जिसका आरम्भ यूनानी तथा फारसीयों के बीच के युद्धों से हुआ था।

हिन्दू तथा इस्लाम धर्म के समान ही ईसाई धर्म में भी तीर्थ-यात्रा को बहुत महत्व दिया गया है। पश्चिमी यूरोप के लोग ईसाई होते ही संसार के हितकारी प्रभु यीशु की बलिवेदी के दर्शन करने फिलिस्तीन जाने लगे थे। उस समय इस लम्बी यात्रा में बहुत कष्ट होता था। अतः बहुत कम लोग वहाँ जाते थे और जो जाते भी थे वे समुद्र होकर जाते थे। परन्तु मागयारों के ईसाई होते ही ईसाइयों को आस्ट्रिया तथा हँगरी होकर पूर्व की ओर जाने का मार्ग खुल गया। अतः ग्यारहवीं शताब्दी में तीर्थ-यात्रा की ऐसी लहर आयी कि फिलिस्तीन की ओर जानेवाली सड़कों पर प्रतिमास तथा प्रतिसप्ताह सैकड़ों और कभी २ सहस्रों मनुष्यों के झुण्ड जाते दिखाई देते थे।

परन्तु ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में ही पूर्व में भी एक भारी परिवर्तन हो गया। अब तक फिलिस्तीन आदि में खलीफाओं का राज्य था जो ईसा के प्रति श्रद्धा रखने के कारण ईसाई यात्रियों से छेड़-छाड़ न करते थे। परन्तु १०५५ ई० में एक तातारी जाति

ने--जो सलजक तुर्क कहलाती थी, वहाँ पर आक्रमण किया और सीरिया, फिलिस्तीन आदि बड़ी सरलता से उनके हाथ में आ गये। ये कट्टर मुसलमान थे। अतः इन्होंने ईसाई यात्रियों के साथ बड़ी निर्दयता का व्यवहार आरम्भ कर दिया और अनेकों को कष्ट दे दे कर मार डाला। अनेक गिर्जे नष्ट कर दिये गये और कुछ घोड़ों को बाँधने के लिये अस्तबल बना लिये गये। इन समाचारों से यूरोप के लोगों में बड़ी उत्तेजना फैली। अब तक तीर्थ-यात्रा करना पुण्य का काम समझा जाता था, परन्तु पवित्र स्थानों को विधर्मियों से छुड़ाने में और भी अधिक पुण्य था। इसी कारण यात्री बदल कर लड़ाके हो गये और यात्रा धर्म-युद्ध के रूप में बदल गयी। इस युद्ध में गिर्जे ने बहुत सहायता दी। आरम्भ में तो ईसाई धर्म में युद्ध करना बहुत बुरा समझा जाता था परन्तु युद्धप्रिय गोथ, हूण, नार्मन आदि जातियाँ जब ईसाई हो गयीं तो उनकी युद्ध-प्रियता का ईसाई धर्म पर भी प्रभाव पड़ा। दूसरे इस्लाम-धर्म में शस्त्रबल द्वारा प्रचार-कार्य होता देख कर ईसाई धर्म में भी परिवर्तन हुआ। इन कारणों से ईसाई धर्म में भी वीरता और युद्ध-प्रियता का संचार हो गया जिससे वह युद्ध का समर्थन करने लगा। पोप ने इन युद्धों को धार्मिक बताया और लड़ने वालों को जमा करके संगठित किया।

सबसे पहले पीटर नाम के एक साधु ने ईसाइयों में मुसलमानों के विरुद्ध क्रोधाग्नि फैलाई। उसने बड़ी ओजस्वी भाषा में मुसलमानों के अत्याचारों का गली २ घूम कर वर्णन किया और उनसे बदला लेने का भी उपदेश दिया। लोग उसे बड़े आदर से देखने लगे और स्वर्गीय दूत समझने लगे। उसका

गधा भी-जिस पर बैठ कर वह फिरता था—बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाने लगा। वह एक बड़ा दल बटोर कर पूर्व में ले गया परन्तु उसे शीघ्र ही मुसलमानों की तलवार का मजा चखना पड़ा।

परन्तु धर्म-युद्धों का आरम्भ पोप अर्बन द्वितीय के घोषणा करने के समय से समझा जाता है। शार्लमैन की मृत्यु के बाद से पूर्वी साम्राज्य का इतिहास यूरोपीय इतिहास से अलग सा हो गया था। रोम से उसके कई बार धार्मिक झगड़े भी हो चुके थे परन्तु वहाँ रोमन सभ्यता तथा कानून का प्रचार था। १०९५ ई० में सलजक तुर्क कुस्तुन्तुनिया तक बढ़ आये। अतः वहाँ के सम्राट् एलेक्सिसस ने पोप को लिखा कि आप शीघ्र सहायता भेजें नहीं तो कुस्तुन्तुनिया और उसके साथ रोमन सभ्यता का नाश होना ही चाहता है। इस अपील पर विचार करने के लिये पोप ने वीर-भूमि फ्रांस को उपयुक्त स्थान समझा और वहीं क्लरमोन्ट स्थान पर एक सभा बुलाई जिसमें आर्क-बिशप, २२५ बिशप, सहस्रों छोटे धार्मिक अधिकारी तथा असंख्य मनुष्य सम्मिलित हुए। पोप ने बड़े ज़ोरदार शब्दों में लोगों से पूर्व में जाने के लिये अपील की। उसने कहा कि—"जब स्वयं ईसामसीह तुम्हें बुला रहे हैं तो तुम्हें सांसारिक प्रेम के कारण रुकना न चाहिये। जो कोई भी अपने माता, पिता, पुत्रों तथा सम्बन्धियों को छोड़ कर वहाँ जायगा उसे अपने त्याग का सौगुना बदला मिलेगा और वह अमर हो जायगा।"

यह अपील सुन कर लोगों में बड़ा उत्साह फैला और सहस्रों मनुष्य उसी समय ज़ोर २ से जाने के लिये चिल्लाने

लगे। इस भाँति १०९५ के मध्य में एक बड़ी सेना—जिसमें विशेषतया फ्रांस और इटली के लोग थे और जिनमें सरदार और जागीरदार, अमीर गरीब, साधु तथा पापी जन सभी सम्मिलित थे—पूर्व की ओर चल दी और भिन्न २ मार्गों से आकर कुस्तुन्तुनिया में जमा हुई। यहाँ से सीरिया गई परन्तु मार्ग में बहुत से सैनिक यूरोप लौट गये। जो बचे थे उनमें से आधे से अधिक सीरिया के मार्ग में मारे गये। इस भाँति जरूसलेम तक पहुँचते २ केवल १५००० रह गये थे। ज्योंही जरूसलेम के ऊंचे २ शिखर इनको दिखायी देने लगे इनमें बड़ा हर्ष फैला, वे अपने जूते और टोप उतार कर चलने लगे और नगर के पास पहुँच कर उसके चारो ओर एक जुलूस निकाला। १५ जुलाई सन् १०९९ ई० को भारी लड़ाई हुई जिसके अन्त में इन्होंने जरूसलेम पर अधिकार कर लिया और असंख्य मुसलमानों को मारा, क्योंकि विधर्मियों को मारना पुण्य का काम था। इन्होंने पोप को एक पत्र में लिखा—'आठ दिन बाद ईश्वर ने उस नगर को और अपने शत्रुओं को हमारे हवाले कर दिया। यदि आप यह जानना चाहें कि विधर्मियों के साथ हमने क्या किया तो इतना काफी है कि सुलेमान के मन्दिर में हमारे सवारों के घोड़ों ने शत्रुओं के घुटने तक रक्त में प्रवेश किया।' यह प्रथम धर्म युद्ध हुआ।

यह राज्य चार भागों में बाँट दिया गया। जरूसलेम, जर्मन नाइटों के सरदार गोडफ्रे को मिला जिसके कारण विजय हुई थी।

अब कठिनता से जीते हुए इन देशों तथा वहाँ के यात्रियों की रक्षा के लिये नाइटों के कई धार्मिक संघ बने जैसे नाइट

टैम्पलर्स, सन्त जान के नाइट, ट्यूटोनिक नाइट आदि । ये साधुओं के समान शुद्ध तथा सिपाहियों के समान युद्धप्रिय रहते थे ।

जरूसलेम में गये हुए ईसाइयों में शीघ्र ही फूट पड़ी । पूर्वी सम्राट् अपने देश का व्यापार नष्ट हो जाने के कारण अप्रसन्न था। उधर ईसाइयों की संख्या भी कम हो गई थी क्योंकि जरूस-लेम छीनने की शपथ पूरी करके बहुत से लोग अपने २ घरों को लौट गये थे । ११४४ ई० में उनकी एक रियासत छिन गई और वहाँ के ईसाई कत्ल कर दिये गये । इस समाचार से यूरोप में फिर बड़ा भय फैला । पीटर की भाँति इस बार एक बिशप सन्त बरनार्ड ने वैसा ही उपदेश दिया । यूरोप में फिर वैसे ही दृश्य उपस्थित हो गये । इस बार फ्रांस के राजा लुई सप्तम और जर्मन सम्राट् कोनराड तृतीय ने भी कुछ सहायता दी परन्तु यह सेना जरूसलेम से हार कर लौट आई ।

इस समय पूर्व में सलादीन नाम का एक प्रबल सुलतान गद्दी पर बैठा जिसने सब मुसलमानों को एकत्र और संगठित किया । वह बड़ा वीर, साहसी और साथ ही उदार भी था । उसने ११८७ ई० में फिर जरूसलेम ले लिया । अब फिर यूरोप में बड़ा शोक फैला तीसरे धर्मयुद्ध की घोषणा की गई । इस बार जर्मन सम्राट् फ्रेडरिक बारबरोसा, फ्रांस का राजा फिलिप आग-स्टस तथा इँगलैंड का राजा रिचार्ड भी अपने २ आन्तरिक झगड़े छोड़ कर सेना ले २ कर पूर्व की ओर चल दिये । फ्रेडरिक मार्ग में एक नदी में डूब गया और उसकी सेना कठिनाइयों से लड़ कर लौट आयी । शेष दोनों में झगड़ा हो गया जिससे कुछ दिन बाद फिलिप भी लौट आया । रिचार्ड ने कुछ विजय प्राप्त की

और मिश्र के उत्तर में एकर स्थान पर घेरा डाला। परन्तु उसमें सलादीन के समान दया न थी। सलादीन ने जरूसलेम के सब क़ैदियों को मुक्त कर दिया था परन्तु रिचार्ड ने एकर के सब क़ैदियों को क़त्ल करवा दिया। अन्त में सलादीन ने उसे हरा कर भगा दिया।

पोप इनोसेन्ट तृतीय के समय में १२०२ ई० में चतुर्थ धर्म-युद्ध की घोषणा की गई। इसमें फ्रांस के सरदारों ने भाग लिया था। ये लोग जहाजों में बैठ कर सीरिया जाने के लिये वेनिस पहुँचे। वेनिस को इन युद्धों के समय में पूर्वी देशों के व्यापार द्वारा खूब धनवान होने का अच्छा अवसर मिल गया था और कुस्तुन्तुनिया का सब व्यापार उसने अपने हाथ में कर लिया था। किन्तु वह अपना व्यापार और भी बढ़ाना चाहता था। अब भी एड्रियाटिक सागर की दूसरी ओर जारा नगर व्यापार में उसका प्रतिद्वन्द्वी था। अतः वेनिस के ड्यूक ने युद्ध के लिये जहाज माँगने वालों से कहा कि यदि तुम लोग पहले जारा को नष्ट कर दो तो पूर्व में जाने के लिये जहाज मिल सकते हैं। अन्त में जारा नगर नष्ट कर दिया गया परन्तु फिर भी यह सेना जरूसलेम न गयी क्योंकि कुस्तुन्तुनिया में इसी समय गद्दी के लिये झगड़ा आरम्भ हुआ। मृत सम्राट् के पुत्र एलेक्सिस ने अपने चाचा के विरुद्ध—जो सम्राट बन गया था—धर्म युद्धवालों से सहायता की प्रार्थना की तथा अनेक व्यापारिक सुविधाएँ और द्रव्य देने का भी वादा किया। इस भाँति ये लोग जो ईसाई धर्म का चिन्ह क्रॉस धारण करके विधर्मियों से लड़ने जा रहे थे, एक ईसाई नगर के विरुद्ध और ऐसे नगर के विरुद्ध जिसने शता-

ब्दियों तक मुसलमानों से यूरोप तथा उसकी सभ्यता की रक्षा की थी, लड़ने चल दिये। इन्होंने एलेक्सिस (चतुर्थ) को सम्राट् बनाया परन्तु वहाँ की विद्रोही जनता ने उसे मार डाला। इस पर इन धर्म-युद्धवालों ने कुस्तुन्तुनिया में ऐसी भारी लूट मार की जैसी एक आँख से देखे हुए गवाह के अनुसार उस समय तक संसार में कहीं नहीं हुई थी। प्राचीन कला की शताब्दियों की संग्रहीत अमूल्य वस्तुएँ सब नष्ट कर दी गईं, सोने चाँदी की चीजें बाँट ली गईं और नागरिक खूब कत्ल किये गए। वहाँ के प्रचलित धर्म के स्थान पर रोम का धर्म स्थापित कर दिया गया और अपने में से ही एक मनुष्य फ्लैन्डर्स का बाल्डविन सम्राट् बना दिया गया। अनेक भाग व्यापार के लिये वेनिस ने ले लिये। यद्यपि वहाँ के लोगों ने राष्ट्रीय तथा धार्मिक जोश के कारण १२६२ ई० में, ५७ वर्ष बाद फिर वहाँ अधिकार कर लिया परन्तु वह साम्राज्य १२०४ ई० की भारी क्षति की पूर्ति करने में कभी समर्थ न हुआ। वह सदा निर्बल ही बना रहा और दो शताब्दियों बाद तुर्कों की प्रबल शक्ति के आगे शीघ्र ही हार गया।

इस समय से धर्मयुद्धों का लक्ष्य और संगठन सब बदल गया। अपने स्वार्थ के लिये पोप किसी भी युद्ध को धर्मयुद्ध कहने लगे। अतः आगे के धर्मयुद्धों की संख्या भी ठीक नहीं है।

थोड़े ही वर्षों में मिश्र के सुलतान ने शक्तिमान हो कर ईसा-ईयों को जरूसलेम से निकाल दिया। १२४४ ई० के बाद से वह कभी ईसाई शक्तियों के हाथ में न गया। १२७० ई० में फ्रांस के सन्त लुई की मृत्यु से ईसाइयों को अन्तिम असफलता मिली। और लगातार इतने वर्षों के त्याग, युद्ध और रक्तपात का सब

परिणाम धूल में मिल गया। ईसाई फिलिस्तीन से निकाल दिये गये।

इन युद्धों का परिणाम यह हुआ कि यद्यपि सलजक तुर्कों की यूरोप में कुछ काल के लिए वृद्धि रुक गयी परन्तु यदि वे बढ़ते तो उन्हें रोकने योग्य कोई शक्ति न रही थी और वे शीघ्र यूरोप के बहुत से भाग पर अधिकार कर सकते थे। दूसरे इन युद्धों के कारण इटली के नगरों के व्यापार की खूब वृद्धि हुई और जिनोवा, पीसा, वेनिस आदि नगर बड़े समृद्धिशाली हो गये। राजनैतिक परिणाम यह हुआ कि शक्तिमान सरदारों के इन युद्धों में नष्ट हो जाने के कारण राजाओं को अपनी शक्ति दृढ़ करने का खूब अवसर मिला। फ्रांस के सरदारों ने इन युद्धों में अधिक भाग लिया था। अतः फ्रांस की राजशक्ति भी खूब दृढ़ हो गई। इस भाँति फ्यूडल प्रथा की अवनति हुई। पूर्व में ईसाई धर्म की वृद्धि रुक गयी और रोड्स और साइप्रस द्वीपों को छोड़कर—जो १६ वीं शताब्दी तक ईसाइयों के हाथ में रहे—शेष सब स्थानों से ईसाई निकाल दिये गये। इसके अतिरिक्त पूर्व की जातियों के संसर्ग से जो विद्या और सभ्यता में उस समय की यूरोपीय जातियों से बहुत बढ़ी थी—यूरोप में साहित्य की भी वृद्धि हुई और लोगों का भौगोलिक ज्ञान बढ़ा।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

केन्द्रित तथा शक्तिमान राज्यों की स्थापना

तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दियों में यूरोप के नगरों की बहुत वृद्धि हुई तथा फ्यूडल प्रथा की अवनति होती गई। इन दोनों कारणों से राजाओं की शक्ति बहुत बढ़ गयी और देशों में एकता स्थापित हुई।

हम देख चुके हैं कि इंगलैण्ड में नार्मन लोगों को ११५४ ई० में हटा कर हेनरी द्वितीय ने एक वंश की स्थापना की, जो प्लान्टेजेनट कहलाता है। हेनरी द्वितीय का पोप से झगड़ा हो गया। इस समय ऐसा नियम था कि महन्तों तथा पुजारियों के अपराधों का निर्णय राजा के न्यायालय में न होता था। पुजारी चाहे जितना भारी अपराध करें, उन्हें गिर्जे के अधिकारियों द्वारा नाममात्र का दण्ड दिया जाता था। हेनरी ने इस भेद-भाव को दूर करना चाहा परन्तु केन्टरबरी के आर्क बिशप और पोप ने इसका विरोध किया। अन्त मे गिर्जे में ही राजा के चार नाइटों ने आर्क बिशप बेकेट को राजा के इशारे से मार डाला। लोगों ने उसे शहीद माना और राजा को हार माननी पड़ी।

११८९ ई० में हेनरी की मृत्यु पर उसका पुत्र रिचार्ड राजा हुआ जो धर्म युद्ध में गया था। दस वर्ष बाद यह भी मर गया और जॉन राजा हुआ। यह बड़ा निर्बल राजा था। अतः फ्रांस के

राजा ने इसके फ्रान्स के देश छीन लिये परन्तु इसका अच्छा परिणाम यह हुआ कि जॉन को केवल इंगलैण्ड की ओर ध्यान देने का पूरा अवसर मिला। इसी के समय में सन १२१५ ई० में इंगलैण्ड के सरदारों और साधारण जनों ने मिलकर एक स्वतंत्रता पत्र (मेग्नाकार्टा) स्वीकार कराया जिससे वहाँ के लोगों को बहुत से अधिकार मिले और न्याय में भी सुधार हुआ। इसके उत्तराधिकारी हेनरी तृतीय के समय में प्रजा ने और भी अधिक अधिकार पाये। १२६५ ई० में प्रतिनिधि-सभा (हाउस आफ कामन्स) की स्थापना हुई।

१२७२ ई० में एडवर्ड प्रथम राजा हुआ और १३०७ ई० तक रहा। इसने १२८२ ई० में सेना लेकर वेल्स को जीत लिया और अपने पुत्र को वहाँ का राजकुमार नियत कर दिया। तब से आज तक इंगलैण्ड के राजा का बड़ा पुत्र प्रिन्स आफ वेल्स कहलाता है। इसी के समय में स्काटलैण्ड से भी झगड़ा आरम्भ हुआ जो अनेक वर्षों तक चला।

इसके उत्तराधिकारी तीन राजा और हुए जिनके समय में शतवर्षीय युद्ध का आरम्भ हो गया। १३९९ ई० में लंकेस्टर घराने के हेनरी चतुर्थ ने अपने वंश का आरम्भ किया। इसके उत्तराधिकारी हेनरी पंचम तथा षष्ठ के समय में शतवर्षीय युद्ध समाप्त हुआ।

१३४७ ई० से १३५० ई० तक इंगलैण्ड में भारी प्लेग फैला रहा जिसमें हजारों मनुष्य मर गये और सैकड़ों गांव नष्ट हो गये।

लंकेस्टर घराने के बाद लगभग पच्चीस वर्ष तक यार्क घराने के राजाओं का राज्य रहा। इनके समय में भी आन्तरिक

युद्ध खूब ज़ोर से चलते रहे। अन्त में ट्यूडर घराने के हेनरी सप्तम ने आकर देश में शान्ति स्थापित की और अपनी शक्ति खूब बढ़ायी।

इसी समय फ्रान्स में भी राजा की शक्ति खूब बढ़ रही थी जिससे जर्मनी के होहेनस्टॉफन वंश का अन्त हो जाने पर फ्रान्स ने ही सम्राटों की नीति और पोप-सम्राट्-युद्ध को जारी रखा। उसीने—जैसा कि हम आगे देखेंगे—पोप को भारी पराजय देकर फ्रेडरिक बारबरोसा और फ्रेडरिक द्वितीय की हार का बदला लिया।

हम देख चुके हैं कि ८४३ ई० की वर्डून की सन्धि के अनुसार शार्लमैन का साम्राज्य तीन भागों में बँट गया। इसके बाद डेढ़ सौ वर्ष तक पूर्वी भाग में बड़ी अव्यवस्था मची रही। नार्मन, सैरे-सिन आदि जातियों के आक्रमण होते रहे जिससे फ्यूडल प्रथा की बहुत वृद्धि हुई और वहाँ कई सरदार—यथा फ्लैन्डर्स, शैम्पेन, नार-मन्डी, बरगन्डी, एक्विटेन आदि में पूर्ण स्वतंत्र तथा शक्ति में राजा के समान ही हो गये।

उस समय यह अनुमान हो रहा था कि फ्रांस कभी शक्ति-मान न होगा परन्तु ९८७ ई० में आरलीन्स और पेरिस आदि के एक सरदार ह्यू कैपट ने आस-पास के सब सरदारों को हराकर अपने को सब से अधिक शक्तिमान बना लिया और विस्तार भी बहुत बढ़ाया। पोप ने जर्मनी के सम्राट् से झगड़ा होने के कारण कैपेट से मित्रता कर ली जिससे उसका प्रभाव और भी बढ़ गया। सरदारों को शीघ्र ही उसकी अधीनता स्वीकार कर लेनी पड़ी। फ्रान्स राज्य की स्थापना हो गई और उसके वंशजों ने लगातार चौदह पीढ़ी

तक राज्य किया। १३२८ ई० तक वहाँ का कोई राजा निपुत्री नहीं हुआ।

१०६०ई०से११०८ई०तक कैपेटके प्रपौत्र फिलिप प्रथम ने राज्य किया। इसके समयसे ही राजाको शक्ति और भी बढ़ती गई। १०६६ ई० में नारमन्डी के ड्यूक विलियम ने इंगलैण्ड पर अधिकार कर लिया जिसमें उसकी शक्ति का केन्द्र फ्रांस से हट कर इंगलैण्ड हो गया। इस भाँति फ्रांस के राजा फिलिप की एक प्रबल सरदार के विषय की चिन्ता दूर हो गयी। १०८५ ई० में पहले धर्म-युद्ध की घोषणा हुई। फ्रांस के अनेक सरदार पूर्व में पहुँचे, जिनमें से बहुत से कभी न लौटे। इस भाँति राजा के सामना करने वाले अनेक सरदार दूर हो गये और फिलिप को अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर मिल गया।

११८० ई० में फिलिप द्वितीय अथवा फिलिप आगस्टस राजा हुआ। इसने इँगलैण्ड के निर्बल राजा जॉन से नारमन्डी तथा अंजाउ आदि प्रान्त छीन कर अपना विस्तार और भी बढ़ाया। उसने कई नगरों को आन्तरिक स्वतंत्रता देकर प्रसन्न किया। अपने अफसरों को प्रधानतया मध्य श्रेणी में से चुना, जिससे साधारण लोग उससे प्रसन्न हो गये। उसने पादरियों और यहूदियों से भी, उन्हें प्रसन्न करके रुपया वसूल किया और अपनी ही एक बड़ी सेना तैयार की जो सब भाँति विश्वसनीय थी।

१२२६ ई० से १२७० ई० तक उसके नाती लुई नवें ने राज्य किया। यह बड़ा धर्मात्मा था, नित्य घन्टों पूजा किया करता था। साधारण वस्त्र पहिनता तथा भँगतों और बीमारों के पैर

धोता था। इस भाँति उसने 'सन्त' की पदवी प्राप्त की। फिर भी वह शक्तिमान और राजनीतिज्ञ था।

लुई सन्त को निर्बल समझकर १२४१ में फ्लेन्डर्स, ब्रिटेनी, बरगन्डी, गेस्कनी आदि के सरदारों ने मिलकर उस पर आक्रमण कर दिया परन्तु शीघ्र ही उनको हारना पड़ा। इसके बाद किसी सरदार को राजा का सामना करने का साहस न हुआ।

उसने धार्मिक मत-भेद मिटाने के लिये राज्य में इनक्विज़िशन नामक एक सभा स्थापित की। यह उस पर बड़ा दोष लगाया जाता है। इसी का भाई अंजाउ का चार्ल्स सिसली और नेपिल्स का राजा बनाया गया था जिससे राजा की प्रतिष्ठा और भी बढ़ गयी। इसने दो बार धर्म-युद्धों में भाग लिया। वहाँ वह प्लेग से मर गया। इसीने 'पार्लमेन्ट आफ पेरिस' की स्थापना की जिसका काम राज्य भर की अपीलें सुनना और सरदारों के विरुद्ध राजा के अधिकारों की रक्षा करना था।

लुई सन्त के बाद उसका पौत्र फिलिप चतुर्थ राजा हुआ (१२८५–१३१४)। यह बड़ा दृढ़ तथा क्रूर था। १२९५ ई० में उसने आज्ञा निकाली कि सब पादरियों को भी कर देना चाहिये। पोप ने इसका विरोध किया और पादरियों को कर देने से मना किया। इस पर राजा ने इटली जाने वाला सब प्रकार का रुपया बन्द कर दिया। निदान हारकर पोप को सन्धि करनी पड़ी। पादरियों को कर देने की आज्ञा निकालते समय फिलिप ने राज्य के सब प्रतिनिधियों की एक सभा बुलायी थी। अब तक वहाँ केवल सरदारों और पादरियों के ही प्रतिनिधि सभाओं में जाते थे परन्तु फिलिप ने जनसाधारण के भी जो 'टायर्स एटाट'

के नाम से प्रसिद्ध थे प्रतिनिधि सम्मिलित किये। इस भाँति प्रतिनिधि सभा पूर्ण हो गयी और 'स्टेट्स-जनरल' कहलाने लगी। फिर फिलिप ने टैम्पलर्स दल के नाइटों को जो बहुत सी भूमि पर अधिकार कर बैठे थे और खूब धनवान हो गये थे पकड़वा कर उन पर अनेक अभियोग लगाये और उन्हें दण्डित कर सब भूमि तथा सम्पत्ति अपने अधिकार में कर ली।

परन्तु अभी फिलिप का पोप से झगड़ा समाप्त नहीं हुआ था। इस समय पोप की स्थिति बड़ी निर्बल थी। उसका कोई मित्र न था। उसने सिसली में लुई सन्त के भाई चार्ल्स को राजा बनाकर अपना मित्र कर लिया था। परन्तु १२८० ई० में वहाँ के लोगों ने विद्रोह करके बहुत से फ्रांसीसियों को मार डाला। और स्पेन के एक पूर्वी प्रान्त एरेगान के राजकुमार को अपना राजा बनाया। इटली के नगरों ने भी—जो अब तक पोप का साथ देते रहे थे--जर्मन सम्राटों की शक्ति नष्ट हो जाने से पोप का साथ देने की आवश्यकता न समझी। इसके अतिरिक्त अब पोप के प्रति श्रद्धा भी कम हो चली थी। कोई नया धार्मिक संघ अब न बना और पुराने संघ अपने आदर्शों से गिर गये। इन कारणों से पोप सब भांति से निर्बल थे।

ऐसे समय में १२९४ ई० में बोनीफेस आठवाँ पोप हुआ। इसने ग्रेगरी सप्तम और इनोसेन्ट तृतीय के पद-चिन्हों पर चलने का निश्चय किया। उसने भी राजाओं के ऊपर अपना अधिकार बताया। उसने कहा कि यदि लौकिक शक्ति कोई अपराध करे तो उस पर विचार करने का अधिकार धार्मिक शक्ति को है, परन्तु यदि धार्मिक शक्ति अपराध करे तो उस पर केवल ईश्वर

ही विचार कर सकता है। १३०० ई० में उसने रोम में एक बड़ा भारी उत्सव मनाया जिसमें उसने पहले पोप के समान प्रकट किया कि पोप के पास दो तलवारें हैं—धार्मिक और लौकिक। इस कारण वह पोप और सम्राट् दोनों की पोशाकें धारण करके सिंहासन पर बैठ गया।

शीघ्र ही पोप का फिलिप चतुर्थ से झगड़ा आरम्भ हुआ। फिलिप ने एक बिशप को राजहत्या करने के षडयन्त्र में सम्मिलित होने के कारण क़ैद कर लिया। पोप ने कहा कि राजा को बिशपों की जाँच करने का कोई अधिकार नहीं। अतः उसकी जाँच रोम में होनी चाहिये। फ्रांस में इंगलैण्ड के हेनरी द्वितीय की सी अवस्था उपस्थित हो गयी। दोनों ने एक दूसरे के विरुद्ध कड़े आज्ञा-पत्र निकाले। इस झगड़े को मिटाने के लिये राजा के मन्त्री नोगारत ने एक युक्ति सोची। उसने फ्रांस में रहनेवाले पोप के शत्रुओं से मिल कर पोप को ही पकड़वा कर क़ैद कर लिया। इस समाचार को सुन कर पोप पहले से ही अपनी पूरी पोशाक में, सिर पर मुकुट रख कर व हाथ में क्रास धारण करके बैठ गया था। आक्रमणकारियों ने उसके पास पहुँच कर उसकी दिल्लगी उड़ाई और कहते हैं कि एक ने पोप के मुँह में घूँसा भी मारा। इस भाँति फ्रांस के राजा ने अन्त में पोप का घोरतर अपमान किया। परन्तु इस अत्याचार से लोग पोप के दोषों और बुरे व्यवहारों को भूल गये और उसके प्रति सहानुभूति दिखाने लगे। उन्होंने विद्रोह करके पोप को क़ैद से छुड़ा लिया परन्तु वह बूढ़ा हो गया था तथा भारी अपमान सह चुका था। अतः शीघ्र मर गया। इसके तीन वर्ष बाद क्लेमेण्ट पंचम पोप हुआ,

जिसने फ्रांस के राजा का प्रभुत्व स्वीकार कर उसे सहायता देने का वचन दिया और फ्रांस की भूमि में एविगनान स्थान में रहने लगा।

१३२८ ई० में केपट के वंश का राज्य इसकी एक शाखा के हाथ में आया। फिलिप षष्ठ, जॉन, चार्ल्स पाँचवाँ, छठा, सातवाँ, लुई ग्यारहवाँ तथा चार्ल्स आठवाँ राजा हुए। इसके राज्य में शत-वार्षिक युद्ध हुआ और राजाओं की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गयी।

यहीं पर हमें शत वर्षीय युद्ध का भी वृत्तान्त समाप्त कर देना चाहिये। फिलिप चतुर्थ १३१४ में मर गया। इसके तीन पुत्र थे और एक पुत्री जिसका विवाह इंगलैण्ड के एडवर्ड द्वितीय से हुआ था। उत्तराधिकार के विषय में कोई आशंका न थी परन्तु फिलिप के तीनों पुत्र—लुई दशम, फिलिप पंचम तथा चार्ल्स चतुर्थ—चौदह वर्ष तक क्रम से राज्य करके सब निपुत्र मर गये। अतः १३२८ ई० में उत्तराधिकार के लिये इतना बड़ा झगड़ा खड़ा हुआ जैसा इतिहास में उस समय तक कभी नहीं हुआ था। फिलिप चतुर्थ की पुत्री आइज़ाबेला का पुत्र इंगलैण्ड का एडवर्ड तृतीय सब से नजदीकी पुरुष उत्तराधिकारी था, परन्तु फिलिप चतुर्थ के दो भाई और थे और उन दोनों के पुत्र और नाती थे। अतः उन्होंने एडवर्ड तृतीय का उत्तराधिकार रोकने के लिये एक प्राचीन नियम—'सैलिक लॉ'—का हवाल दिया जिसके अनुसार पुत्री राज्य की उत्तराधिकारिणी नहीं हो सकती थी। इस भाँति फिलिप चतुर्थ का एक भतीजा फिलिप षष्ठ १३५० ई० तक राजा रहा। परन्तु इंगलैण्ड ने अपना अधिकार न छोड़ा और फ्रान्स के उत्तर पूर्वी प्रान्त फ्लैन्डर ने भी इंगलैण्ड को बहुत सहायता दी।

१३३८ ई० में युद्ध-घोषणा कर दी गयी और यह युद्ध द्रव्य के अभाव, थकावट आदि कारणों से रुक रुक कर सौ वर्ष से अधिक तक चलता रहा। बीस वर्ष तक इंगलैण्ड की खूब विजय रही। उसके लम्बे बाणों और सेनापति 'ब्लैक प्रिन्स' के कारण फ्रान्सीसियों की १३४६ ई० में कैले के पास क्रेसी स्थान पर भारी पराजय हुई। फ्रांसीसी वहाँ से निकाल कर अंग्रेज बसा दिये गये।

इसी भाँति बहुत दिनों तक फिर झगड़ा चलता रहा जिसमें अंग्रेजों की भी कई बार हार हुई। १३७७ ई० में एडवर्ड तृतीय की मृत्यु के समय फ्रान्स में कैले, बोर्डो तथा कुछ आस पास की भूमि छोड़ कर इंगलैण्ड का कुछ अधिकार न रहा था।

१३८० ई० में फ्रान्स में चार्ल्स षष्ठ नाम का एक निर्बल और पागल राजा हुआ। यह देखकर इंगलैण्ड के हेनरी पञ्चम ने एक भारी सेना लेकर फ्रान्स पर चढ़ाई कर दी। एक बार वह हारा भी परन्तु १४१५ ई० में एजिन्कोर्ट की भारी लड़ाई में उसने फ्रान्सीसियों को फिर हरा दिया।

परन्तु फ्रांसीसियों की देश-भक्ति अभी नष्ट नहीं हुई थी। अतः जब पागल चार्ल्स मर गया तो उन्होंने फिर युद्ध जारी रखा। इस समय फ्रान्स के अधिकांश भाग पर इंगलैण्ड ने अधिकार कर लिया था। परन्तु फ्रांसीसी इतिहास में शीघ्र ही काली रात के बाद उज्ज्वल प्रभाकर का उदय हुआ। उनकी सहायता के लिये एक किसान के घर से अकस्मात एक लड़की—देवी जोन—आ गयी। इसे युद्ध का कुछ अनुभव न था परन्तु उसने अद्वितीय वीरता दिखायी और ऐसी २ सलाहें दीं मानों वह बड़ी अनुभवप्राप्त हो। उसने कहा कि ईश्वर ने मुझे आरलीन्स से शत्रुओं को बाहर

निकालने तथा फ्रांस के राजा का रीम्स स्थान पर-जो उस समय अंग्रेजों के हाथ में था--राजतिलक करने के लिये भेजा है। अंग्रेज और फ्रांसीसी दोनों समझने लगे कि अवश्य ही यह कोई अलौकिक शक्ति है। फ्रांसीसियों को बड़ी आशा हुई। अब वे कई गुने शत्रुओं को हराने लगे। आरलीन्स जीत लिया गया, रीम्स में चार्ल्स सप्तम का राज-तिलक किया गया। जोन का वचन पूरा हो गया। परन्तु शीघ्र ही वह अंग्रेजों के हाथ में पड़ गई जिन्होंने उसे जादूगरनी बताकर जिन्दा जला दिया, किन्तु वह अपना कार्य कर चुकी थी।

फ्रांसीसियों में जोश और उत्साह भर गया था। अब वे स्थान २ से अंग्रेजों को भगाने लगे। १४५३ ई० में सन्धि हो गयी।

इस लम्बे युद्ध से फ्रांस और इंगलैण्ड दोनों देशों में राष्ट्रीयता के भाव उदय हुए। फ्रांस के सरदारों की शक्ति और भी घट गयी। अतः राजा की शक्ति और बढ़ी परन्तु इंगलैण्ड में प्रजा की शक्ति बढ़ी क्योंकि राजा को युद्धों के लिये रुपया की आवश्यकता पड़ती थी और रुपया मंजूर करना वहाँ प्रतिनिधि-सभा के हाथ में था।

फ्रांस और इंगलैण्ड में तो इस भाँति राजा खूब शक्तिमान हो रहे थे परन्तु जर्मनी में अवस्था कुछ भिन्न थी। हम देख चुके हैं कि वर्दून की संधि के बाद राइन नदी का पूर्वी भाग पश्चिमी भाग से अलग हो गया था। शार्लमेन की मृत्यु के बाद यहीं ओटो ने अपना साम्राज्य खड़ा किया। उसके कुछ दिन बाद होहेनस्टाफन वंश का राज्य रहा जिसमें फ्रेडरिक बारबरोसा का हाल हम कई बार पढ़ चुके हैं। उसके बाद उसका पुत्र हेनरी

चतुर्थ (११९०-९७) सम्राट् हुआ। वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा इसने सिसली पर भी अधिकार कर लिया। परन्तु १२६५ ई० में पोप ने सिसली में फ्रांस के राजा लुई नवें के भाई चार्ल्स को राजा बना दिया परन्तु उसके क्रूर शासन से तंग आकर वहाँ वालों ने फ्रांसीसियों को मार कर तथा बाहर निकाल कर एरेगान के राजा को अपना राजा बनाया।

चार्ल्स महान् के वंश का अन्त होने के बाद ही जर्मनी के कुछ शक्तिमान सरदारों तथा महन्तों ने राजा को चुनने का अधिकार प्राप्त कर लिया था। इससे जर्मनी को बड़ी हानि पहुँची। ये चुननेवाले जो 'एलेक्टर' कहलाते थे, प्रायः अधिक रुपया देनेवाले को ही चुनते थे। साथ ही यह भी ध्यान रखते थे कि वह शक्तिमान न हो। एक बार दो राजा सम्राट् पद के लिये उम्मेदवार हुए। दोनों ने खूब रिश्वतें दीं और दोनों सम्राट् चुन लिये गये। परन्तु इन दोनों का अधिकार नाम मात्र ही का था। केन्द्रित शक्ति का अभाव देखकर सरदार अपनी २ शक्ति और बढ़ा रहे थे और प्रजा पर अत्याचार कर रहे थे। तेरहवीं शताब्दी के मध्य में होहेनस्टीफन वंश का अन्त होने के समय जर्मनी में दो सौ से अधिक रियासतें थीं। जर्मनी का इतिहास इन्हीं रियासतों का इतिहास हो गया जिनमें दो वंश सब से अधिक शक्तिमान साबित हुए। हेप्सबर्ग और होहेनजोलर्न में ऐसी अराजकता और अशान्ति देखकर अनेक नगरों ने पूर्ण स्थानीय स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। वे अपना प्रबन्ध आप करते थे परन्तु साम्राज्य की अधीनता स्वीकार करते थे।

१२७२ ई० में नौ वर्ष साम्राज्य पद रिक्त पड़े रहने के बाद

हेप्सबर्ग वंश का रुडोल्फ सम्राट् बनाया गया। इसने युद्ध और विवाह आदि करके फिर जर्मनी के एक बड़े भाग पर अधिकार कर लिया। इसकी विजय और शक्ति से डरकर चुनने वालों ने दूसरे वंशों से सम्राट् चुनना आरम्भ किया। १३४७ ई० में बोहेमिया का राजा चार्ल्स चतुर्थ सम्राट् बनाया गया। इसने राज्य में व्यवस्था रखने के उद्देश से कुछ बातों के नियम बना दिये। इसी ने १३५६ई०में चुनने वालों की संख्या नियत कर दी। इसने बोहेमिया की समृद्धि की ओर ही अधिक ध्यान दिया। प्रेग का विश्वविद्यालय बहुत प्रसिद्ध हो गया। इसका राज्य भी बहुत विस्तृत था। इसके बाद वेन्जेल और सिजिसमन्ड सम्राट् हुए। सिजिस-मन्ड के केवल एक पुत्री एलिजाबेथ थी जिसका विवाह आस्ट्रिया के ड्यूक अलबर्ट से हुआ था। यही अलबर्ट द्वितीय के नाम से सम्राट् हुआ और इस भाँति साम्राज्य पद फिर हैप्सबर्ग वंश के हाथ में आ गया और बाद में प्रायः इसी वंश के हाथ में रहा।

हेप्सबर्ग वंश के स्थायी होने के पहले कई नगरों ने अपने संघ बना लिये थे। उत्तर में हेन्सीएटिक संघ तथा दक्षिण में हेलवेटिक संघ प्रधान थे। हेलवेटिक संघ से ही स्वीटज़रलैण्ड राज्य की स्थापना हुई।

उन्तालीसवाँ अध्याय

चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दियों में कैथोलिक धर्म तथा पोपों की दशा

हम देख चुके हैं कि पोप क्लेमेन्ट पंचम रोम को छोड़कर एविगनान स्थान पर रहने लगा। इस घटना से पोपों के इतिहास में एक नया युग उपस्थित हुआ। अब तक पोपों ने समस्त यूरोप पर प्रभाव डाला था, पश्चिमी यूरोप के राजनैतिक मामलों में अपना प्रधान अधिकार बताया था, परन्तु फ्रान्स के राजा फिलिप चतुर्थ की विजय ने सब बातें बदल दीं। पोपों के हाथों से शक्ति और प्रभाव दोनों चले गये।

इस समय का पोपों का इतिहास संक्षेपतः तीन भागों में बाँटा जा सकता है। पहले में पोप एविगनान स्थान पर रहकर फ्रांस के राजा के बन्दी बने रहे। दूसरे में दो पोपों का झगड़ा हुआ तथा तीसरे में पोप इटली के राजनैतिक झगड़ों में लग गये।

एविगनान स्थान फ्रांस की भौगोलिक सीमा के अन्दर था तथा प्रोवेन्स के काउन्ट के अधिकार में था। इसे पोपों ने अपने रहने के लिये मोल ले लिया और यहाँ पर साल पोप रहे। रोम में सरदारों से घिरे रहने की अपेक्षा यहाँ वे बहुत स्वतंत्रता से रहे परन्तु फ्रांस की सीमा के अन्दर उन पर फ्रांस के राजा का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था।

पोपों ने अपनी शक्ति बढ़ाने का एक उपाय निकाला परन्तु अन्त में इसका असर उलटा हुआ। धार्मिक अधिकारी नियत करने तथा उनसे भेंट प्राप्त करने का अधिकार उन्हें था ही। अब उन्होंने यह नियम बना दिया कि जो मठ आदि खाली हो जाँय अर्थात् जिनका प्रबन्धक मर जाय उनकी आमदनी पोप के पास आया करे। यह उन्होंने इसलिये किया कि एविगनान में रहने में खर्च अधिक पड़ता था और वे बड़े ठाट बाट से रहते थे, यहाँ तक कि उनकी रहन सहन यूरोप में प्रसिद्ध हो गयी। इस भाँति पोप की प्रतिष्ठा की जड़ खुद गयी। इंगलैण्ड आदि देशों ने पोप के पास जानेवाली भेंट बन्द कर दी। फ्रांस के शत्रुओं ने पोप को फ्रान्स के अधीन समझकर उसे मानना छोड़ दिया।

इटली में पोप की अनुपस्थिति के कारण छोटे २ अनेक राजा स्वतंत्र हो गये और उनमें बहुत से मनुष्य पोप के रोम लौटने पर जोर देने लगे। अन्त में पोप ग्रेगरी ग्यारहवें ने रोम आने का वचन दिया परन्तु दूसरे वर्ष ही वह मर गया।

अब चुनाव में बड़ी गड़बड़ हुई। भीड़ ने बाहर एक स्थान पर जमा होकर चिल्लाना आरम्भ किया कि कोई इटालीय ही पोप बनाया जाय। निदान अर्बन छठवां पोप चुना गया। परन्तु फ्रांसवालों ने कहा कि अव्यवस्था के कारण यह चुनाव ठीक नहीं हुआ है और उन्होंने क्लेमेन्ट सप्तम नामक एक दूसरा पोप नियत कर दिया जो एविगनान में ही रहता था। अब इन दोनों पोपों में झगड़ा आरम्भ हुआ जो चालीस वर्ष तक चला।

राजनैतिक कारणों से दोनों पोपों के पक्षपाती भी खड़े हो गये। इंगलैण्ड, इटली तथा जर्मनी ने अर्बन का पक्ष लिया। फ्रांस

स्काटलैण्ड और स्पेन क्लेमेन्ट की ओर रहे। दोनों पोप एक दूसरे के विरुद्ध षड्यंत्र रचने लगे, द्रव्य तथा भेंटों पर दोनों अपना २ अधिकार बताने लगे जिससे स्थिति बहुत बिगड़ गई।

यूरोप इन झगड़ों को निपटाने के लिये चिन्तित हो उठा। सब से अच्छा उपाय यह था कि दोनों पोपों को हटा दिया जाय परन्तु धन के लोभ के कारण कोई भी स्वयं हटने को तैयार न था। इस समय किसी शार्लमैन अथवा ओटो की आवश्यकता थी; परन्तु साम्राज्य निर्बल था, फ्रांस इंगलैण्ड से लड़ रहा था।

इस समय धार्मिक विषयों में विश्वविद्यालयों का अधिक प्रभाव था। अतः पेरिस के विश्वविद्यालय के चांसलर ने कहा कि विश्वविद्यालय इस झगड़े का निर्णय कर सकते हैं क्योंकि पहले रोम में भी ऐसे झगड़ों को निपटाने का एक धार्मिक कौंसिल को अधिकार था। निदान १४०९ में इटली के पीसा नगर में एक कौंसिल जमा हुई जिसमें ऊँचे २ पदों के बहुत से लोग सम्मिलित हुए। तत्कालीन दोनों पोप बेनीडिक्ट तेरहवाँ तथा ग्रेगरी बारहवाँ भी बुलाये गये परन्तु उनमें से एक भी न आया। इस पर कौंसिल ने उन दोनों को पदच्युत घोषित करके एक वृद्ध यूनानी को पोप अलक्जेंडर पंचम नियत किया।

अब स्थिति और बिगड़ी। दो के स्थान पर तीन पोप हो गये। पहले में से किसी ने भी पदत्याग नहीं किया। दूसरे वर्ष अलक्जेंडर पंचम मर गया और उसके स्थान पर जॉन तेईसवाँ नियत किया गया जो साहसी किन्तु विलासी था। धर्म और सदाचार का कुछ सम्बन्ध ही न रहा। ऐसी विकट स्थिति दूर कर धार्मिक एकता स्थापित करने के लिये सब यूरोप चिल्लाने लगा।

सौभाग्य से इस समय जर्मनी में ऐक्य स्थापित हो गया था। सम्राट् सिजिसमन्ड ने कई लड़ाइयों में विजय प्राप्त करके अपने को शक्तिमान कर लिया (१४१०)। जॉन २३ वें ने झगड़ा निब-टाने के लिये उससे प्रार्थना की। अतः सम्राट् ने कान्स्टेन्स स्थान पर एक बड़ी सभा इकट्ठी की। जॉन को आशा थी कि शेष दोनों पोपों को हटाकर उसी को पोप रहने दिया जायगा। सम्राट् के दबाव से कौंसिल ने तीनों पोपों से त्याग-पत्र लिखवाये। जॉन ने कुछ आपत्ति की और कौंसिल से चुपचाप भाग गया परन्तु वह पकड़ कर फिर बुलवाया गया और पदच्युत घोषित कर दिया गया। शेष दो में से एक स्वयं हट गया और दूसरा हटा दिया गया। इस भाँति सम्राट् ने तीनों को हटाकर १४१७ ई० में मार्टिन पंचम को पोप बनाया।

पोपों का झगड़ा दूर हो जाने के बाद कौंसिल को एक काम और करना था। यह था धार्मिक मतभेदों को दूर करना। इस समय पोपों की स्थिति से असन्तुष्ट हो कर कई विचारशील मनुष्यों ने अपने २ सिद्धान्त अलग स्थिर कर लिये थे। इंग्लैण्ड के बाइ-क्लिफ ने पोपों की विलासिता पर प्रहार किये और भेंटें भेजना बन्द करवा दिया। इसी भाँति बोहेमिया में प्रेग विश्वविद्यालय में जान हस कैथोलिक धर्म और जर्मनों के विरुद्ध जेक लोगों को उकसा रहा था।

सिजिसमन्ड बोहेमिया में धार्मिक एकता और शान्ति स्थापित करना चाहता था। अतः उसने हस को कान्स्टेन्स की कौंसिल में रक्षा का वचन देकर बुलवाया। हस अपने सिद्धान्तों पर तर्क करने को तैयार था परन्तु उसने देखा कि कौंसिल तर्क सुनने को

तैयार नहीं। हस एक गन्दे तहखाने में बन्द कर दिया गया। कौंसिल ने सम्राट् से कहा कि ऐसे अधर्मी के प्रति किये हुए वचन को पालना आवश्यक नहीं। अतः १४१५ में जान हस नगर के बाहर जला दिया गया। कौंसिल उठ गयी।

परन्तु बोहेमिया में शान्ति नहीं हुई बल्कि हस की चिता से उठी हुई लौ ने समस्त देश में आग लगा दी। एक बड़ी सेना विद्रोह के लिये तैयार हो गयी। सम्राट् की सेनायें हराकर भगा दी गयीं। सम्राट् उन्हें धार्मिक स्वतंत्रता देने को तैयार था परन्तु उनमें फूट पड़ गयी और सम्राट् दोनों दलों को हराकर बोहेमिया का राजा हो गया। १४३७ ई० में वह मर गया।

इसके बाद कौंसिल और पोपों के झगड़े बहुत दिन तक चलते रहे क्योंकि कौंसिल पोपों की शक्ति कम करना चाहती थी। परन्तु जर्मनी और फ्रांस के राजाओं ने उस से बिना पूछे ही पोपों से संधि कर ली और १४४९ ई० में कौंसिल का अन्त हो गया। इसके पतन से पोपों की स्थिति फिर सुधर गयी। परन्तु अब पोपों का अधिकार यूरोप के राजनैतिक मामलों में न रहा। अतः अब उन्होंने इटली में अपनी भूमि की ओर अधिक ध्यान देना आरम्भ कर दिया।

चालीसवाँ अध्याय

रिनासेन्स और मध्यकाल का अन्त

रिनासेन्स का अर्थ 'नव-जन्म' है परन्तु इतिहास में इससे प्राचीन यूरोपीय साहित्य, विद्या तथा कलाओं के प्रति उस उत्साह का बोध होता है जो चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दियों में इटली में उत्पन्न हुआ और जिसने अपने प्रभाव के कारण यूरोप में एक नया युग उपस्थित किया ।

हम देख चुके हैं कि मध्य-काल में यूरोप के लोग ईसाई धर्म के प्रचार तथा बर्बरों के आक्रमणों के कारण यूनान और रोम के प्राचीन साहित्य को भूल गये थे । ग्रंथ गुफाओं तथा आश्रमों में छिपे पड़े थे और वहीं थोड़े २ टिमटिमा रहे थे । शेष समस्त यूरोप में अन्धकार था । जीवन प्रायः विद्या और ज्ञान से शून्य था । सम्भव अथवा असम्भव बातों में विश्वास कर लेना ही मनुष्यों का प्रधान कर्त्तव्य था, परन्तु चौदहवीं शताब्दी में लोगों में साहित्यिक जागृति हुई । देश देश में ग्रन्थ लिखे जाने लगे । इंगलैण्ड में चॉसर ने केन्टरबरी की कहानियाँ लिख कर सेक्सन और नार्मन भाषाओं के संयोग से नयी अंग्रेजी भाषा की नींव डाली । इटली में दान्ते ने वहाँ की प्रचलित भाषा में कई पुस्तकें लिखीं । शार्लमैन, आर्थर आदि की वीरता के वर्णन होने लगे । इसी भाँति प्रत्येक देश अपने २ योद्धाओं के गुण गाने लगा जिससे राष्ट्रीय साहित्य की वृद्धि हुई और भिन्न २ भाषाओं का भी

विकास-काल आरम्भ हुआ। दान्ते इस युग का सब से प्रसिद्ध विद्वान् है। उसके प्रसिद्ध काव्य 'कमिडिया' में मध्य-कालीन जीवन तथा विचारों का सजीव चित्र है। आज भी रेवेना में उसकी समाधि के दर्शन करने सहस्रों यात्री जाते हैं।

रिनासेन्स का आरम्भ इटली से ही हुआ और फिर यह समस्त यूरोप में फैला। इसका कारण यह है कि इटली के नगर उस समय अन्य देशों के नगरों की अपेक्षा अधिक समृद्ध और संगठित थे। उनमें एक प्रकार का नया जीवन आ गया था जिससे मध्य-काल की विशेषताओं को उन्होंने सब से पहिले छोड़ा। दूसरे प्राचीन और नवीन सभ्यता में इटली में इतना अन्तर न पड़ा जितना कि अन्य देशों में। इटली के निवासी भाषा तथा रक्त में प्राचीन रोमनों के निकट थे। और वे अपने को उन्हीं के वंशज मानते तथा इस पर गर्व करते थे।

रिनासेन्स के समय के प्रधान पुरुषों में दान्ते के बाद पीट्रार्क का नम्बर आता है। मध्य-काल में प्राचीन विद्यायें—यूनानी और लैटिन—सीखने के महत्त्व को सबसे पहले इसीने अनुभव किया। यह प्राचीन लेखकों का बड़ा आदर करता था और बहुत समय और द्रव्य व्यय करके इसने कोई दो सौ प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रह किया जिनमें सिसरो के कुछ पत्र, प्लेटो के कई ग्रन्थ तथा होमर का काव्य भी था। यह उनके लेखों पर ऐसा मोहित हो गया कि पागल की भाँति बैठा २ प्रति दिन होमर, सिसरो, वर्जिल आदि को पत्र लिखा करता था जिनमें अनेक उत्तम विचार रहते थे। यह १३०४ ई० से १३७४ ई० तक रहा।

इस समय इटली में यूनानी और लैटिन भाषायें सीखना

शीघ्र ही एक प्रकार का 'फैशन' हो गया। इटली में सौभाग्य से लोगों की यह इच्छा शान्त करने के साधन भी मिल गये। इस समय तुर्क लोग प्रबल होकर यूरोप में फिर बढ़ रहे थे। अतः पूर्वी सम्राट् ने रोम और इटली से पुराने बन्धुत्व के नाते सहायता की प्रार्थना की। एक यूनानी विद्वान् क्राइसोलोरस के अधीन एक प्रतिनिधि-मण्डल इटली भेजा। इस विद्वान् के वेनिस में उतरते ही फ्लोरेन्स ने उसे अपने यहाँ बुलाया और भारी स्वागत किया और फिर अपने यहाँ के विश्वविद्यालय में उसे प्रोफेसर नियत कर दिया (१३९६)। उसके नाम से ही उसके क्लास में बच्चे और बूढ़े जमा होने लगे। साठ साठ वर्ष के बूढ़ों को भी यूनानी भाषा सीखने का जोश दौड़ आया और वे भी क्लास में आने लगे।

इस भाँति सात शताब्दियों बाद पश्चिमी यूरोप में यूनानी भाषा की फिर जागृति हुई। प्राचीन सभ्यता का उदय हुआ। जिस के परिणाम स्वरूप नवीन काल का जन्म हुआ क्योंकि नवीन कार्य को बनाने में यूनानी शिक्षा का बहुत भाग है। अब उन्होंने इटली-अपनी भूमि--की ओर अधिक ध्यान दिया। इटली में प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों की बड़ी खोज होने लगी और वे पुस्तकें तहखानों में से निकाली गयीं। किसी के आधे २ पन्ने फट गये। कोई धूल से भरी हुई तथा कोई गल गयी थीं। इन सब पुस्तकों की नकलें की गयीं। इस कार्य में फ्लोरेन्स के लोरेन्जो तथा पोप निकोलस पंचम (१४४७-९५) ने बहुत भाग लिया। कुछ समय बाद पोप जूलियस द्वितीय (१५०३-१३) ने रोम को प्राचीन शिक्षा का केन्द्र बना दिया तथा अनेक पुस्तकालय बनाये गये जिनमें से कई अब भी हैं।

पन्द्रवीं शताब्दी के मध्य में ओटोमन तुर्कों ने कुस्तुन्तुनिया पर आक्रमण करके उसे नष्ट कर दिया। इसके पहले तथा इसके बाद अनेक यूनानी लोग इटली में आकर बस गये। इससे भी लोगों का यूनानी भाषा सीखने का उत्साह और बढ़ा।

शीघ्र ही जर्मनी, फ्रांस, इंगलैण्ड आदि सब देशों में यह जागृति फैल गयी और लोगों को पता लगा कि प्राचीन समाज कितना उच्च और उदार था।

परन्तु रिनासेन्स केवल साहित्यिक जागृति ही न थी। साहित्य तथा वेदान्त के साथ २ कला की भी उन्नति हुई। गृह-निर्माण और शिल्प में भी प्राचीन ढंग फिर दिखायी देने लगा। गिर्जों की छतें फिर पुराने गुम्बजों से शोभित होने लगीं तथा महाराबें फिर गोल कमानीदार बनने लगीं जो कि रोम की तर्ज थीं। रोम का सन्त पीटर का गिर्जा इस समय के शिल्प का सब से अच्छा नमूना है। इसका सुन्दर गुम्बज प्रसिद्ध शिल्पी माइकल एंजेलो का बनाया हुआ है।

परन्तु शिल्प से भी अधिक उन्नति चित्रकला की हुई। और इस कला में यूरोप इटली का बहुत आभारी है। यूनानी लोग सुन्दरता-प्रिय थे। अतः उन्होंने शिल्प की बहुत उन्नति की। परन्तु इस समय के ईसाई कलाविदों का कार्य आत्मिक भाव-आशा, दुख, सुख आदि दरशाना था जो रंगहीन निर्जीव पत्थर में नहीं दिखाया जा सकता। इसी कारण यहाँ चित्रकला की बहुत उन्नति हुई। दूसरा कारण अधिक धार्मिक चित्र बनाने का यह था कि गिर्जा ही चित्र-कला का संरक्षक बन गया था। परन्तु फिर भी धार्मिक सीमा तक ही चित्रकला परिमित न रही। अन्य भावों

की भी बड़ी सुन्दर तस्वीरें बन निकलीं। एक नगर दूसरे से ऐसे चित्र खरीदने में प्रतिद्वन्द्वता करने लगा जिसके कारण इसकी और उन्नति हुई। इस कला के प्रधान विद्वान लियो-नार्डो (१४५२-१५१६), स्कवायर (१४८५—१५२०) इंगलो। माईकल ऐंजेला (१४७१—१५६४) हैं।

रिनासेन्स के परिणाम

जिस प्रकार ईसाई मत के प्रचार ने यूरोप के बौद्धिक और धार्मिक क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी, उसी भाँति एक हजार वर्ष बाद दूसरी क्रान्ति रिनासेन्स के प्रचार से हुई। अब उन्हें जीवन सुन्दर ज्ञात होने लगा। वे समझने लगे कि पारलौकिक सुखों के लिये संसार तथा उसके सुखों का एक दम त्याग कर देना बुद्धिमानी नहीं है।

ईसाई धर्म का प्राचीन शिक्षा तथा सभ्यता के साथ सम्मिश्रण हुआ जिससे नवीन और प्राचीन काल में एकता स्थापित हो गयी और इतिहास का रिक्त स्थान फिर पूरा हो गया।

विद्या-प्रचार में भी वृद्धि हुई। प्राचीन यूनानी विद्वानों के नाम फिर सामने आने लगे। पाठशालाओं और विश्वविद्यालयों की भी बहुत वृद्धि हुई। साथ ही राष्ट्रीय साहित्य भी बढ़ा।

इसी समय प्राचीन सभ्यता के चिन्हों की खोज की चिन्ता होने के कारण पुरातत्व विज्ञान की सृष्टि और उन्नति हुई। लोगों में समालोचना के भी भाव उठे। अब तक लोग आश्चर्यजनक बातों अथवा कथाओं में पूर्ण विश्वास कर लेते थे, परन्तु अब

उसमें 'क्यों' और 'कैसे' के प्रश्न उठने लगे। इस भाँति अनेक कल्पित कलाएँ लुप्त हो गयीं।

जो बात इटली में साहित्य तथा कलाओं के लिये प्रस्थ हुई उत्तरी देशों में—इंगलैंड जर्मनी आदि में—वैसे ही विचार धर्म के सम्बन्ध में उठे। वहाँ लोग प्राचीन धार्मिक अन्ध विश्वासों पर समालोचना करने लगे जो कि अब तक भय का कारण समझा जाता था। इसभाँति रिनासेन्स से ही नवीन काल के आरम्भ में 'रिफार्मेशन' की उत्पत्ति हुई।

इस भाँति रिनासेंन्स अथवा साहित्यिक और बौद्धिक जागृति ने यूरोप में प्राचीन जीवन बदल कर नव-जीवन संचार किया। पुराने इतिहास को बदल कर नवीन इतिहास आरम्भ किया।

प्रथम भाग समाप्त *

* इसका दूसरा और तीसरा भाग जिसमें सम्पूर्ण इतिहास समाप्त हो जायगा जुलाई सन् १९२७ तक छप जायगा। इसलिये अभी से आर्डर भेज दीजिये। दोनों भागों का मूल्य लगभग बारह बारह आना होगा। प्रत्येक भाग की पृष्ठ-संख्या लगभग तीन-तीन सौ पृष्ठ होगी।